जिणदत्त-चरित

(आदिकालिक हिन्दी काव्य)

रचयिता—कविवर राजसिंह

सम्पादक :

डा० माताप्रसाद गुप्त
एम. ए., डी. लिट्.

डा० कस्तूरचंद कासलीवाल
एम. ए., पी. एच. डी.

प्रकाशक :

गैंदीलाल साह एडवोकेट

मंत्री

प्रबन्ध कारिणी कमेटी, दि० जैन अ० क्षेत्र श्रीमहावीर जी

जयपुर

—: अनुक्रमणिका :—

———

प्रकाशकीय

हिन्दी पद सग्रह के प्रकाशन के कुछ मास पश्चात् ही 'जिरणदत्त चरित' को पाठको के हाथो मे देते हुए अतीव प्रसन्नता है। 'जिरणदत्त चरित' हिन्दी साहित्य की आदिकालिक कृति है और इसके प्रकाशन से हिन्दी साहित्य के इतिहास मे एक नया अध्याय जुड सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इसके पूर्व साहित्य शोध विभाग की ओर से 'प्रद्युम्न चरित' का प्रकाशन किया जा चुका है। इस प्रकार हिन्दी के दो आदिकालिक एवं अज्ञात काव्यो की खोज एव प्रकाशन करके साहित्य शोध विभाग ने राष्ट्र भाषा हिन्दी की महती सेवा की है। दोनो ही कृतियां प्रबन्ध काव्य है और हिन्दी के आदिकाल की महत्वपूर्ण कृतिया है। प्रद्युम्न चरित का जब प्रकाशन हुआ था तो उसका सभी ओर से स्वागत हुआ था तथा स्व० महापडित राहुल साकृत्यायन, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल एव डा० सत्येन्द्र जैसे प्रभृति विद्वानो ने उसकी अत्यधिक सराहना की थी। उसी समय पडित राहुल साकृत्यायन ने तो हमे 'जिरणदत्त चरित' को भी शीघ्र ही प्रकाशित करने की प्रेरणा दी थी लेकिन इसकी एकमात्र प्रति डा० कस्तूरचद कासलीवाल को जयपुर के पाटोदी के मदिर के हस्तलिखित ग्रथो की सूची बनाते समय उपलब्ध हुई थी इसलिए दूसरी प्रति की आवश्यकता थी। इसके पश्चात् इसकी दूसरी प्रति की तलाश करने का भी काफी प्रयास किया गया लेकिन उसमे अभी तक कोई सफलता नही मिली। अत. एक ही हस्तलिखित प्रति के आधार पर ही इसका प्रकाशन किया जा रहा है।

जिरणदत्त चरित के सम्पादन मे हिन्दी के मूर्धन्य विद्वान डा० माताप्रसाद जी गुप्त अध्यक्ष हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा ने जो सहयोग दिया है उसके लिये हम आभारी है। डा० गुप्त जी की हमारे साहित्य शोध विभाग पर सदैव कृपा रही है। उन्होने पहिले भी प्रद्युम्न चरित पर प्राक्कथन लिखने का कष्ट किया था।

साहित्य शोध विभाग द्वारा खोज एव प्रकाशन का कार्य तेजी से चल रहा है और शीघ्र ही "Jain Granth Bhandars in Rajasthan" 'राजस्थानी जैन सन्तो की साहित्य साधना' पुस्तकें प्रकाशित होने वाली है। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रथ सूची का पाचवा भाग भी शीघ्र ही तैयार होकर सामने आने वाला है। इसमे २० हजार से अधिक ग्रथो का परिचय रहेगा। इस तरह और भी पुस्तकें प्रकाशित होने वाली है। साहित्य शोध विभाग की एक पचवर्षीय योजना भी क्षेत्र कमेटी के विचाराधीन है। तथा खोज एव प्रकाशन के कार्य को और भी अधिक गतिशील बनाने का प्रयास जारी है। अभी कुछ समय पूर्व भारतीय ज्ञानपीठ के व्यवस्थापक डा० गोकलचद जी जैन जब जयपुर आये थे तब उन्होने इस सम्बन्ध मे कुछ सुझाव भी दिये थे। आशा ही नही पूर्ण विश्वास है कि आगामी कुछ ही वर्षों मे प्राचीन साहित्य की खोज एव प्रकाशन तथा अर्वाचीन साहित्य के निर्माण की दिशा मे हम पर्याप्त प्रगति कर सकेंगे।

महावीर भवन
१-१२-६५

गैंदीलाल साह, एडवोकेट
अवैतनिक मत्री

"'जिणदत्तचरित" की उपलब्धि डा० कासलीवाल को राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रंथ सूची वनाते समय हुई थी। इसकी एक मात्र पाण्डुलिपि जयपुर के दि० जैन मन्दिर पाटोदी के शास्त्र भण्डार के एक गुटके मे सगृहीत है। गुटके का आकार ६$\frac{1}{2}$"×८" है। इसमे ३४ पत्र है। प्रथम १३ पत्रो मे 'जिणदत्त चरित' लिखा हुआ है। शेष २१ पत्रों मे अन्य छोटी १३ रचनाओ का सग्रह है। ये कृतियाँ सवत् १७४३ मगसिर वुदी ७ से लेकर सवत् १७७२ तक लिपिवद्ध हुई हे। 'जिणदत्त चरित' का 'लेखन काल स. १७५२ कार्तिक सुदी ५ शुक्रवार[1] है। यह प्रति पालम निवासी पुष्करमल के पुत्र महानद द्वारा लिखी गई थी जो पञ्चमीव्रत के उद्यापन के निमित्त व्रतकर्ता की ओर से साहित्य- जगत् को भेंट दी गयी थी। प्रति कागज पर लिखी हुई है। लिपि सामान्यत: स्पष्ट है। प्रत्येक पृष्ठ पर सामान्यत ३२ पंक्तियाँ तथा प्रति पक्ति मे इतने ही अक्षर है। लेकिन प्रारम्भ के ३ पत्र मोटी लिपि मे लिखे हुये हैं। इसी तरह अन्तिम पत्रो मे लिपि किंचित् पतली हो गयी है। गुटके के पत्रो का एक छोर टेढा कटा हुआ है जिससे कुछ अक्षर कट भी गये है।

---

१ स १७५२ वर्पे कार्तिक सुदि ५ शुक्रवासरे लिखित महानद पालव निवासी पुष्करमलात्मज।

यादृश पुस्तक दृष्टवा, तादृश लिखित मया।
यदि शुद्धमशुद्ध वा, मम दोपो न दीयते॥

शुभ भवेत् लेखकाध्यापकयो: ।श्रीरस्तु।
पचमीव्रतोपमनिमित्त ।शुभ।

एक

रचना का नाम

लिपिकार ने प्रारम्भ मे कृति का नाम 'जिणदत्त कथा' तथा अन्त मे 'जिणदत्त चउपई' लिखा है। स्वय कवि भी अपने काव्य के सम्बन्ध मे स्थिर मतव्य नही रख सका है। वह भी कभी 'चरित,' कभी 'पुराण' एव कभी 'चउपई' के नाम से रचना का उल्लेख करता है। लेकिन जैन चरित काव्यो मे जीवन चरित कथा आख्यायिका तथा धर्म कथा आदि के लक्षणो का समन्वय प्राय हुआ है। इसलिये चरित-काव्य को कभी कभी 'कथा' एव 'पुराण' भी कहते है। इसी दृष्टि को ध्यान मे रख कर रल्ह कवि ने भी अपने काव्य को 'चरित,' 'कथा' एव 'पुराण' शब्दो से अभिहित किया है। 'चउपई' शब्द का प्रयोग मुख्यत इसी छन्द मे कवि ने अपनी रचना निवद्ध करने के कारण किया है जैसा कि अन्यत्र उल्लिखित चउपई-वन्ध शब्द से प्रकट है[१]। प्रस्तुत काव्य को 'चरित' नाम से कहना ही अधिक उचित रहेगा, क्योकि कवि ने इसे प्राय 'चरित'[२] ही कहा है और यह (चरित) धार्मिक है इसलिए इसे 'पुराण'[३] भी कहा है।

कवि परिचय

मगलाचरण, सरस्वतीवन्दना एव अपनी लघुता प्रदर्शित करने के पश्चात् कवि ने अपना परिचय देते लिखा है कि वे जैसवाल जाति के श्रावक

---

१ जत्थ होइ कुकइत्तणि अघु, जिणदत्त रयउ चउपई वधु ॥२५॥
जिणदत्त पूरी भई चउपही, छप्पन होणवि छहसह कही ॥५५३॥

२ महु पसाउ स्वामिनि करि तेम, जिणदत्त चरितु रचउ हउ जेम ॥१६॥
तउ पसाइ णाण घवरु लहउ, ता जिणदत्त चरिउ हउ कहउ ॥१८॥
यह जिणदत्त चरिउ निय कहिउ, अशुह कम्मु चुइ सुह सगहइ ॥५४८॥

३ हउ अखउ जिणदत्त पुराणु, पढिउ न लखण छद वखाणु ॥२०॥
मइ जोयउ जिणदत्त पुराणु, लाखु विरयउ अइसु पमाणु ॥५५०॥

दो

थे [1]। पाटल उनका गोत्र था। कवि के पिता का नाम ... जो एक स्थान पर 'आते' भी कहा गया है। किन्तु 'आते' संभवतः 'आभै' ⁄ अभइ से पाठ-प्रमाद के कारण हुआ है। इनकी माता का नाम 'सिरीया' था [2]। इनके पिता का सभवत. वचपन मे ही स्वर्गवास होगया था और लालन पालन माता ने ही किया था, इसलिये इन्होने माता के प्रति अपना भक्ति-भाव प्रदर्शित करते हुये लिखा है कि सिरिया माता ने इनका वडे ही करूणा भाव से पालन किया तथा दश मास तक उदर मे रक्खा जिसकी कृतज्ञता से उऋण होना सभव नही था। इनकी माता धार्मिक विचारो वाली थी। कवि का नाम रल्ह था लेकिन उसके कितने ही छन्दो मे 'राजसिंह' अथवा राइसिंह भी नाम आए है सभवत· कवि का नाम राजसिंह था लेकिन उनका लघु नाम, जिससे वे जन-साधारण मे सम्वोधित किये जाते रहे होंगे 'रल्ह' रहा होगा। इसलिये कवि ने अपनी इस कृति मे दोनो ही नामो का उल्लेख किया है। वैसे उस युग मे छोटे नामो का अधिक प्रयोग होता था। वल्ह, पल्ह, वूचा, छीहल, पूनो आदि नाम वडे नामो के ही विकृत नाम है जिन्हे कवि ही नही किन्तु जन-साधारण भी प्रयोग मे लाते थे। ग्रंथ प्रशस्तियो मे ऐसे सैकडो नाम पढने को मिलते हैं। इसलिये यह निश्चित है कि 'रल्ह और 'राजसिंह कवि के ही दो नाम थे।

---

१. जइसवाल कुलि उत्तम जाति, वाईसइ पाडल उतपाति।
पंचऊलीया आते कउ पूतु, कवइ रल्हु जिणदत्त चरितु ॥२६॥

जो जिणदत्त कउ सुणइ पुराणु, तिसको होइ णाणु निव्वाणु।
अजर अमर पउ लहइ निरुत्तु, चवइ रल्ह अभई कउ पुत्तु ॥५५१॥

२ माता पाइ नमउ ज जोगु, देखालियउ जेहि मत लोगु।
उवरि माश दश रहिउ धराइ, धम्म वुधि हुइ सिरीया माइ ॥२७॥

पुणु पुणु पणवउ माता पाइ, जेइ हउ पालिउ करुणा भाइ।
म उवयारण हुइसउ उरणु, हा हा माइ मज्झु जिण सरणु ॥२८॥

रचनाकाल

हिन्दी के आदिकाल की कृतियो में 'जिणदत्त चरित' ऐसी इनी-गिनी कृतियो मे से है जिसमे स्वय कवि ने रचनाकाल का उल्लेख किया हो। इस दृष्टि से भी इस रचना का विशेष महत्व है। रल्ह कवि ने इस काव्य को सवत् १३५४ (स १२९७) भादवा सुदि ५ गुरुवार के दिन समाप्त किया था[1]। उस दिन चन्द्रमा स्वाति नक्षत्र पर था तथा तुला राशि थी। भारत पर उन दिनो अलाउद्दीन खिलजी (सन् १२९६–१३१६) का शासन था। कवि ने उस समय की राजनैतिक अवस्था का कोई उल्लेख नही किया है। सभवत उसने शासन के पक्ष–विपक्ष मे लिखना ही उचित नहीं समझा।

ग्रंथ प्रमाण

कवि ने काव्य के तीन स्थलो पर पद्यो की सख्या का भी उल्लेख किया है। अन्तिम दो पद्यो मे पद्यो की सख्या क्रमश ५४३ व ५४४ दी कही हैं,[2] जबकि प्रतिलिपि कार ने इन पद्यो की सख्या ५५३ दी है। असभव नही कि मूल के छदो को प्रतिलिपिकारो ने तोड तोड कर पढा हो, इसलिए भी छद–सख्या मे कुछ वृद्धि हो गई हो। अन्य कारण भी सभव हैं। अत ग्रथ–प्रमाण हमे कवि द्वारा दिया हुआ ही स्वीकार करना चाहिए। लेकिन वे पद्य कौन से हैं जो वाद मे वढा दिये गये है, इसका निर्णय तव तक नही हो सकता जबतक इस रचना की दूसरी प्रति उपलब्ध न हो।

कथा का आधार

सेठ जिनदत्त की कथा जैन समाज मे वहुत प्रिय रही है। इस कथा

---

१ सवत तेरहमें चउवण्णे, भादव सुदि पचम गुरु दिण्णे।
स्वाति नखत्तु चदु तुलहती, कवइ रल्हु पणवइ सरसुती ॥२८॥

२ गय सत्तावन छहसय माहि (५५२)
छप्पन हीणवि छहसय कही (५५३)

पर प्राकृत, सस्कृत, अपभ्र श एव हिन्दी आदि सभी भाषाओ मे कृतियाँ मिलती है। 'अभिधान राजेन्द्र' कोश मे इस कथा का उद्भव प्राकृत भाषा मे निबद्ध आवश्यक कथा एव आवश्यक चूर्णि ग्रथो मे बतलाया गया है[1]। यह कथा वहाँ चक्षुरिन्द्रिय के प्रसग पर कही गयी है क्योकि जिनदत पाषाण की पुतली को देखकर ही ससार की ओर प्रवृत्त हुआ था। प्राकृत भाषा मे एक और रचना नेमिचन्द्र के शिष्य सुमति गणि की भी मिलती है[2]। सस्कृत भाषा मे जिनदत्त चरित्र आचार्य गुणभद्र का मिलता है। यह एक उत्तम काव्य है और जिनदत्त के जीवन पर अच्छा प्रकाश डालने वाली एक सुन्दर कृति है। यह माणकचन्द्र दि० जैन ग्रथमाला से प्रकाशित भी हो चुका है। इसके पश्चात् अपभ्र श भाषा मे 'जिणयत्त कहा' की रचना करने का श्रेय कविवर लाखू अथवा लक्ष्मण को है जिन्होने उसे सवत् १२५७ मे समाप्त की थी[3]। अपभ्र श भाषा मे रचित यह रचना जैन-समाज मे अत्यन्तिक प्रिय रही है अत ग्रथ भण्डारो मे इस ग्रथ की कितनी ही प्रतियाँ उपलब्ध होती है। इसमे ११ सधियाँ है और जिनदत्त के जीवन पर सुन्दर काव्य रचना की गई है। हमारे कवि रल्ह अथवा राजसिह ने लाखू कवि द्वारा विरचित 'जिणयत्त कहा' अथवा 'जिणयत्त चरित' के आधार पर नवीन रचना का सर्जन किया जिसका उल्लेख उन्होने अपने काव्य के अन्त मे बडे आभार पूर्वक किया है[4]। रल्ह कवि ने लाखू कवि द्वारा विरचित

---

१ वसन्तपुरे नगरे वसन्तपुरस्थे स्वनामख्याते श्रावके, आ. क. ।
वसन्तपुरे नगरे जियसत्तू राया जिणदत्तो सेट्ठी, आव, ५ अ ।
आ चू (तत्कथा चक्षुरिन्द्रियोदाहरणे चक्खदिय शब्दे तृतीय भागे-
११०५ पृष्ठे काउसग्गा शब्दे ४२७ पृष्ठे च प्ररूपिता) पृष्ठ सख्या १४९२

२ देखिये जिनरत्न कोश – पृष्ठ सख्या- १३५

३ देखिये डा० कासलीवाल द्वारा सपादित- प्रशस्ति सग्रह पृष्ठ सख्या-१०१

४. मइ जोयउ जिणदत्त पुराणु, लाखु विरयउ अइस पमाणु ।
देखि विसूरु रयउ फुडु एहु, हत्थालम्बणु वुहयण देहु ॥५५०॥

रचना को 'जिणदत्त पुराण' के नाम से सम्बोधित किया है। रल्ह कवि के पश्चात् भी १५ वी शताब्दी मे दो विद्वानो ने जिनदत्त के जीवन पर अलग अलग कृतिया लिखी। इनमे प्रथम महापडित रइघू है जो अपभ्र श के भारी विद्वान थे तथा उस भाषा मे रचना करना गौरव समझते थे। इसी शताब्दी मे गुणसमुद्रसूरि ने सस्कृत गद्य मे सवत् १४५४ मे जिनदत्त कथा लिखी। इसके पश्चात् २० वी शताब्दी मे पन्नालाल चौधरी ने जिनदत्त चरित्र वचनिका 'एव बख्तावर सिंह ने' जिनदत्त चरित भाषा (छन्द बद्ध) लिखा। इस प्रकार श्रेष्ठि जिनदत्त की कथा प्राय. प्रत्येक युग मे लोकप्रिय रही है और जैन विद्वान उसके जीवन पर एक न एक रचना लिखते आ रहे हैं। रल्ह कवि द्वारा रचित 'जिणदत्त चरित' पूर्वापर समय के अनुसार चतुर्थ रचना है, इस दृष्टि से भी रचना का महत्व है। रल्ह की रचना के अनुसार जिनदत्त की जीवन-कथा निम्न प्रकार है —

कथा सार

(५९ से ६५) जिनदत्त वसतपुर के सेठ जीवदेव का इकलौता पुत्र था। उसकी माता का नाम जीवजसा था। उस समय वसतपुर पर चन्द्रशेखर नाम का राजा राज्य करता था। जीवदेव नगर सेठ था और उसकी सपत्ति का कोई पार नही था। जिनदत्त को खूब लाड प्यार से पाला गया था। १५ वर्ष की अवस्था मे उसे पढने के लिये उपाध्याय के पास भेजा गया। वहाँ उसने लक्षण ग्र थ, छन्द शास्त्र, तर्क शास्त्र, व्याकरण, रामायण एवं महा-पुराण पढे। इसके पश्चात् उसे अन्य कलायें सिखलाई गई।

(६६ से ७६) युवा होने पर जब उसने विवाह करने की कोई इच्छा प्रकट नही की तो सेठ को बहुत चिन्ता हुई। सेठ ने नगर के जुवारियो एव लपटो को बुलाया और जिनदत्त को मार्ग पर लाने का उपाय करने के लिये कहा। अब जिनदत्त जुवारियो की सगति मे रहने लगा और नगरवधुओ के पास जाने लगा लेकिन फिर भी उसका मन उनकी ओर नही झुका।

(७७ से १०५) एक दिन वह नन्दन वन गया और वहां उसने एक पाषाण की पुतली को देखा और उसकी सुन्दरता की प्रशंसा करने लगा। अब वह भी ऐसी ही किसी सुंदरी से विवाह करने की इच्छा करने लगा। जुवारियो ने जिनदत्त को जब इस मन स्थिति मे सेठ को लौटाया तो सेठ बड़ा प्रसन्न हुआ। जुवारियो ने सेठ से अपार धन प्राप्त किया। शिल्पकार को बुलाकर सेठ ने पूछा कि यह प्रतिमा किस स्त्री की थी। शिल्पकार ने बताया कि यह चपापुरी के नगर सेठ विमलसेठ की कन्या विमलामती की प्रतिमा थी। सेठ ने चित्रकार से अपने पुत्र जिनदत्त का चित्र उतरवाया और एक ब्राह्मण को वह चित्र देकर चपापुर भेजा।

(१०६ से १२७) विमलसेठ उस चित्र को देखकर एव माता पिता के सम्बन्ध मे जानकारी कर विमलामती का विवाह जिनदत्त के साथ करने की स्वीकृति देदी। वसन्तपुर से बडी धूम धाम से बारात चम्पापुर के लिये रवाना हुई। बारात मे हाथी, घोडे, रथ, पालकी आदि सभी थे। दोनो का विवाह हो गया और बारात वसन्तपुर लौट आई। जिनदत्त और विमलामती सानन्द रहने लगे।

(१२८ से १४५) एक दिन पालकी मे बैठकर जिनदत्त चैत्यालय जा रहा था कि उसको जुवारियो से भेंट हो गयी। उन्होने जिनदत्त को जुआ खेलने का निमन्त्रण दिया। जिनदत्त उनकी बात टाल न सका। वह जुआ खेलने लगे और जिनदत्त उसमे ११ करोड़ द्रव्य हार गया। जिनदत्त जब दांव हार कर घर जाने लगा तो जुवारियो ने उसे बिना रुपया चुकाये जाने नही दिया। जिनदत्त ने अपना आदमी अपने पिता के भण्डारी (मुनीम) के पास भेजा लेकिन उसने जुआ मे हारे हुये रुपयो को चुकाने से मना कर दिया। आखिर उसे विमलामती की कांचली ६ करोड रुपयो मे बेचनी पडी। जिनदत्त को इससे अत्यधिक दुःख हुआ। वह घर त्यागकर विदेश जाकर धन कमाने की सोचने लगा।

(१४६ से १५८) इसी समय उसने एक चाल चली और एक झूठा पत्र अपने ससुर के यहां से मगा लिया जिसमे उसको बुलाने के लिये लिखा

हुआ था। जिनदत्त एव विमलामती चपापुरी के लिये चल दिये। यह उनकी पहली विदेश-यात्रा थी। विमल सेठ ने उनका अच्छा सत्कार किया। लेकिन ४-५ दिन पश्चात् ही वह उस विमलामती को चैत्यालय मे अकेली छोडकर दशपुर के लिये रवाना हो गया। पति के वियोग में विमलामती अत्यधिक रुदन करने लगी और उसके लौटने तक वह वही चैत्यालय मे रहने लगी।

(१५६ से १७६) जिनदत्त दशपुर नगर के प्रवेश द्वार पर पहुँचा तो वहाँ के उद्यान को देखने लगा। इतने मे ही वहाँ नगर सेठ सागरदत्त आया। इधर वह बागीचा जिनदत्त के आगमन से हरा होने लगा। हरी बाडी को देखकर सागरदत्त प्रसन्न हो गया और उसने जिनदत्त से उस बाडी को सुवासित एव फलयुक्त करने को कहा। जिनदत्त ने शीघ्र ही प्रक्षाल का जल उन पेडो मे सिंचन किया और वे शीघ्र ही हरे एव फलवान हो गये। अब वहाँ आम, नारगी, छुहारा, दाख, इलायची जामुन आदि के वृक्ष लहलहाने लगे। सागरदत्त उसके इन कार्यो से बडा प्रभावित हुआ और उसे अपने घर ले जाकर अपना धर्म-पुत्र घोपित कर दिया।

(१७७से१८६) कुछ समय पश्चात् जिनदत्त सागरदत्त के साथ व्यापार के लिये विदेशयात्रा पर रवाना हुआ। उनके साथ नगर के अनेक व्यापारी एव १२ हजार बैलो का टॉडा था। वे जहाजो मे मामान लादकर चले।

(१६०से२००) उन्हे समुद्र-यात्रा का ज्ञान था। वे हवा के प्रवाह को देखकर चलते थे। वेणानगर को छोड कर वे कवण द्वीप मे पहुँचे। वहाँ से भभापाटन चलकर कुण्डलपुर पहुँचे और मदनद्वीप मे होकर वे पाटल तिलक द्वीप मे पहुँचे। शीघ्र ही वे सहजावती नगरी को छोडकर फोफलनगरी मे प्रवेश किया। फिर वहाँ के कितने ही द्वीपो को पार करते हुये सिघल द्वीप पहुँचे। वहाँ वे अनेक वस्तुओं का क्रय विक्रय करने लगे। वे अपनी वस्तुओ को तो महँगा बेचते एव सस्ते भावो मे वहाँ की वस्तुओ को खरीदते।

(२०१से२१६) सिंघल द्वीप का उस समय धनवाहन नाम का सम्राट था। उसके श्रीमती नाम की राजकुमारी थी जो एक भयकर व्याधिसे पीडित थी। जो भी व्यक्ति रात्रि को उसका पहरा देता था, वही मृत्यु को प्राप्त हो जाता था। इस कार्य के लिये राजा ने पहरे पर भेजने के लिये प्रत्येक परिवार को अवसर बाँट रक्खा था। उस दिन एक मालिन के इकलौते पुत्र की वारी थी, इसलिये वह प्रात काल से ही रो रही थी। जिनदत्त उसके करुण विलाप को नहीं सह सका और उसके पुत्र के स्थान पर राजकुमारी के पास स्वयं जाने को तैयार हो गया।

(२१७से२३२) सायकाल को जव वह जिनदत्त राजा की पीडित कन्या के पास पहरा देने गया, तो राजा उसे देखकर वडा दुखित हुआ और राजकुमारी की निंदा करने लगा। जिनदत्त राजकुमारी से मिला। राजकुमारी ने उसके रूप, यौवन एव आकर्षक व्यक्तित्व को देखकर उससे वापस चले जाने की प्रार्थना की। वे वातचीत करने लगे और इसी बीच में राजकुमारी को निद्रा आगयी। बातचीत के समय जिनदत्त ने उसके मुँह मे एक सर्प देख लिया। जव राजकुमारो सो गई, तो वह श्मशान मे जाकर एक नर-मु ड उठा लाया और उसे राजकुमारी की खाट के नीचे रख दिया और तलवार हाथ मे लेकर स्वय वही छिप गया। रात्रि को राजकुमारी के मुख में से वह भयकर काला सर्प निकला। वह नर मु ड के पास जाकर उसे डसने लगा। जिनदत्त ने जब यह देखा तो उसने सर्प को पूंछ पकड कर घुमाया, जिससे वह व्याकुल होगया और फिर उसे पोटली मे बाँध कर नि शक सोगया।

(२३३से२३९) प्रात होने पर राजा को जिनदत्त के जीवित रहने के समाचार मालूम पड़े तो वह तुरन्त ही कुमारी के महल मे आया और सारी स्थिति से अवगत हुआ। राजा ने श्रीमती के साथ जिनदत्त का विवाह कर दिया। कुछ दिनो तक वे दोनो वही सुखपूर्वक रहे और जव जलयान चलने लगा तो वह भी राजा से आज्ञा लेकर श्रीमती के साथ रवाना हुआ। राजा ने विदा करते हुये उसे अपार सम्पत्ति दी।

(२४०से२४३) सागरदत्त श्रीमती के रूप एवं यौवन को देखकर कामासक्त हो गया एव उसे प्राप्त करने का उपाय सोचने लगा। उसने एक पोटली समुद्र मे गिरा दी। पोटली के गिर जाने पर वह जोर २ से रोने लगा तथा उसे प्राप्त करने के लिये हाहाकार करने लगा। जिनदत्त सागरदत्त की पीडा को देखकर एक रस्सी के सहारे पोटली को निकालने के लिये समुद्र मे उतर गया। तब सागरदत्त ने डोरी को बीच ही मे से काट दिया, जिससे जिनदत्त समुद्र मे रह गया।

(२४४से२५८) श्रीमती उसे डूबा हुआ जानकर विलाप करने लगी। सागरदत्त उसे मीठी २ बातो से फुसलाने लगा। लेकिन उसके शील के प्रभाव से जलयान ही डगमगाने लगा। जलयान के अन्य व्यापारियो ने सागरदत्त को खूब फटकारा तथा सब लोग श्रीमती के हाथ पैर जोडने लगे। आखिर जल-यान एक द्वीप पर जा लगा। फिर वह श्रीमती सागरदत्त को छोडकर अन्य व्यापारियो के साथ चम्पापुरी चली गई और चैत्यालय मे विमलमती के साथ रहने लगी।

(२५९से२९८) समुद्र मे गिरते ही जिनदत्त ने भगवान का स्मरण किया। इतने मे ही उसे दो लकडी के टुकड़े मिल गये और उनके सहारे वह एक विद्याधर-नगरी मे पहुँच गया। तट पर आते हुये देखकर पहिले तो वहाँ के चौकीदार उसे मारने के लिये दौडे लेकिन बाद मे उसकी शक्ति एव साहस को देखकर उन्होने उसका स्वागत किया और उसे विमान मे बैठाकर विद्याधरो की नगरी रथनूपुर ले गये। वहा उसका भव्य स्वागत हुआ और वहाँ के राजा अशोक ने अपनी कन्या शृ गारमती का उसके साथ विवाह कर दिया। जिनदत्त को दहेज मे १६ विद्याएँ मिली तथा इनके अतिरिक्त उसने और भी विद्याएँ प्राप्त की। जिनदत्त वहाँ काफी समय आनन्द से रहा तथा अन्त मे प्रस्थान की तैयारी करने लगा। राजा ने उसे काफी सम्पत्ति दी तथा एक विमान दिया। वह विमान से शृ गारमती सहित चपापुरी मे आ गया।

(२६६से३१६) वहाँ सबसे पहिले उसने वही बाडी देखी। वे दोनों उस रात उद्यान मे ही ठहर गये। पहिले जिनदत्त सो गया और बाद में शृंगारमती सो गई और जिनदत्त जागने लगा। जिनदत्त ने अपनी स्त्री को अपना कौशल दिखलाने के लिये बौना का रूप धारण किया। शृंगारमती जब जगी और उसने जिनदत्त को नही पाया तो वह विलाप करने लगी। वह जिनदत्त का नाम लेकर रोने लगी। इतने में ही वहाँ विमल सेठ आया और उसे चैत्यालय मे ले गया जहाँ विमलमती एव श्रीमती पहिले से जिनदत्त की प्रतीक्षा कर रही थी।

(३२०से३३३) जिनदत्त बौने का रूप धारण कर नगर में अनेक कौतूहल पूर्ण कार्य करने लगा। उसने राजा से भेंट की और अपनी स्थिति पर उससे निवेदन किया। उसने कहा कि वह भूखो मरने के कारण ब्राह्मण से बौना बन गया है। उसने राजा से उसके द्वारा किये हुये कौतुक देखने की प्रार्थना की। राजा ने उसे आज्ञा देदी। वह खेल दिखलाने लगा। वह अपनी विद्यावल से आकाश मे उड़ गया और अनेक ताल धर कर ताली बजाने लगा। राजा ने प्रसन्न होकर उससे पुरस्कार माँगने के लिये कहा। तब राज-सभा के किसी सदस्य ने कहा कि यदि यह विमल सेठ की तीनो लड़कियों को जो चैत्यालय मे मौन रह रही थी बुला सके तब ही इसे पुरस्कार दिया जाए। बौने ने कहा कि मानव ही नही वह पाषाण प्रतिमा को भी बुला सकता है। फिर उसने विद्यावल से पाषाण की शिला को भी हँसा दिया।

(३३४से३४३) राजा ने फिर उससे पुरस्कार के लिये कहा। इस पर किसी अन्य व्यक्ति ने कहा कि जब तक वह विमल सेठ की तीनो लडकियों को न हँसा दे, तब तक उसे पुरस्कार नही दिया जाए। जिनदत्त ने यह भी स्वीकार कर लिया और एक २ दिन उक्त तीनो मे से एक २ स्त्री को बुलाने के लिये कहा। उसके कहे अनुसार वारी २ से वे स्त्रियाँ आई और जिनदत्त ने उनकी सारी वाते बतलादी। इससे राजा और भी प्रभावित हुआ।

(३४४से३६०) इसी समय राजा के महल का एक हाथी उन्मत हो गया और सब बंधन तोडकर वह नगरी मे स्वच्छद फिरने लगा। चारो ओर कोलाहल मच गया। तीन दिन तक वह हाथी किसी से भी नही पकडा जा सका। लोग नगर छोड़कर भागने लगे। राजा ने घोषणा की कि जो भी वीर हाथी को वश मे कर लेगा उसे वह अपनी कन्या एव आधा राज्य देगा। बौने ने राजा की घोषणा को स्वीकार किया। बौने ने विद्या-बल से हाथी को वश मे कर लिया, उसने उस पर चढकर खूब घुमाया और अंत मे उसे ले जा कर ठाण मे बाँध दिया। बौने का यह चमत्कार देखकर उपस्थित जनता ने उसकी जयजयकार की।

(३६१से३८४) बौने ने राजा से राजकुमारी के साथ विवाह के लिये कहा। राजा जिन मदिर गया और उसने अपने गुरु से सारी बात कही। गुरु ने राजा से जिनदत्त द्वारा किये गये अबतक के कार्यो का सविस्तार वर्णन किया। फिर राजा ने बौने को वास्तविक बात बताने के लियेकहा तो वह राज-कुमारी के साथ विवाह करने से इन्कार करने लगा। मन्त्रियो ने राजा से बौने के साथ राजकुमारी का विवाह करने के लिये मना किया।

(३८५से४२७) मन्त्रियो ने बौने से फिर अपने जीवन की सत्य कथा कहने के लिये कहा, तो उसने अपनी सारी राम कहानी कहदी और कहा कि विहार (चैत्यालय) मे रहने वाली तीनो स्त्रियाँ उसकी पत्नियाँ थी। यह सुन राजाने उन स्त्रियो को बुलाने भेजा, तो वे मौन धारण कर बैठ गयी। इस पर राजा, मंत्रीगण एव प्रजाजन उस चैत्यालय मे गये और उनसे बौने द्वारा कही हुई बात पर प्रकट करने के लिये कहा। बौने और उन स्त्रियो मे खूब वाद-विवाद हुआ। तीनो स्त्रियो ने उसे अपना पति मानने से इन्कार कर दिया तथा हप्पा सेठ की कथा कही जिसके विदेश जाने पर एक दूसरा धूर्त आकर हप्पा सेठ बन गया था और उन स्त्रियो ने भी उसे अपना स्वामी मान लिया था।

(४२८से४४६) अन्त मे तीनो स्त्रियो की उसने परीक्षा ली। उसकी परीक्षा मे सफल होने के पश्चात् जिनदत्त ने अपना वास्तविक रूप धारण किया।

वह कामदेव के समान देह वाला हो गया। सभी उसके रूप को देखकर चकित हो गयी। तीनो स्त्रियाँ उसके चरणो मे पडगई और अपनी २ कथा कहने लगी। राजा ने भी उससे क्षमा माँगी तथा अपनी राजकुमारी का विवाह उसके साथ कर दिया। राजा ने उसे अपार धन, सम्पदा, एव हाथी घोडे आदि वाहन दिये।

(४४७से४५६) जिनदत्त कुछ दिनो तक वहाँ रहने के पश्चात् सागर-दत्त से मिलने गया। उसके पापोदय से हाथ-पांव गल गये थे। जिनदत्त ने उससे अपना सारा धन ले लिया और चम्पापुर से बिदा लेकर वह अपने देश वसतपुर को रवाना हुआ। उसने अपने साथ एक बडी भारी सेना ली। उसकी सेना को देखकर बडे २ राजा काँपने लगे और इस तरह वह बडे ठाट-बाट से से वसतपुर के समीप पहुँच गया।

(४५७से४६४) वसतपुर की प्रजा सेना को देखकर डर से भागने लगी तथा सारा नगर सेना से वेष्टित हो गया। खाइयाँ खोद कर उन्हे जल से भर दिया। चन्द्रशेखर राजा ने प्रजा को सान्त्वना दी और कहा कि जबतक उसके पास दो हाथ है, तबतक कोई भी शत्रु परकोटे मे पैर नही रख सकता। चारो ओर मोर्चाबंदी होने लगी। राजा ने अपने मत्रियो से मत्रणा करके वास्त-विक स्थिति जानने के लिये जिनदत्त के पास दूत भेजा।

(४६५से४७४) चन्द्रशेखर का दूत जिनदत्त के दरबार मे गया और उसने उसके आगे रत्नो का थाल रखकर यथायोग्य अभिवादन किया। दूत ने जिनदत्त से व्यर्थ ही प्रजा का सहार न करने एव उचित दण्ड लेकर वापस लौटने के लिये प्रार्थना की। लेकिन जिनदत्त ने कहा कि उसे किसी प्रकार के दण्ड की आवश्यकता नही। वह तो नगर सेठ जीवदेव एव उसकी पत्नी जीवजसा को लेना चाहता है। दूत ने सेठ के पवित्र जीवन की प्रशसा की और कहा कि सभवत राजा ऐसे भव्य पुरुष को नही दे सकता। लेकिन जिनदत्त ने दूत की एक न सुनी और शीघ्र ही उन्हे समर्पित करने का आदेश दिया।

(४७५से४८६) दूत ने वापस लौटकर राजा से सारी बात कही। राजा चन्द्रशेखर ने किसी भी परिस्थिति में सेठ को देना स्वीकार नही किया। जब यह बात सेठ को मालूम हुई तो वह जिनदत्त को याद करने लगा और उसने अपने फूटे भाग्य को धिक्कारा। सेठ अपने ही कारण सारे नगर पर इतना सकट लेने को तैय्यार नही हुआ और शत्रु सेना मे स्वय जाने को तैय्यार हो गया किन्तु उसकी आँखे फडकने लगी एव चित्त पुलकित हो उठा जो उसको पुत्र मिलन की मानो सूचना दे रहे थे। सेठ सेठानी कुछ अन्य व्यक्तियो के साथ, पच परमेष्ठी का स्मरण करते हुये राजा से मिलने चल दिये।

(४८७से५१२) डरते २ सेठ राजा के पास पहुँचा। जिनदत्त अपने माता पिता को देखकर प्रसन्न हो रहा था। उसने उनके मौन रहने का कारण पूछा, तो सेठ ने अपने विदेश गये हुये पुत्र के बारे मे सारी बात कही। सेठानी ने कहा उसके समान उनके भी एक पुत्र था। यह सुनकर जिनदत्त उसके पैरो मे गिर गया और उसकी चारो पत्नियाँ भी उसके चरणो मे लिपट गयी। माता के स्तनो से दूध की धारा बह निकली। राजा चन्दशेखर ने जिनदत्त की बडे आदर के साथ अगवानी की और दोनो वसन्तपुर मे राज्य करने लगे। कुछ वर्षो बाद जब चन्द्रशेखर का स्वर्गवास होगया तो जिनदत्त अकेला ही राज्य करने लगा।

(५१३से५४८) एक बार वसतपुर मे निर्ग्रन्थ मुनि का आगमन हुआ जिनदत्त अपनी स्त्रियो के साथ उनके दर्शनार्थ गया और उनका धर्मोपदेश सुना। इसके पश्चात् उसने अपने पूर्व भवो के बारे मे जानना चाहा तो उसका भी समाधान कर दिया। ससार की असारता को जानकर उसने चारो पत्नियो सहित जिन दीक्षा ले ली और तपश्चरण कर अष्टम स्वर्ग प्राप्त किया। उसकी चारो स्त्रियाँ भी मर कर स्वर्ग गयी।

(५४९से५५३) अन्त मे कवि ने जिनदत्त चरित की प्रशसा करते हुये लिखा है कि "जो कोई भी इस काव्य को सुनेगा, सुनावेगा, लिखेगा तथा लिखवायेगा उसे धन धान्य, सम्पदा एवं पुण्य लाभ होगा"।

जैन कथा साहित्य का स्वरूप एवं विकास

जैन कवियो एव विद्वानो ने कथा ग्रथो के लिखने में पूर्ण रुचि ली है। इन कथा ग्रंथो का मुख्य उद्देश्य सामान्यत किसी पुरुष-स्त्री का चरित्र सक्षेप मे वर्णित कर उसके सासरिक सुख-दुखो का कारण उसके स्वय कृत पाप-पुण्य के परिणाम को प्रकट करना है। धर्मोपदेश के निमित्त लघु कथाओ का निर्माण श्रमण-परम्परा मे बहुत ही प्राचीन काल से रहा है। इसके अतिरिक्त कथाकारो का मुख्य उद्देश्य जगत् के प्राणियो को कल्याण मार्ग की ओर प्रेरित करने का रहा है। लघु कथाओ के स्वाध्याय मे साधु एव गृहस्थ दोनो ही विशेष रुचि लेते हैं और वे उन्हे अच्छी तरह से हृदयस्थ कर लेते है। इसीलिये लघु एव वृहद् दोनो ही प्रकार के कथा काव्य हमे प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रंश एव हिन्दी भाषा मे प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। कथाओ के मुख्य विषय का वर्णन करने का ढग प्राय. इन सभी भाषाओ मे एकसा रहा है।

जैन कथा साहित्य को हम तीन भागो मे विभाजित कर सकते है।

(१) व्रत कथा साहित्य—

एक प्रकार की कथायें व्रतो के माहात्म्य प्रतिपादित करने के लिये लिखी जाती रही है। ये प्राय लघु कथाओ के रूप मे मिलती है जिनमे किसी एक घटना को लेकर किसी पात्र-विशेष के जीवन का उत्थान अथवा पतन दिखाया जाता रहा है। कथा के मध्य मे किसी सकट अथवा व्याधि विशेष के निवारणार्थ व्रत को पालन करने का उपदेश दिया जाता है। व्रत की निर्विघ्न समाप्ति पर उसके सभी कष्ट दूर हो जाते है और तब उसके जीवन को उदा-

हरण स्वरूप रख कर पाठको से किसी एक व्रत विशेष को पालने का उपदेश दिया जाता है। ऐसी कथाओ मे अनन्तव्रत कथा, अष्टाह्निकाव्रत कथा, रोहिणीव्रत कथा दशलक्षणव्रत कथा, द्वादशव्रत कथा, रविव्रत कथा, मेघव्रत कथा, पुष्पाजलिव्रत कथा सुगन्धदशमीव्रत कथा, मुक्तावलिव्रत कथा, आदि के नाम उल्लेखनीय है।

(२) जीवन कथायें—

कुछ ऐसी लघु अथवा वृहद् कथायें हैं जिनमे किसी व्यक्ति विशेष के जीवन का वर्णन रहता है। इसके अतिरिक्त कुछ सामाजिक अथवा घटना-प्रधान कथायें भी लिखी जाती रही है। अठारह नाता कथा तथा रक्षावधन कथा कुछ ऐसी ही कथा कृतियां है। तीर्थंकर, आचार्य, अथवा व्यक्ति-विशेष से सम्बन्धित कथाओ मे ज्येष्ठ जिनवर कथा, अकलक देव कथा, अजन चोर कथा, चन्दनमलयागिरि कथा, धर्म बुद्धि पाप बुद्धि कथा, नागश्री कथा, निशिभोजन कथा एव शील कथा आदि के नाम उल्लेखनीय है। ये कथाये भी जीवन के लिये प्रेरणादायक सिद्ध हुई हैं।

(३) रोमाञ्चक कथा साहित्य—

तीसरी प्रकार की वे कथायें हैं जो किसी श्रावक एव मुनि विशेष के जीवन पर आधारित रहती है और उनमे नायक के जीवन का आद्योपान्त वर्णन रहता है। इनमे अधिकाश कथाये रोमाञ्चक होती है जिनमे नायक द्वारा आश्चर्यजनक कार्यो को सम्पन्न किया जाता है। इसके जीवन का कभी उत्थान होता है तो कभी उसका मार्ग सकटो से अवरुद्ध दिखाई देने लगता है लेकिन नायक अपनी विशिष्ट योग्यता एव साहस से उन्हे पार करके पाठको की प्रशसा का पात्र बनता है और पुण्य की महिमा का यशोगान किया जाने लगता है। ऐसी कथाओ मे नायक का एक से अधिक विवाह, सिंहल-यात्रा, वन मे अकेले भ्रमण करके कितनी ही अलौकिक विद्याओ को प्राप्त करना, उन्मत्तगज को वश मे करना, अपनी विद्याओ का प्रदर्शन करना आदि घटनायें मुख्य रूप

से वर्णित होती हैं जो पाठकों में नायक के जीवन के प्रति उत्सुकता बनाये रखती है। ऐसे रोमाञ्चक कथा-काव्यो मे श्रीपाल, रत्नचूड, जिनदत्त, नागकुमार, भविष्यदत्त, करकडु, सनत्कुमार, धन्यकुमार, रत्नशेखर, जीवन्धर, प्रद्युम्न आदि विशिष्ट महापुरुषो के जीवन पर आधारित काव्य उल्लेखनीय हैं। ये काव्य प्राय उपर्युक्त सभी भाषाओ मे मिलते है। इन पुण्य पुरुषो के जीवन मे घटने वाली प्रमुख घटनायें निम्न प्रकार है :—

श्रीपाल—

सिद्धचक्र पूजा के माहात्म्य को प्रकट करने के लिये श्रीपाल के जीवन का स्मरण किया जाता है। उसके जीवन मे सर्व प्रथम कुष्ठ रोग पीडा की घटना आती है जिसके कारण उसे राज्य-भार छोडकर जंगल की शरण लेनी पडती है। इसी बीच उसका राजकुमारी मैनासुन्दरी से विवाह हो जाता है पाप-पुण्य के अनुसार सुख-दुख की प्राप्ति होती है इस सिद्धान्त पर अटल रहने के कारण वह अपने पिता की कोप भाजन बनती है। मैनासुन्दरी अपनी पतिभक्ति एव सिद्धचक्र पूजा के प्रभाव से श्रीपाल एव उसके साथियो का कुष्ठ दूर करती है। श्रीपाल को नया जीवन मिलता है और वह यश एव सम्पत्ति अर्जन के लिये विदेश जाता है वहाँ उसका कितनी ही राजकुमारियो के साथ विवाह होता है, लेकिन धवल सेठ के द्वारा समुद्र मे गिराया जाना, अपने बाहुबल से उसे तैर कर पार करना, राजकुमारी के साथ विवाह होने के समय अपने विरोधियों के कुचक्रो से शूली का आदेश मिलना, पुनः दैवी सहायता से उससे भी बच जाना एवं राजकुमारी के साथ विवाह होना आदि घटनायें उसके जीवन मे इस प्रकार आती है, इससे पाठक यह कल्पना भी नही कर सकता कि भविष्य मे नायक के जीवन मे कौन सी विपत्ति एव सम्पत्ति आने वाली है। श्रीपाल के जीवन की कथा जैन समाज मे बहुत प्रिय है।

रत्नचूड—

रोमाञ्चक घटनाओं से भरा पडा है। रत्नचूड ने एक मदोन्मत्त गज का दमन किया था किन्तु वह गज के रूप मे विद्याधर था अत. उसने रत्नचूड का ही अपहरण कर उसे जगल मे ला पटका। इस के पश्चात् वह नाना प्रदेशो मे भ्रमण करता रहा और उसने अनेक सुन्दर राजकन्याओं से विवाह किया, अनेक विद्यायें प्राप्त की। तदनतर राजधानी आकर उसने कितनो ही वर्षों तक राज्य सुख भोगा और अन्त मे साधु जीवन अपना कर स्वर्ग लाभ लिया। रत्नचूड के जीवन पर प्राकृत भाषा मे अनेक रचनायें मिलती है

नागकुमार—

श्रुतपचमी व्रत के माहात्म्य को प्रगट करने के अवसर पर नागकुमार के जीवन का वर्णन किया जाता है। नागकुमार कनकपुर के राजा जयन्धर एव रानी पृथ्वी देवी का पुत्र था। शैशव मे नागो के द्वारा रक्षा किये जाने के कारण उसका नागकुमार नाम पडा। नाग देश मे ही अनेक विद्यायें सीखकर वह युवा हुआ और वहाँ की सुन्दर किन्नरियो से उसने विवाह किया। नागकुमार का सौतेला भाई श्रीधर उससे विद्वेष रखता था। नागकुमार जब नगर के एक मदोन्मत्त हाथी को वश करने मे सफल होगया तो श्रीधर और भी कुपित हो गया।

नागकुमार अपने पिता की सलाह मानकर कुछ समय के लिये विदेश भ्रमण के लिये चला गया। सर्व प्रथम वह मथुरा पहुचा और वहाँ के राजा की कन्या को वन्दीगृह से निकाल कर काश्मीर पहुँचा जहाँ पर वीणा वादन मे त्रिभुवनरति को पराजित करके उसके साथ विवाह किया। रम्यक वन मे उसका काल गुफावासी भीमासुर से साक्षात्कार हुआ। काचन गुफ पहुँच कर उसने अनेक विद्यायें एव अपार सम्पत्ति प्राप्त की। इसके पश्चात् उसकी गिरिशिखर के राजा वनराज से भेंट हुई और ऊर्जयन्त पर्वत की ओर उसकी पुत्री लक्ष्मी से उसने विवाह किया। नागकुमार वहाँ से ऊर्जयन्त पर्वत की ओर गया। वहाँ उसने सिन्ध के राजा चण्डप्रद्योत मे अपने मामा

गिरिनगर के राजा की रक्षा की और उसके बदले उसकी पुत्री से विवाह किया। इसके पश्चात् उसने अवध नगर के अत्याचारी राजा सुकठ का वध किया और उसकी पुत्री रुक्मिणी से विवाह किया। अन्त मे उसने पिहितासव मुनि से अपनी प्रिया लक्ष्मीमती के पूर्व भव की कथा एव श्रुतपचमी के उपवास के फल का वर्णन सुना। श्रीधर द्वारा दीक्षा लेने के कारण उसके पिता ने नागकुमार को बुलाकर और उसे राज्य देकर स्वय दीक्षा धारण कर ली। नागकुमार ने राज्य सुख भोग कर अन्त मे साधु जीवन अपनाया और मर कर स्वर्ग प्राप्त किया। महाकवि पुष्पदत का अपभ्रंश भाषा मे निबद्ध "णायकुमार चरिउ" इस कथा की एक बहुत सुन्दर रचना है।

भविष्यदत्त—

भविष्यदत्त एक श्रेष्ठि पुत्र है। वह अपने सौतेले भाई बन्धुदत्त के साथ व्यापार के लिये विदेश जाता है वहाँ वह खूब धन कमाता है और विवाह भी करता है। उसका सौतेला भाई उसे बार-बार धोखा देता है और एक दिन बन मे उसे अकेला छोडकर उसकी पत्नी के साथ लौट आता है। भविष्यदत्त भी एक पथिक की सहायता से घर लौटता है और राजा को प्रसन्न करके राज-कन्या से विवाह कर लेता है। भविष्यदत्त का पूर्वार्द्ध जीवन रोमाञ्चक और साहसिक यात्राओ एवं आश्चर्यजनक घटनाओ से भरा पड़ा है। उत्तरार्द्ध मे युद्ध एव पूर्व भवो के वर्णन की बहुलता है। भविष्यदत्त के जीवन पर कितनी ही रचनायें मिलती है। इन रचनाओ मे धनपाल कृत "भविसयत्तकथा" अत्यधिक सुन्दर काव्य है।

करकुण्डु—

मुनि कनकामर ने करकुण्डु के जीवन पर अपभ्रंश में बहुत सुन्दर काव्य लिखा है जो दश सधियों मे विभक्त है। यह एक प्रेमाख्यानक कथा है जिसमें करकण्डु का मदनावली से विवाह, विद्याधर द्वारा मदनावली-हरण, सिंहलयात्रा, वहाँ की राजकुमारी रतिवेगा के साथ विवाह, मार्ग मे मच्छ

द्वारा आक्रमण, विद्याधरों द्वारा करकण्डु का अपहरण एव विवाह, रतिवेगा एव मदनावली से मिलन की घटनाओ का रोमाचक रीति से वर्णन किया गया है। वीच वीच मे अवान्तर कथाये भी वर्णित है। करकण्डु अन्त मे साधु जीवन व्यतीत कर निर्वाण प्राप्त करते है।

प्रद्युम्न—

प्रद्युम्न श्री कृष्ण के पुत्र थे। रुक्मिणी इनकी माता का नाम था। जन्म की छठी रात्रि को ही इन्हे धूमकेतु असुर हरण कर ले गया और वन मे इन्हे एक शिला के नीचे दवा कर चला गया। उसी समय कालसवर विद्याधर ने इन्हे उठा लिया और अपनी स्त्री को पुत्र रूप मे पालने के लिये दे दिया। प्रद्युम्न ने युवावस्था को प्राप्त होने पर कालसवर के शत्रु सिंहरथ को पराजित किया। प्रद्युम्न का वल एव उसकी शक्ति देखकर अन्य राजकुमार उससे जलने लगे। जिनमन्दिर के दर्शन के वहाने वे उसे वन मे ले गये और उसको विपत्तियो से लडने के लिये अकेला छोड कर भाग आए। लेकिन प्रद्युम्न डरा नही और उनपर विजय प्राप्त कर उसने अनेको विद्याएँ प्राप्त की। वापिस लौटने अपनी माता कचनमाला से तीन विद्यायें चतुरता से प्राप्त की किन्तु उसके कहे अनुसार काम न करने कारण उनको माता का ही क्रोध भाजन वनना पडा। कालसवर भी प्रद्युम्न को मारने की सोचने लगा लेकिन अन्त मे नारद द्वारा बीच वचाव करने पर वास्तविक स्थिति का पता लगा। प्रद्युम्न द्वारिका वापस लौट आये। मार्ग मे वे दुर्योधन की कन्या को वल पूर्वक छीन कर विमान द्वारा द्वारिका आए। द्वारिका पहुचने पर सत्यभामा के पुत्र भानुकुमार को अपनी अनेको विद्याओ से खूव छकाया। तदनतर ब्रह्मचारी का वेश वना कर वे अपनी माता रुक्मिणी के पास पहुँचा। वहाँ उन्होने सत्यभामा की दासियो का विकृत रूप कर दिया। इसके पश्चात् प्रद्युम्न ने मायामयी रुक्मिणी की वाँह पकड कर उसे श्रीकृष्ण की सभा के आगे मे ले जाते हुए ललकारा। दोनो ओर की सेना आमने सामने आ डटी तथा श्रीकृष्ण एव प्रद्युम्न मे खूव घमासान युद्ध हुआ। किसी की भी हार न होने से पूर्व

नारद ने बीच मे आकर प्रद्युम्न का परिचय दिया। इससे सबको बडी प्रसन्नता हुई और प्रद्युम्न का खूब स्वागत हुआ तथा नगर मे उत्सव मनाया गया। प्रद्युम्न ने वर्षो राजसुख भोगा तथा अन्त मे दीक्षा लेकर निर्वाण प्राप्त किया। महाकवि सिंह की अपभ्रंश भाषा मे पज्जुण्णकहा तथा कवि सधारु कृत हिन्दी मे प्रद्युम्न चरित दोनो ही सुन्दर काव्य है।

इस प्रकार रोमाञ्चक कथा काव्य लिखने की परम्परा जैनाचार्यो एव विद्वानो मे बहुत प्राचीन काल से रही है। इनके सहारे पाठक असद्गुण को छोडकर सद्गुणो की ओर प्रवृत्त होता है। इन रोचाञ्चक जीवन कथाओं मे बहुत सी घटनाएँ समान रूप से मिलती है जिनका कुछ वर्णन निम्न प्रकार है—

(१) रोचाञ्चक कथा काव्यो मे पुण्यपुरुषो, श्रेष्ठियो तथा राजकुमारो का जीवन वर्णित होता है। ये महापुरुष अपनी अलौकिक प्रतिभा के कारण किसी भी बडी से बडी विपत्ति का सामना करने मे समर्थ होते है। इन कथाओ मे धार्मिकता एव लौकिकता का मेल कराया गया है। प्रत्येक नायक अन्त मे साधु जीवन धारण करता है और मर कर स्वर्ग अथवा निर्वाण प्राप्त करता है। प्रद्युम्न, जिनदत्त, करकण्डु मर कर निर्वाण प्राप्त करते है, जबकि भविष्यदत्त, नागकुमार मर स्वर्ग जाते है। इस प्रकार ये कथायें शान्त रस मे पर्यवसान्त है।

(२) सभी रोमाञ्चक कथाओ मे प्रेम, विरह, मिलन का खूब वर्णन मिलता है। इससे जैन कवियो के प्रेमाख्यानक काव्य लिखने के प्रति औत्सुक्य प्रकट होता है। जिनदत्त, भविष्यदत्त, श्रीपाल, नागकुमार के जीवन मे कितनी ही घटनाये घटती है, उनका कभी किसी पत्नी से मिलन होता है तो कभी किसीसे विरह। वास्तव मे इस प्रकार की जीवन-कथाओ को १५वी शताब्दी तक खूब महत्व दिया गया और इस तरह अनेको कथा-ग्रंथो का निर्माण हुआ।

(३) ये काव्य युद्ध-वर्णन से भरे पडे है। प्रद्युम्न के जीवन का अधिकाश भाग युद्ध मे व्यतीत होता है। कभी-कभी नायक अपनी विद्याओ से युद्ध लडते

हैं। जिनमे सारी सेना एक बार मर भी जाती है, किन्तु युद्ध शान्त होने पर नायक उसे अपनी विद्या के बल से फिर जीवित कर देते है। वास्तव मे ये कथायें वीर-रस से ओत प्रोत होती है।

(४) इन कथा-काव्यों मे मदोन्मत हाथी पर विजय, सागर को तैर कर किसी राजकुमारी से विवाह, विद्याधर कुमारियो से विवाह तथा तथा उनसे अनेक विद्याएँ प्राप्त कर लेना, समुद्र-यात्रा, विदेश-गमन, यक्ष-गन्धर्व-विद्याधरो से युद्ध आदि ऐसी घटनायें है जिनमे एक से अधिक प्रत्येक नायक के जीवन मे मिलती है।

(५) रोमान्चक कथा काव्यो के नायक एक से अधिक विवाह करते हैं, तथा वे सभी जातियो की कन्याओ को ले आते है। इसे मध्यकाल मे बहु विवाह प्रथा प्रचलित होना जाना जाता है। नागकुमार एक सौ से भी अधिक राजकुमारियो से विवाह करता है।

(६) इन चरित-नायको के जीवन मे देवता, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर नाग आदि की पूरी सहायता मिलती है और कभी कभी विरोध भी सहना पडता है। जिनदत्त एव प्रद्युम्न को विद्यावरो से अनेक विद्यायें प्राप्त हुई थी। इसी तरह नागकुमार को नागो से खूब सहायता मिली थी।

(७) चरित-नायको के इन कथा काव्यो मे पूर्व भवो का भी वर्णन मिलता है जिससे उनके पूर्व भव मे किये गये पुन्यापुन्य का फल दर्शित होता है। बाद मे वे व्रत अथवा साधु जीवन धारण करने की ओर प्रेरित होते है।

इसी प्रकार का जिनदत्त चरित भी एक रोमान्चक शैली का काव्य है जिसका अध्ययन प्रस्तुत किया जारहा है।

जिणदत्तचरित–एक अध्ययन

भाषा —हिन्दी के आदिकाल मे निर्मित एव विकसित काव्यो मे 'जिणदत्तचरित' का स्थान विशेषत उल्लेखनीय है। इस कृति की रचना उस समय हुई थी जब यहाँ साहित्य मे अपभ्रंश की प्रधानता थी। महाकवि

स्वयम्भू, पुष्पदंत, धनपाल, वीर, नयनन्दि, धवल कनकामर, लाखू जयमित्र-हल, नरसेनदेव जैसे विद्वानो ने अपनी कृतियों से अपभ्रंश साहित्य को श्रीवृद्धि प्रदान कर रक्खी थी। वर्त्तमान भारतीय भाषाओ के साहित्य पर भी अपभ्रंश का प्रभाव बना हुआ था। विक्रमीय ग्यारहवी से चौदहवी शताब्दी का काल जिसे हिन्दी का आदिकाल कहा जाता है, भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश से बहुत प्रभावित है। जिणदत्त चरित की भाषा को हम पुरानी हिन्दी के नाम से सम्बोधित कर सकते है। 'जिणदत्त चरित' अपभ्रंश एव हिन्दी भाषा की एक बीच की कड़ी है। अपभ्रंश भाषा ने धीरे धीरे हिन्दी का रूप किस प्रकार लिया, यह इस काव्य से और सधारु के 'प्रद्युम्न-चरित[1]' जैसी रचनाओं से अच्छी तरह जाना जा सकता है। रचना अपभ्रंश एव राजस्थानी बहुल शब्दो से युक्त है किन्तु हिन्दी के ठेठ शब्दो का भी उसमे प्रयोग हुआ है।

भारत पर उस समय यद्यपि मुसलमानो का शासन था लेकिन उनको साहित्य एवं सस्कृति का उस समय तक भारतीय जीवन, साहित्य एव संस्कृति पर अधिक प्रभाव नही पडा था। साहित्य मे प्राय पूर्ण रूप से भारतीयता थी। हिन्दी के काव्यो का विकास प्राय अपभ्रंश काव्यों के अनुसरण से हुआ। १४ वी शताब्दी तक हिन्दी साहित्य की जो रचना हुई उस पर तो अपभ्रंश का प्रभाव रहा ही, किन्तु १४ वी के बाद लिखे गये पौराणिक एव रोमांचक शैली के प्रबन्ध काव्यो पर भी अपभ्रंश के काव्यों का सीधा प्रभाव दिखलाई पडता है।

काव्य—रूप

'जिणदत्त चरित' रोमाञ्चक शैली का चरित है जिनका नायक धीरोदात्त है। वह सद्‌वशोत्पन्न है, वीर है। अनेक विपत्तियो मे भी नही

---

१. प्रद्युम्न चरित – सपादक डॉ कस्तूरचद कासलीवाल
प्रकाशक – दि० जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी।

घवराता और उसमे सफल होकर निकलता है। अपनी सूझ-बूझ से ही वह श्रेष्ठि होकर भी राज्य प्राप्त करता है और वर्षो तक योग्यता पूर्वक शासन चलाता है। अन्त मे वह वैराग्य धारण कर स्वर्ग प्राप्त करता है। महा-काव्य की जो विशेपताएँ प्रस्तुत काव्य मे मिलती है वे निम्न प्रकार है —

(१) जिनदत्त का कथानक पुराण सम्मत लिखा गया है। कवि ने उसमे अपनी ओर से न कही जोडा है और न घटाया है।

(२) नायक एव उससे सम्वन्धित पात्रो की पूर्व भव की कथा मुख्य कथा का एक अ ग मात्र है।

(३) यह काव्य अन्त मे वैराग्य मूलक एव शान्तरस पर्यवसायी है। नायक अन्त मे मुनि वनकर स्वर्ग लाभ करता है और उसकी चारो पत्नियाँ भी स्वर्ग जाती है।

(४) प्रस्तुत काव्य मे अलौकिक तत्वो का समावेश हुआ है, जैसे अ जनी मूल से अपने आप को प्रच्छन्न करना, विद्याधरो से विद्याओ को प्राप्त करना, आकाश मार्ग से विमान मे वैठकर जिन चैत्यालयो की वन्दना करना, अपने वाहुवल से सागर पार करना, वौना वनकर अनेक कौतुक करना तथा मदोन्मत्त हाथी को वश मे करना आदि।

(५) प्रारम्भ मे तीर्थकरो की स्तुति की गयी है। सरस्वती का स्मरण एव काव्य रचना का उद्देश्य वतलाया गया है। इसके अतिरिक्त विनम्रता का प्रदर्शन, हीनता का प्रकाशन करते हुए लोक भापा मे काव्य लिखने का हेतु वताया गया है।

इस प्रकार उक्त विशेपताओ के आधार पर 'जिणदत्त चरित' महाकाव्य कोटि मे आ सकता है किन्तु इसमे वर्णनो की कमी है, शैली का चमत्कार नही है और न छद विधान मे किसी प्रकार की विशिष्टता लाने का प्रयास किया गया है। इससे यह रचना एक उदात्त व्यक्ति का चरित-काव्य ही मानी जानी चाहिए।

पुनः इसे कवि ने सर्गों में विभाजित नही किया है। केवल जब कथा को नया मोड देना होता है तो कवि यह कह उठता है कि 'एतहि अवरु कथतरु भयउ' (१२७) अर्थात् अब कथा का प्रभाव दूसरी ओर मुडता है। काव्य को सर्गो मे विभाजित्त करने की परम्परा को हिन्दी मे जैन विद्वानो ने बहुत कम अपनाया है। दो-चार कवियो के अतिरिक्त किसी ने भी अपनी रचनाओ को सर्गो एव अध्यायो मे विभाजित नही किया। जैन कवियों ने रास, वेलि, फागु, चरित, कथा, चौपई, व्याहलो, सतसई, सबोधन आदि के रूप मे जो काव्य लिखे, वे प्राय. विना सर्गों अथवा अध्यायो मे विभाजित हुए रचे गये हैं। सभवतः इन कवियो का उद्देश्य कथा को बिना किसी व्यवधान के अपने पाठको को सुनाने का रहा है।

नायक—नायिका

काव्य के नायक जिनदत्त है किन्तु नायिका का सम्मान किसको दिया जावे इस विषय मे कवि मौन है। जिनदत्त एक नही चार विवाह करता है। चारों ही पत्निया परिणीता है। किन्तु इन सबमे प्रथम पत्नी का अवश्य उल्लेखनीय स्थान है क्योंकि उसी के कारण जिनदत्त का चरित्र आगे बढता है तथा दूसरी एव तीसरी पत्नी भी उसी के आश्रय मे आ कर रहती हैं। इसलिये यदि नायिका का ही स्थान किसी को अवश्य देना हो तो वह प्रथम पत्नी विमलमती को दिया जा सकता है। लेकिन प्रतिनायक का पद तो किसी भी पात्र को नही दिया जा सकता। यद्यपि सागरदत्त सेठ उसकी पत्नी पर आसक्त होकर उसे समुद्र मे डुबो देता है लेकिन यह घटना तो उसके जीवन को एक और मोड पर ले जानेवाली घटना है। सागरदत्त प्रारम्भ मे तो जिनदत्त का परम सहायक रहा है। इसलिये इस काव्य मे कोई प्रतिनायक नही है। घटनाओ के वश नायक का स्वयमेव व्यक्तित्व निखरता रहता है और उसमे अन्य किसी विरोधी व्यक्ति की सहायता की आवश्यकता नही होती।

रस

जिणदत्त चरित शांत रस का महाकाव्य है। यद्यपि काव्य में कहीं कहीं

श्रृंगार, वीर, वीभत्स रसो का भी वर्णन हुआ है किन्तु काव्य का मुख्य रस शान्तरस ही है। जिनदत्त वणिक-पुत्र है। विवाह होने के पश्चात् वह व्यापार के लिये देशाटन को निकल जाता है और उसमे अपार सम्पत्ति अर्जन कर वापस स्वदेश लौट आता हे। राजा चन्द्रशेखर और उसकी सेनाओ मे जो युद्ध की आशका होती है वह केवल आशका मात्र बन कर ही रह जाती है। हाँ इतना अवश्य है कि जिनदत्त भी अपने ऐश्वर्य एव विद्याओ के बल पर चन्द्रशेखर की उपस्थिति मे आधा राज्य और उसकी मृत्यु के पश्चात् सपूर्ण राज्य का एक मात्र स्वामी बन जाता है। लेकिन इस परिवर्तन मे खून की एक धारा भी नही बहती तथा न चन्द्रशेखर और न जिनदत्त को हथियार उठाने की आवश्यकता पडती है। अन्त मे वह वैराग्य धारण कर स्वर्ग लाभ करता है।

श्रृंगार रस का वर्णन विमलमती के सौन्दर्य-वर्णन करने के प्रसग मे हुआ है। कवि ने विमलमती की सुन्दरता का अच्छे एव अलकृत शब्दो मे वर्णन किया है। उस का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि वह अनिद्य सुन्दरी थी[1]। हस के समान उसकी गति थी। वह क्रीडा करती हुई, सरोवर तट पर बैठी हुई और जल से खेलती हुई रूपराशि लगती थी। उसकी पिण्डलियो मे सभी वर्ण शोभित थे मानो वे कथु की पिंडलिया हो। कदली के समान उसकी जाघें थी तथा उसकी कटि मे समा जाने वाली थी। वह मानो कामदेव का छत्र थी। उसका शरीर चपा के समान था। वह पीन स्तनो वाली थी। उसकी उदर की पेशियां एव कटितल फैले हुये थे। चन्द्रमा के समान उसका मुख था। उसके नेत्र दीर्घ थे तथा वह मृगनयनी थी। उसके शरीर से

सोजि सुन्दरी रणयरण पुत्तार।
ललिय हस गइ कीलमाण सरवर वइठी।
खेलती जल पयड रूप रासि मइ दिठिय॥

छत्तीस

किरणें फूटती थी। उसकी भौंहि कामदेव के धनुष के समान थी। उसकी चाल मस्ती को लिये हुये थी एवं उसकी एक झलक पाकर ही कुमुनि भी पिघल जाते थे।

सहिय समाणिय तहो भणिय, इम जंपइ सुतधारी।
तासु रूव गुण वण्णियउ, कइ रल्ह सविचार ॥९०॥
मुंदड़िय सहु कसु सोहइ पाउ, चालत हंसु देउ तस भाउ।
जाणू थाणु विहितहि घणे, तहि ऊपरि नेउर वाजणे ॥९१॥
सवई चण्णु सोहइ पिंडरी, जणु छहि ते कुंथू पिंडरी।
जघ जुयल कदली ऊयरड, तासु लक मूठिहि माडयइ॥९२॥
जणु हइ छति अणंगहु तणी, सहइ जु रंग रेह तहि घणी।
नीले चिहुर स उज्जल काख, अचरु सुहाइ दीसहि काख ॥९३॥
चपावण्णी सोहइ देह, गल कदलह तिण्णि जसु रेह।
पीणत्थणि जोव्वण मयसार, उर पोटी कडियल वित्थार ॥९४॥
हाथ सरिस सोहहि आंगुली, णह सु त दिपहि कुंद की कली।
भुव वल जतु काटि जणु ठाणें, वण्णि सु रेख कविन्हु ते कहे ॥९५॥
इलोणी अरु माठी लीच, हरु सु पट्टिया सोइय गीव।
काणि कुंडल इकु सोवनु मणी, नाक थाणु जणु सूवा तणी ॥९६॥
मुह मडलु जोवइ ससि वयणु, दीह चखु नावइ मियणयणि।
जहि केहो वप चाले किरण, जणु रि डमणी हीरा मणि छिरण॥९७॥
भउह मयण धणु खचिय धरी, दिपइ लिलाट तिलक कंचुरी।
सिरह माग मोत्तिय भरि चलिड, अवरु पीठ तलि विणी रूलई ॥९८॥
नाद विनोद कथा आगली, पहिरी रयण जडी कचुली।
इकु तहि अत्थि देह की किरणी, अवर रल्ह पहिरइ आभरण॥९९॥
जिस तणु वाहइ दिठि पसारि, काम वाण वसु घालइ मारि
तिह की रूपु न वण्णइ जाइ, देखि सरीर मयणु अकुलाइ ॥१००॥
माल्हंती विलासगइ चलइ, दरसन देखि कुमुणिवर ढलइ।

वीर रस का वर्णन जिनदत्त के स्वदेश लौटने के समय हुआ हैं। उनके अतुल वैभव, परिजन, सेवक एव योद्धाओ को देखकर चन्द्रशेखर राजा उसे आक्रमण कारी राजा मानकर उनका सामना करने के लिये युद्ध की तैय्यारी करने लगता है। इसी प्रसग को लेकर कवि ने कुछ पद्य लिखे है जिन्हे वीर-रस से युक्त कहा जा सकता है। जिनदत्त की सेना मे दश लाख घुड-सवार, छह हजार हाथी एव असख्य ऊट थे। पैदल एव धनुषधारी दश करोड थे जब उसकी सेना ने अभियान किया तो धूल के उडने से सूर्य का दिखना बन्द होगया और जब निशानो को जोडकर चोट मारी गई तो उसकी ध्वनि से बहुत से नागरिक एव राजा देश छोड कर भाग गये। किसी राजा ने भी उसका सामना करने का साहस नही किया। जब वह बसतपुर के पास पहुंचा तो वहां की सारी प्रजा भागकर किले मे चली गई। चारो ओर की परिखा को जल से भर दिया गया। राजा चन्द्रशेखर ने दरवाजे की रक्षा का भार स्वय सम्हाल लिया। चारो दिशाओ मे सुभट खडे हो गये [1]

---

१ लए तुरग मोल दह लाख मइगल छ सहस करह असख।
सहस बत्तीस जोडणि .. , चाउरगु बलु बलु दीन पवाणु ॥४५१॥
पाइक धाणुक हइ दह कोडि, पयदल चलउ रायसिंहु जोडि।
छत्तधारी बुसि गिरि जिन्हु पाहि, ते असख रावत दल माहि॥४५२॥
जिणदत्त चलतहि कपइ धरणि, उत्थइ धूलि न सूझइ तरणी।
हाकि निसाण जोडि जणु हणा, अपनइ देश पलाणे घणे ॥४५३॥
कउणइ गरहिउ उटवहि थाट, क (उणइ) राय दिखालहि बाट।
दूसहू राउ ण को अगवइ, नामु कहइ जडनी चक्कवइ ॥४५४॥
भाजइ नयर देस विमल , पर चक्क भउ नवि असिऊल सहहि।
चाले कटक किए बहु रोल, अरि मडल मणि हल्ल कलोल ॥४५५॥
ठा ठा करत जोडि नीसरइ, जाइति मगध देस पइसरहि।
परिजा भाजि गई जहि राउ, वेढिउ सो बसतपुरु ठाउ ॥४५६॥
परिजा भाजी, गइढ महत, लागी पउलि तिऊ भेजत।
भयउ टोकुन्नि अरु गोफणी, रचे मारु कहु भीमे घणी ॥४५७॥

अट्ठाइस

जिनदत्त के चरित में साहस और वीरता के स्थल हैं; देशाटन के लिये निकल पडना, सागरदत्त की गिरी हुई पोटली के लिये उसका समुद्र में कूद पडना, तथा अन्य अनेक उदाहरण इस संबंध में दिये जा सकते हैं। कवि ने इन प्रसंगों में भाव चित्रों को प्रस्तुत करने का प्रयास अवश्य बहुत कम किया है। जिनदत्त ने जो कौतुक दिखाए हैं, वे अद्भुत रस की सृष्टि करते हैं। कुछ अन्य रसों का भी यत्र तत्र समावेश हुआ है।

छन्द

काव्य का मुख्य छन्द चउपई है किन्तु वस्तु बन्धछन्द का भी खूब प्रयोग हुआ है। काव्य के ५५३ पद्यों में से ५५३ चउपई छन्द एवं वस्तु बन्ध हैं लेकिन कितनी चौपई छन्द के बाद में वस्तुबन्ध छन्द प्रयोग होगा इस का कोई निश्चित सिद्धान्त कवि की दृष्टि में नहीं था। वस्तुबन्ध तथा चौपई छन्द का प्रयोग उसकी इच्छानुसार हुआ है। काव्य में दोहे छन्द का भी प्रयोग हुआ है।

समग्र रूप से रचना चउपई-बन्ध काव्य रूप में प्रस्तुत की गई है, जिससे यह प्रकट है कि उसका मुख्य छन्द चउपई है, केवल एक रसता निवारण के लिये उसमें कुछ अन्य छन्दों का समावेश भी कर दिया गया है।

वर्णन और उल्लेख

प्रस्तुत काव्य में जिन वस्तु व्यापारों का वर्णन हुआ उन्हे हम निम्न श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं:—

(१) देश एवं नगर वर्णन—

इस काव्य में मगधदेश, (३१) वसन्तनगर (४०-४२), चंपापुरी (८६-८८), दशपुर (१६०), बेणातनगर (१६६), कुण्डलपुर (१६६), संभापाटन (१६६। मदनद्वीप, पाटल द्वीप (१६३), सिंहलद्वीप २००-२०१), रयनपुर (२६८) आदि देशों, नगरों एवं द्वीपों का वर्णन एवं उल्लेख हुआ है।

सबने विस्तृत वर्णन मगध देश एव वसन्तपुर का है जो हमारे नायक का जन्म स्थान था। यह वर्णन परम्परा-मुक्त है। कवि ने कहा है कि उस समय का वह सबमे सुखी एव वैभवशाली नगर था, जहाँ घर२ मे आम के पेड थे, जहाँ केला, दाख एव छुहारा के पेड फलो से लदे रहते थे। अतिथियो का स्वागत सत्तू से किया जाता था। दुष्टो के लिए दण्ड व्यवस्था थी लेकिन वहाँ चोर-चरट कही भी दिखलाई नही देते थे। वह नगर मानो साकेतपुर था। वह धनधान्य से पूर्ण एव ऊँचे ऊँचे महलो वाला था। सभी जातियो के लोग उसमे बसते थे। कवि ने उसे स्वर्ग का एक टुकडा ही कहा है[1]। इसी तरह

---

१ सवइण पाउ वत्थ जहि ठाउ, मगह देसु तहि कहियउ गाइ ।
पामरि घरणि अवासहि चडी, जणु चइ छूटि सग्ग ते पडी।।३१।।
णिसुणहु देसु तण्यो व्योहार, घरि घरि सफल अवसाहार ।
करहि राजु सकुटवउ लोइ, परतह दुखी न दीसइ कोइ ।।३२।।
पहिया पथ न भूखे जाहि, केला दाख छुहारी खाहि ।
गामि गामि छेते सतूकार, पहियह कूरु देहि अनिवारु ।।३३।।
गामि गामि वाडी अवराइ, जइसे पाटण तेसे ठाइ ।
धम्मु विपे णरु भोयण देहि, दाम विसाहि न कोई लेहि ।।३४।।
णाकरु कूड दड तहि चरइ, अपुणइ सुखि परजा व्यवहरइ ।
चोर नु चरडु आखि देखिये, अरु परणारि जणणि पेखियइ ।।३५।।
मगह देसु भीतरि सुहि सारु, वासव सुरह अहिउ सो चारु ।
नग कण कचण मन्न वियूर, मदर तुग णिहिन कय सूर ।।३६।।

वणिकु वसण वइद वासीठ ।।
वाडइ वेसा वरुड वदरा, विनारी त्रिहारह ।
वागु वाह वारी वुरु वहु विहारछ जीवरखहं ।।
वरु विहारि वारिठिया वुहु विडह वणियार ।
नह वसनपुरि रलह थइ छहि चउवीस वकार ।।३७।।

सीस

चम्पापुरी और रथनुपुर नगरो का वर्णन हुआ है। रथनुपुर के राजा की स्त्रियो से प्राचीन काल के देशो का पता चलता है[1]। ८४

सूर सामीय साहु सोतियहि।
सरि सरवर सावयह सव्वल अत्थि सारग साहणा सिऊ।
सोहा सहियणह सिखी सत सहीयण समाणह ॥
दसण सीमा सत्थवड सत्थ सवण सुहसार।
सुव्वस सील वसतपुर छहि चउवीस सकार ॥
मोह मच्छरु माणु मायारु।
मउ मरी मारणु मरविणु मलिणु मलणु जहि कोवि सीसइ।
महु मस मयरासहि उतहि मच्छिदु मउरउण दीसइ ॥
मूढु मुसण म गलु मखरु जहि ण मलइ जल मीणु।
भणइ रल्ह सु वसतपुर वीस मकार विहीणु ॥३९॥
राज-थाणु किमु करि वण्णियइ, पच्चखु सग्गु खड जाणियइ।
वसइ वसतु णयरु सो घणउ, चदसिहरु राजा तह तणिउ ॥४०॥
चदसेखर राजा के भवण, दिपहि त माणिक मोती रयण।
सयलु अतेउरु रूपनिवासु, वीस वीस सवण्हु अवासु ॥४१॥
वसहि त सयल लोय सुवियार, कचणमइ तिन्हु कियए विहार।
पर कहु मीचु ण वछइ कोइ, जीव दया पालइ सब कोइ ॥४२॥
कोली माली पालहि दया, पटवा जीवकहु इ छहि मया।
पारधी जीव ण घालहि घाउ, दया धम्मु कउ सवही भाउ ॥४३॥
बाभण खत्री अवरति चर्म, ते सब पालक सरावग धर्म्म।
मारण णाइ दियइ कलमली, जिणवरु णवहि छत्तीसउ कुली ॥४४॥

× × ×

१ तहि असोक विज्जाहर राउ, असोकसिरी राणि कहु भाउ।
ण सुरेन्द्र जो थापिउ सुरह, गरुव णरेंद सेवज सु करह ॥२६८॥
साहण वाहण न मुणउ अ तु, करहि राजु मेइणि विलसत।

सामाजिक रीतिरिवाज—

'जिनदत्त चरित' के अध्ययन मे प्राचीन सामाजिक रीति-रिवाजो का भी थोडा आभास मिलता है। विवाह सम्बन्ध निश्चित करने के लिये ब्राह्मण जाया करते थे[1]। वे ही लडकी को देखकर सम्बन्ध निश्चित कर दिया करते

अतेउरु चउरासी राणि, तिन्हु के नाम रल्हु कवि जान ॥२६९॥
कानडि गूजरि अरु मरुहटी, लाडि चोडि दक्षिण सोरठी ।
पूरबिणी कणवजि बगालि, मगाली तिलग सुरतारि ॥२७०॥
दवडी गउडी करणा भणी, रूपादे कचणदे धणी ।
उपमादे भामादे नारि, अचाभउ सुतभउ रूव मुरारि ॥२७१॥
चित्तरेह तहिवर मो रेख, कित्तरेख जगु मोवन रेख ।
गुणगा सुरगा नवरस देइ, भोगमती गुणमती मणेइ ॥२७२॥
उरमादे रमादे काति, विहमणदे अछइ विलसति ।
सुमयादेवि रूवसुन्दरी, पदमावती मयणसुन्दरी ॥२७३॥
मारोगा कन्हादे राणि, सावलदे मुहगीदे जाणि ।
रेह सुमई सुय पदवणि, भोगविलासनि हंसागमणि ॥२७४॥
दरसणिदे मुलसेणावलि, तारादे कहु रल्ह सभालि ।
मदोवरि अरु चद्रामती, हीरादे राणी रेवती ॥२७५॥
सारगदे अरु चद्रावयणि, वीरमदे राणी भावती ।
गगादे राणि गजगमणि, कमलादे अरु हसागमणि ॥२७६॥
मुत्तादेवि रूव आगली, चित्रिणि रुमिणी अरु पद्मिनि ।
मोनवती वरगत हो धणी . ॥२७७॥
अवन्ती बाला पोढा तिरी, पियसुदरी सुमइन मनपुरी ।
मोरवती रामा अविचार, भोगवती कइलाम कुमारि ॥२७८॥
श्रीवमतमाला मोभाप, हरइ चित्त कामिणी कडाप ।
नच्चइ दानि दारिदु घालहि, मच्चइ अमोइराय बालही ॥२७९॥

× × ×

1 विप्रु एकु तउ आज्नु भयउ, मो पइ लइ चपापुरि गयउ ।
भेटिउ विमलमती मा बाल, देइ असोल पइ छोडि दिगाल ॥१०५॥

थे। वे कभी-कभी अपने साथ लडके का चित्र भी ले जाते थे। बारात खूब सज-धज के साथ निकलती थी[1]। बारात की खातिर भी खूब की जाती थी। विवाह मे ज्यौनार होती थी। विवाह मण्डप मे होता था जहा चौक पूरा जाता था। स्त्रिया माङ्गलिक गीत गाती थी। दहेज देने की प्रथा तब भी खूब थी। जिनदत्त को चारो विवाहो मे इतना अधिक दहेज मिला कि उससे सम्हाले न सम्हाला गया[2]। पुत्र जन्म पर खूब खुशिया मनायी जाती थी। गरीबो अनाथो और अपाहिजो को उस अवसर पर खूब दान दिया जाता था। जिनदत्त के जन्म पर उसके पिता ने दो करोड का दान दिया था[3]। भविष्यवाणियो पर विश्वास किया जाता था। राजा महाराजा कभी २ अपनी कन्याओ का विवाह भी इन्ही भविष्यवाणियो के आधार पर कर दिया करते थे। समाज मे बहु विवाह की प्रथा थी। राजागण तो अनेक विवाह करते ही थे, बड़े-बड़े सेठ साहूकार एव व्यापारी भी चार-चार पाँच-पाच विवाह तक कर लिया करते थे और इन्हे कोई बुरा भी नही बतलाता था। जिनदत्त ने चार विवाह किये और तब भी उसका भारी स्वागत हुआ। जिस समय को ध्यान मे रखते हुए कथा

१, पच सबद बाजेवि तुरतु, बहु परियणु चाले सु बरातु ॥१२०॥
एकति जाहि सुखासण चढे, एकतु बाखर भीडे तुरे।
एकतु साजित सिगरी घरी, एकणु साजि पलाणी वरी ॥१२१॥
एकति डाडी डोला जाहि, एकति हस्त चढे विगसाहि।
एकति जाहि विवाहणु वइठ, सबु मिलि चंपापुरीहि पइठ ॥१२२॥
चपापुरि कोलाहलु भयो, आगइ होनि विमलु आइयो।

+ + + +

२ राय सोय पुणु नीकउ कीयउ, कडइ चूड करि मडिय धीय।
अरु मनु चितिउ दिन्नु विमाणु, तहि दियइ रयण अपमाणु ॥२९५॥

× × × ×

३. देहि तबोल त फोफल पाण, दीणे चीर पटोले पाण।
पूत वेधाए नाही खोरि, दीने सेठि दाम दुइ कोडि ॥६१॥

की रचना की गई है उस समय सामाजिक वन्धन कम ही था। जिनदत्त के विवाह अपनी ही जाति तक सीमित न रह कर अन्य जातियो मे भी हुए थे।

नगर मे जुआरी होते थे एव वेश्यायें होती थी। कभी २ भद्र व्यक्ति भी अपने लडको को चतुर एव गार्हस्थ जीवन मे उतारने के पहले ऐसे स्थानो मे भेजा करते थे। जिनदत्त को कुछ दिनो तक ऐसे व्यक्तियो की छाया मे रखा गया था। ऐसे ही लोगो का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है .—

> वार वार वेसा घरि जाहि, अरु जूवा खेलत न अघाहि।
> चोरी करत न आलमु करइ, गाठ काटि अतरालइ धरइ॥
> जिन कै दव्व गइय तिन्हु दिठि, सो जगु कियउ आपुणी मुठि।
> गजणु कूडू मारि जिणु सही, तिणि सहु सेठि वात सहु कही॥

समाज मे जुआ खेलने की प्रथा थी और उसे समाज विरोधी नही समझा जाता था। उनके वडे वडे केन्द्र थे, जहा भोले भाले एव नवसिखिये व्यक्ति फँस जाया करते थे। जिनदत्त भी एक वार मे ११ करोड का दाव हार गया था[1]। हारे हुए पैसो को दिये विना जुवारियो से मुक्ति मिलना सभव नही था।

विद्याध्ययन की प्रथा थी किन्तु कभी-कभी १४-१५ वर्ष होने के वाद उसे उपाध्याय के पास भेजते थे। शिक्षक को उपाध्याय कहते थे। वहाँ उसे लक्षण ग्र थ, छद शास्त्र, न्याय शास्त्र, व्याकरण, रामायण, महाभारत, भरत का नाटय शास्त्र, ज्योतिष, तत्र एव मत्र शास्त्र आदि की शिक्षा देते थे। विद्याध्ययन के पश्चात् उसे शस्त्र चलाना भी सिखाते थे जिससे वह समय आने पर अपनी आत्म रक्षा भी कर सके।

समाज मे जातियो एव उप जातियो की सख्या पर्याप्त थी। कवि ने

---

१ खेलत भई जिणदत्तहि हारि, जूवारिन्हु जीति पच्चारि।
नगर रल्हु हमु नाही छोडि, हारिउ दव्वु एगारह कोडि ॥१३०॥

अपने काव्य में २४ प्रकार की 'वकार' एव २४ प्रकार की 'सकार' नाम वाली जातियो के नाम गिनायें है जो उस समय वसतपुर मे रहती थी। उस नगर की एक और विशेषता यह थी कि २० प्रकार की 'मकार' वाली जातियाँ वहाँ नही थी जिन से उस नगर का वातावरण सदैव शात एव पवित्र रहता था।

प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णन

काव्य मे प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन भी यत्र तत्र मिलता है। कवि को पेड पोधो एव फल-पुष्पो से अधिक प्रेम था इसलिये उसने नगर-वर्णन के साथ उनका भी वर्णन किया है। सागरदत्त सेठ के उद्यान मे विविध पौधे थे। अशोक एव केवडा के वृक्ष थे। नारियल एव आम के वृक्ष थे। नारगी, छुहारा, दाख, पिडखजूर, सुपारी, जायफल, इलायची, लोग आदि कितने ही फलो के नाम गिनाये हैं पुष्पो मे मरुआ, मालती, चम्पा, रायचम्पा, मुचकन्द, मोलसिरि, जपापुष्प, पाडल, कठ पाडल, गुडहल आदि के नाम उल्लेखनीय है। इस प्रकार का वर्णन हिन्दी की बहुत कम रचनाओ मे मिलता है। सधारु कवि ने भी आगे चलकर प्रद्युम्नचरित (स. १४११) मे भी इसी तरह का अथवा इससे भी विशद वर्णन किया है। परवर्त्ती अपभ्रंश काव्यों मे भी ऐसे वर्णनो की प्रमुखता है।

रल्ह कवि ने इन वृक्षो पौधो एव लताओ के नाम उनकी विशेषता सहित गिनाये है। कवि के शब्दो मे ऐसा ही एक वर्णन देखिये:—

जो असोक करि थक्किउ सोगु, अन पर परितहि दीनउ भोगु।
जो छउ कसिर रहिउ केवडउ, सिंचिउ खीर भयो रूवडउ ॥१६९॥
जे नालियर कोपु करि ठिए, तिन्हइं हार पटोले किए।
जे छे सूकि रहे सइकार, तिन्हु अकवाल दिवाए बाल ॥१७०॥
नारिंगु जबु छुहारी दाख, पिंडखजूर फोफिली असंख।
जातीफल इलायची लवग, करणा भरणा कीए नवरग ॥१७१॥

कायु कपित्थ वेर पिपली, हरड वहेड खिरी आवली ।
सिरीखंड अगर गलीदी धूप, णरहि नारि तहि ठाइ सरुप ॥१७२॥
जाई जुहि वेल सेवती, दवणा मरवउ अरु मालती ।
चपउ राइचपउ मचकुद, कूजउ वउलसिरी जासउदु ॥१७३॥

इसी तरह जब चपापुरी मे मदोन्मत्त हाथी अपने बधन तोडकर राजपथ पर विचरण करने लगा, उस समय का भी कवि ने अच्छा वर्णन किया है। कवि ने कहा कि वह मद विह्वल हाथी अकुश को नहीं मान कर, खम्भ को उखाड कर साकल के टुकडे२ कर दिये। उसके दांत एव सूड भूमि को भयकर रूप से खोद रहे थे। उसको वडे २ वीर पकडे हुये थे। उसकी भयकर चीत्कार थी। भ्रमरो की पक्ति उसके पास मडरा रही थी। लोग उसे साक्षात् काल ही समझने लगे थे। लोग टीलों पर जा चुके थे। इसी वर्णन का अश देखिये —

मय भिभलु गउ अकुस मोडी खभु उपाडि दतू सलि तोडि ।
साकल तोडि करि चक चूनि, गयउ महावतु घर की पूतु ।
गयउ महावत्थु णयरी जित्थ, गज भूडउ भऊ अखइ तत्थु ।
हुउ उवरिउ जुन खूटउ कालु, तउ सूडिउ तोडितु भालु ॥

इस प्रकार के वर्णनो से ज्ञात होता है कि कवि मे वर्णन करने की यथेष्ट क्षमता थी, यद्यपि उसने उसका उपयोग सीमित ही परिमाण मे किया है।

रोमाञ्चक तत्व

काव्य मे रोमाञ्चक कार्यों का विस्तृत वर्णन मिलता है। सर्व प्रथम जिनदत्त ने अजनीमूल जडी के सहारे अपने आप को प्रच्छन्न कर लिया। जब वह समुद्र तैर कर रथनुपुर पहुचा तो उसका विद्याधर कुमारी से विवाह हुआ और दहेज मे सोलह विद्याएँ प्राप्त हुई। इनमे जलगामिनी, बहुरूपिणी,

जलसोखणी, जलस्तंभिनी, हृदयालोकिनी, अग्निस्तंभिनी, सर्वसिद्धि विद्याता-रिणी, पातालगामिनी, मोहिनी, अ जणी, रत्नवर्षिणी, शुभदर्शिनी, वज्रणी आदि विद्याओ के नाम उल्लेखनीय हैं। जिनदत्त ने वहाँ तिमिरदृष्टि विद्या अणौवध एव सर्वौषध विद्याएँ भी प्राप्त की थी। विद्याबल से ही उसने विमान बनाया और अकृत्रिम चैत्यालयो की वन्दना की [1]। चम्पापुर पहुँच कर वहाँ राज दरबार मे बौने के रूप मे जो उसने अपनी विद्याओ का प्रदर्शन किया और मदोन्मत्त हाथी को वश मे किया वह सब उसकी प्राप्त विद्याओं के आधार पर ही था। जैन काव्य एवं पुराणो मे इसी तरह की विद्याओ का बहुत वर्णन मिलता है। जैन काव्यो के नायक प्राय. ऐसी विद्याएँ प्राप्त करते है और फिर उनके सहारे कितने ही अलौकिक कार्य करते है।

विदेश यात्रा

कवि के समय मे भारत व्यापार के लिए अच्छा माना जाता था। व्यापारी लोग समूह बनाकर तथा बैलो पर सामान लाद कर एक देश से दूसरे देश एव एक नगर से दूसरे नगर तक जाया करते थे। कभी नावो से यात्रा करते तो कभी जहाज मे चढ कर व्यापार के लिये जाते। इस व्यापारिक यात्रा के समय एक प्रमुख चुन लिया जाता था और उसी के आदेशानुसार सारी व्यवस्था चलती थी। जिनदत्त जव व्यापार के लिए निकला तो रचना के अनुसार उसके सघ मे १२ हजार बैल थे एव अनेक वणिक-पुत्र थे। सिहल द्वीप उस समय व्यापार के लिये मुख्य आकर्षण का केन्द स्थान था। वहाँ जवाहरात का खूब व्यापार होता था। लेन देन वस्तुओ मे अधिक होता था। सिक्को का चलन कम ही था। ऐसे अवसरो पर व्यापारी खूब मुनाफा कमाते थे। नाविक एवं जहाज के कप्तान जलजंतुओं का पूरा पता लगा लिया

---

१. आयउ जगमगतु सो तित्थु, जीवदेव नदणु हइ जित्थु।
विज्जा चवइ निसुण जिणदत्त, वदि अकिट्टमि जिणमलचतु ॥

करते थे। वे अपने साथ मुद्गर एव लोहे की साकल भी रखा करते थे। समुद्र मे वडे वडे मगर रहते थे, उनमे बचने का उपाय भी वे लोग भली प्रकार जानते थे। व्यापारिक यात्रा से वापिस लौटने पर उनका राजा एव प्रजा द्वारा वडा स्वागत-सत्कार किया जाता था। उन्हे उचित रीति से सम्मानित करने की भी प्रथा थी।

इस प्रकार जिणदत्त हिन्दी के आदिकाल की एक उत्कृष्ट रचना है आशा है उसको हिन्दी साहित्य मे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा।

ग्रंथ सम्पादन

'जिणदत्त चरित' की पर्याप्त खोज करने के पश्चात् भी कोई दूसरी प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी। इस कारण इसका सम्पादन एक ही प्रति के आधार पर किया गया है और इसी कारण से इसके पाठ–भेद आदि नहीं दिये जा सके। फिर भी हमे सतोष है कि ऐसे प्राचीनतम हिन्दी काव्य का सम्पादन एव प्रकाशन हो सका है। मूल प्रति प्रारम्भ मे काफी स्पष्ट लिखी हुई है लेकिन अन्त के कुछ पृष्ठ प्रतिलिपिकार ने सभवत जल्दी मे लिखे हैं। इसलिये उसने प्रारम्भ के समान आगे प्रत्येक पद्य के आगे सख्या भी नहीं दी है। फिर भी प्रति सामान्यत शुद्ध एव स्पष्ट है। पाठको की सुविधा के लिये मूल ग्रथ का हिन्दी अर्थ भी दे दिया गया है तथा पद्यो के नीचे महत्वपूर्ण शब्दो के अर्थ एव उनकी उत्पत्ति तथा अन्त मे विस्तृत शब्दकोश अर्थ सहित दिया गया है। हिन्दी शब्दकोष के विद्वानो को इस काव्य मे कितने ही नये शब्द मिलेंगे जिनका सभवत अभी तक अन्य काव्यो मे उपयोग नहीं हुआ है।

जिणदत्त चरित के समान राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे और भी महत्वपूर्ण काव्य उपलब्ध हो सकेंगे ऐसा हमारा विश्वास है इसलिये इस दिशा मे विशेष प्रयत्न की आवश्यकता है।

आभार :—

हम श्रीमहावीर क्षेत्र कमेटी एवं उसके अध्यक्ष महोदय कर्नल डा० राजमलजी कासलीवाल तथा मंत्री श्री गेंदीलालजी साह एडवोकेट के आभारी हैं जिन्होने इस को अपने साहित्यशोध विभाग से प्रकाशित कराया है। क्षेत्र के साहित्यशोध विभाग की ओर से प्राचीन हिन्दी रचनाओं के प्रकाश मे लाने का जो महत्वपूर्ण काम हो रहा है उसके लिये सारा हिन्दी जगत उनका कृतज्ञ है। क्षेत्र के स हित्य शोध विभाग के अन्य विद्वान् श्री अनूपचद न्यायतीर्थ, सुगनचंद जैन एवं प्रेमचंद रावका के भी हम आभारी है जिन्होने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अपना महत्वपूर्ण सहयोग दिया है। श्री दि० जैन मन्दिर पाटोदी जयपुर के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री नाथूलालजी बज के भी हम कृतज्ञ है जो अपने शास्त्र भण्डार की हस्तलिखित प्रति देकर इस काव्य के प्रकाशन में सहायक बने है। अन्त मे हम श्री प० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ के प्रति पूर्ण आभार प्रदर्शित करते हैं जिनकी सतत प्रेरणा ही इस ग्रन्थ के प्रकाशन में महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है।

माताप्रसाद गुप्त
कस्तूरचंद कासलीवाल

जिणदत्त चरित की पाण्डुलिपि का एक चित्र

जिणदत्त चरित

(स्तुति - खण्ड)

(वस्तुबंध)

[१]

णविवि जिणवर आसि जे वित्त ।

रिसहाइ धम्मुद्धरण, णविवि तं जि गय कालि होसहि ।
सइ सत्थहि खित्ति पुणु, ताहं णविवि जं कमसोहहिं ।।

णाहिणरेसरु सुउ रिसहु, वरिसिउ धम्म पवाहु ।
सो जय कारणि रल्ह कइ, आइ-अणाहु जगणाहु ।।

अर्थ —धर्म का उद्धार करने वाले जो ऋषभादि वर्तमान तीर्थंकर है, उन्हे नमस्कार करके तथा जो तीर्थंकर हो गये हैं और जो भविष्य मे होगे, उन्हे नमस्कार करके तथा उनके साथ (सघ) मे पृथ्वी तल पर जो कर्मो का शोषण करने वाले सिद्ध हुए, उन्हे नमस्कार करके नाभि नरेश के सुत जिन ऋषभदेव ने धर्म-प्रवाह की वर्षा की रल्ह कवि ऐसे जय के कारण स्वरूप जगत् के नाथ आदिनाथ (को नमस्कार करता है) ।

आसि – अस् – होना । वित्त : (वि० प्रसिद्ध, विख्यात) अथवा वृत विο उत्पन्न, सजात, अतीत । रिसहु – ऋषभ । सोहहि-सोह – शोषय । सुउ – सुत । कइ – कवि । आइ-अणाहु – आदिनाथ ।

[२]

संजमु नेमु धम्मु तस जाणु, जो णिसुणइ जिणदत्त पुराणु ।
संपत्ति पुत्त अवरु जसु होइ, महियलि दुखु न देखइ कोइ ।।

अर्थ —जो इस जिनदत्त पुराण को सुनता है (जीवन मे) सयम, नियम और धर्म उसको (प्राप्त हुआ) जानो । उसको वैभव, सन्तान तथा यश (का लाभ) होता है तथा वह पृथ्वी पर कोई भी दु ख नही देखता है ।

सजमु पु० (सयम) – हिंसादि पाप कर्मो से निवृति - दश धर्मो मे से एक धर्म । नेमु – नियम धर्म, व्रत उपवास आदि ।

[३]

जय जगणाहु रिसीस जिणंद, णवहि अजिय गय गणहरविंद ।
जिणु, सभव अहिणदण देउ, सुमइनाहु पणवउ गय लेउ ।।

अर्थ —जगत् प्रभु ऋषभ जिनेन्द्र की जय हो तथा गणधरो द्वारा पूजित अजितनाथ के चरणो मे नमस्कार हो । जिनेन्द्र सभवनाथ, अभिनन्दनदेव, सुमतिनाथ को प्रणाम करता हूँ जो गत लेप (निष्पाप) हुये है ।

रिसीस – ऋषभेश, ऋषभदेव स्वामी । गणहरविद – गणधरवृ द । गय लेउ – गतलेप–चला गया है पाप जिसका ।

[४]

पउमप्पहु सामिय दुहहरण, जिण सुपासु जण असरण सरण ।
चदप्पहु समचित्त सहाउ, पुप्फयतु सिवपुरि कउ राउ ।।

अर्थ —पद्मप्रभ स्वामी दु खो का हरण करने वाले है तथा सुपार्श्वनाथ

जिनेन्द्र अनाथों को शरण देने वाले हैं। चन्द्रप्रभ स्वामी शान्त चित्त एवं शान्त स्वभाव वाले है तथा पुष्पदंत मोक्ष नगरी के राजा हैं।

पउमप्पहु – पद्मप्रभ। सामिय – स्वामी। सहाउ – स्वभाव। सिवपुरि – शिवपुरी–मोक्षनगरी।

[५]

जिण सीयलु अरु सीयल वयणु, तुहु सेयंस जयत्तय सरणु।
वासुपुज्ज अरुणेइ सरीरु, जय जय विमल अतुल बलवीर॥

अर्थ —और शीतलनाथ जिनेंद्र शीतल वचन वाले हैं तथा हे श्रेयामनाथ, तुम तीन-जगत के शरणाभूत हो। वासपूज्य स्वामी, तुम लाल रंग के शरीर वाले हो तथा अतुल बल के धारक हे विमलनाथ तुम्हारी जय हो।

सीयलु – शीतल। जगत्तय – जगत्रय।

[६]

जिणु अनंतु तिहुवण जगणत्यु[1], धम्मु धम्म उद्धरणु समत्थु।
जय पहु संतिणाह दुह हरण, जय जय कुंथु जीव दय करण॥

अर्थ :—अनन्तनाथ जिनेंद्र जो तीनों लोको तथा जगत के स्वामी हैं, धर्मनाथ जो धर्म का उद्धार करने मे समर्थ हैं, शान्तिनाथ जो जगत के नाथ हैं तथा दुःखो का हरण करने वाले हैं तथा जीवो पर दया करने वाले कुंथनाथ स्वामी की जय हो।

तिहुवण – त्रिभुवन। धम्मु – धर्मनाथ। समत्थु – समर्थ। पहु – प्रभु।

१. मूलपाठ 'जगणाहु' है।

[७]

अरु अरिकम्म दप्पु जिह हरिउ, मल्लिणाह सुरु णियरें नमिउ ।
मुणिसुव्वउ जिण गुण की रासि, णमि[1] जिणवरु खल दोसह णासि ।।

अर्थ —अरहनाथ जिन्होने कर्म शत्रु के दर्प का हरण किया है, देवताओ के द्वारा पूजित मल्लिनाथ को नमस्कार हो, मुनिसुव्रत जिनेन्द्र जो गुणो की राशि हैं तथा नमि जिनेन्द्र निश्चय ही दोषो को नाश करने वाले है ।

नियर — निकर-समूह । १ मूलपाठ 'णवि' है ।

[८]

समद विजय सुतु णेमि जिणेंदु, पासणाह पय परसइ इंदु ।
धर सिरु लाइ राइसिहु कवइ, बहुफलु वीरणाहु जो णवइ ।।

अर्थ —समुद्रविजय के पुत्र जिनेंद्र नेमिनाथ तथा पार्श्वनाथ जिनके चरणो का स्पर्श इन्द्र करता है (इन सभी को नमस्कार है) । कवि राजसिंह (रल्ह) साष्टाग नमस्कार करके कहता है कि सबसे अधिक फल उसे होता है जो भगवान् वीरनाथ (महावीर) को नमस्कार करता है ।

परसइ — स्पृश-स्पर्श करना ।

[९]

चउवीसइ सामिय दुह हरण, चउवीसइ मुक्के जर मरण ।
चउवीसह मोक्खह कउ ठाउ, जिण चउवीस नमउ धरि भाउ ।।

अर्थ —चौबीसों स्वामी (तीर्थंकर) दु खो के हर्ता हैं, सभी चौबीस जरा एव मरण से मुक्त हो चुके है । सभी चौबीस मोक्ष के निवासी है इसलिये सभी चौबीस तीर्थंकरों को भाव धारण कर (भाव पूर्वक) नमस्कार करता हूँ ।

मुक्के — मुक्-मुच्-छूटना, मुक्त होना । ठाउ — स्थान ।

[१०]

चक्केसरि रोहिरिंग जयसारु, जालामालरिंग अरु खेतपालु ।
अंबिमाइ तुव नवऊ सभाइ, पदमावती कइ लागउ पाइ ।।

अर्थ :—देवी चक्रेश्वरी, रोहिणी, ज्वालामालिनी तथा क्षेत्रपाल (देव) की जय हो । माता अम्बिका को भी भावपूर्वक नमस्कार करता हूँ तथा पद्मावती देवी के पाय लगता हूँ ।

सभाइ – स+भाव–भावपूर्वक ।

[११]

जे चउवीस जक्ख[1] जक्खिरणी, ते परणमउ सामिरिण आपुरिण ।
कुमइ कुबुधि देवि महु हरहु, चउविह संघह रख्या करहु ।।

अर्थ —जो चौबीस यक्ष यक्षिरिणया है, (तथा जो) स्वय ही (जिन शासन) की स्वामिनी है उन्हे नमस्कार करता हूँ । हे देवियो, मेरी विकृत मति एव विकृत बुद्धि का हरण करो तथा चतुर्विध सघ की रक्षा करो ।

जक्ख – यक्ष । कुमइ – कुमति । सामिरणी – स्वामिनी । रख्या – रक्षा । चउविहसघह – चतुर्विध सघ–मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इन चारो का सघ कहलाता है । १ 'जख' मूलपाठ है ।

[१२]

इंद दहरण जम रणेरिउ जाणु, वरुणु वाय धरणदुवि ईसाणु ।
परणमउं पोमिरिणवइ धररिंगदु, रोहिरणीकंतु जयउ रणहिचंदु ।।

अर्थ —इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, वायु, कुबेर तथा ईशान तथा पद्मावती देवी के पति धरणेंद्र को नमस्कार करता हूँ तथा रोहिणी देवी के स्वामी चन्द्रदेव की जय हो ।

इस पद्य मे कवि ने दशो दिशाओ के दश दिग्पालो को नमस्कार किया है।

इ द – इन्द्र। दहण – अग्नि। जम – यम। णेरिउ – नैऋत। वरुणु – जल। वाय – वायु, पवन। धणदु – धनद-कुबेर। ईशाणु – ईशान। पोमिणिवइ पद्मिनी – (पद्मावती)। धरणिदु – धरणेंद्र। चदु – सोम।

१ इन्द्रो वह्नि . पितृपति, नैऋतो वरुणोमरुत ।
कुबेर ईश पतय पूर्वादीनामनुक्रमात् ।। अमरकोश।

[१३]

सूरु सोम मंगल दुह डहउ, वुद्ध विहप्पइ सुह विच्छरउ ।
सुक्क राहु सनि केउ[1] गरिठ, ए णव गह जिण आगम सिठ ।।

अर्थ —रवि, सोम, मगल दु.खो को भस्म करें। वुध एव वृहस्पति सुख का विस्तार करें। शुक्र, शनि, राहु और केतु विशिष्ट ग्रह है, ये सभी नव ग्रह जिनागम मे प्रसिद्ध हैं।

सूरु – सूर्य। दुह – दुख। डह – दह-दग्ध करना। वुह – वुध। विहप्पइ – वृहस्पति। सुह – सुख। विच्छरउ – विस्तृ–फैलाना। सुक्क – शुक्र। केउ – केतु। गह – ग्रह। गरिठ – गरिष्ठ-विशिष्ट। सिठ – शिष्ट-प्रतिष्ठित। १ 'करउ' मूल पाठ है।

(शारदा स्तवन)

[१४]

जहि सभव जिणवर मुह कमल, सप्तभंग वाणी जसु अमल ।
आगम छंद तवक वर वाणि, सारद सद्द अत्य पय खाणि ।।

अर्थ :—जो (शारदा) जिनेन्द्र भगवान के मुख से प्रकट हुई है, जिसकी सप्तभगमय वाणी है, जो आगम, छद एव तर्क से युक्त है, ऐसी वह शारदा शब्द, अर्थ एव पद की खान है।

सभव – जन्म। सप्तभग-स्याद्वाद के सात सिद्धान्त (१) स्यात् अस्ति (२) स्यात् नास्ति (३) स्यात् अस्ति-नास्ति (४) स्यात् अवक्तव्य (५) स्यात् अस्ति अवक्तव्य (६) स्यात् नास्ति अवक्तव्य (७) स्यात् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य। सारद – शारदा। तक्क – तर्क। सद्द – शब्द। अत्थ – अर्थ। पय – पद।

[१५]

गुणरिणहि वहु विज्जागमसार, पुठि मराल सहइ अविचार ।
छद वहत्तरि कला भावती, सुकइ रल्ह पणवइ सरसुती ।।

अर्थ —जो गुणो की निधि एव विद्या तथा आगम की सार-स्वरूपा है, जो स्वभावत हस की पीठ पर सुशोभित है जिसे छद एव बहत्तर कलायें प्रिय है, ऐसी सरस्वती को रल्ह कवि नमस्कार करता है।

गुणरिणहि – गुणनिधि । विज्जागम – विद्या और आगम । पुठि – पृष्ठ-पीठ ।

[१६]

करि थुइ सुकइ ठणवइ तुहु[1] पाइ, परसन्नी तुहु सारद माइ ।
महु पसाउ स्वामिनि करि तेम, जिणदत्त चरितु रचउ हउ जेम ।

अर्थ —कवि स्तुति करके तुम्हारे चरणो मे नमस्कार करता है। हे शारदा माता ! आप प्रसन्न होओ। हे स्वामिनि, मुझ पर अपनी कृपा उस प्रकार करो जिस प्रकार मैं जिनदत्त चरित की रचना कर सकू ।

थुइ – स्तुति। पसाउ – प्रसाद-कृपा। १ तहु–मूलपाठ।

(शारदा का प्रकट होना)

[१७]

सुणिवि वयण सारद यौ कहै, मेरउ अन्त न कोई लहै ।
किमइ काजु आराहहि मोहि, मागि मागि सतुट्ठी तोहि ।।

अर्थ —प्रार्थना को सुनकर शारदा यो कहने लगी "मेरा पार कोई नही पा सकता है। किस कार्य के लिये तू मेरी आराधना करता है ? मैं तुझ पर सतुष्ट हुई । तू माग, माग ।"

आराह – आराध्-आराधना करना । सतुट्ठ – सतुष्ट ।

[१८]

भणइ सुकइ करि सुधउ भाउ, जा निरु अम्हह कियउ पसाउ ।
तह पसाइ णाण घवरु लहउ, ता जिणदत्त चरिउ हउ कहउ ।।

अर्थ —कवि शुद्ध भाव करके कहता है—निश्चित रूप से यदि तुमने मुझ पर प्रसाद किया है तो तुम्हारे प्रसाद से अपार ज्ञान प्राप्त करू, जिससे मैं जिणदत्त-चरित को कह सकू ।

भाउ – भाव । निरु – निश्चित रूप से । णाण – ज्ञान । घवर – गह्वर, भारी, गम्भीर, अपार ।

(शारदा का वरदान)

[१९]

सा भारती गुसाइणि देवि, तूठी साणदे पभणेवि ।
मुकइ कहा तू कहण समत्थु, तुहु सिरि रल्ह दिण्णु मइ हत्थु ।।

अर्थ —वह स्वामिनि भारती (शारदा) देवी प्रसन्न होकर आनन्द के

साथ कहने लगी, "हे सुकवि तू कथा कहने मे समर्थ है। हे रल्ह, तेरे शिर पर मैंने अपना हाथ रख दिया है।

गुसाइणि – गोस्वामिनी-स्वामिनी। पभण – प्र+भण-कहना। समत्थु – समर्थ। हत्थु – हस्त, हाथ।

(कवि द्वारा लघुता प्रदर्शन)

[२०]

हउ अखउ जिणदत्त पुराणु, पढिउ न लक्खण छंद वखाणु।
अक्खर[1] मत्त हीण जइ होइ, महु जिण दोसु देइ कवि कोइ॥

अर्थ —मैं जिनदत्त पुराण को कह रहा हूँ। मैंने काव्य के लक्षण एव छदो का वखान (वर्णन) नही पढा है। इसलिये यदि कही अक्षर एवं मात्रा की हीनता हो तो मुझे कोई भी कवि दोष न देवें।

अख – अक्ख-आ+ख्या-कहना। अक्खर – अक्षर। मत्त – मात्रा। जइ – यदि। १ अखर–मूलपाठ।

[२१]

हीण बुधि किम करउ कवित्तु, रंजि ण सकउ विवुह जण चित्त।
धम्म कथा पयडंतह दोसु, दुज्जण सयण करहि जिणु रोसु॥

अर्थ —मैं हीन बुद्धि हूँ कविता किस प्रकार करू? (क्योकि) मैं विद्वानो के चित्त को प्रसन्न भी नही कर सकता हूँ। धर्मकथा को प्रकट (प्रतिपादित) करने मे दोप होते ही है; इसलिये दुर्जन एव सज्जन (दोनों मे ही प्रार्थना है कि वे) रोष न करें।

पयड् – प्र+कटय्–प्रकट करना।

[२२]

भुवण कईस अतीते घणे, वहुले अत्थहि ठाइ आपुणे ।
कइतणु फुरइ विवुह जण पेखि, पाय पसारउ आचल देखि ।।

अर्थ ·—भुवन (जगत) मे वहुत से कवीश्वर (महाकवि) हुए है और वहुत से अपने स्थानो पर ·विद्यमान है । कवित्व विवुध जनो (विद्वानो) को देखकर स्फुरित होता है । (और मै सीमित वुद्धि का हूँ) । अत· अपने अचल—वस्त्र (अपनी सामर्थ्य) को देखकर ही मैं पैर पसार रहा (काव्य रचना कर रहा) हूँ ।

भुवन – जगत् । कईस – कवीश—महाकवि । अत्थहि – स्था—वैटना । कइतणु – कवित्व । पेखि – प+ईक्ष्—देखना ।

[२३]

जइ अइरावइ मत्त गइदु, जोयण लखु सरीरह विदु ।
तासु गाज जइ भुवण समाण, गइयर इयर आपुणे माण ।।

अर्थ —यद्यपि ऐरावत मत्त गजेन्द्र है, उसका शरीर एक लाख योजन प्रमाण जाना जाता है और उसकी गर्जना भुवन मे व्याप्त है तो भी इतर गज अपने मान (सामर्थ्य) के अनुरूप गर्जते ही हैं ।

जइ – यदि । अइरावइ – ऐरावत । गइद – गजेन्द्र । जोयण – योजन । विद – विद्—जानना । इयर – इतर । माण – मान—सामर्थ्य ।

[२४]

षोडसु कला पुणु ससि भा आहि, सवइ अमिउ सीयलऊ सव काहि ।
तासु किरण तिहुवण जइ दिपइ, आप पमाण जोगणा तपइ ।।

अर्थ —चन्द्रमा षोडश कला पूर्ण कहा जाता है, वह संपूर्ण रूप से अमृतमय है और सबके लिए शीतल (होता) है। यदि उसकी किरणें तीनो भुवनो को प्रदीप्त (प्रकाशित) करती है, (तो भी) अपनी शक्ति के प्रमाण से (सामर्थ्य भर) जुगुनू तपता (चमकता) ही है।

पुण्णु – पूर्ण । अमिउ – अमृत । सीयल – शीतल । तिहुवण – त्रिभुवन । पमाण – प्रमाण । जोगणा – जुगुनू-खद्योत ।

[२५]

हाथ जोडि जिणवर पय पडउ, वीयराग सामिय मणि धरउ ।
जत्थ होइ कुकइत्तणे अंधु, जिणदत्त रयउ चउपई बंधु ॥

अर्थ —हाथ जोड़ कर मैं जिनेन्द्र भगवान के चरणो मे पड़ता हूँ तथा वीतराग स्वामी को मन में धारण करता हूँ, जिससे कुकवित्व अंधा हो जाए, और मैं जिनदत्त (की कथा) चउपई बंध (काव्य रूप) मे रच सकूं।

पय – पद । वीयराग – वीतराग । सामिय – स्वामी । कुकइतण – कुकवित्व । रयउ – रच्–रचना करना ।

(कवि परिचय)

[२६]

जइसवाल कुलि उत्तम जाति, वाईसइ पाडल उतपाति ।
पंचऊलीया आते कउ पूतु, कवइ रल्हु जिणदत्त चरितु ॥

अर्थ .—जैसवाल नामक उत्तम जाति के बाइसवें पाटल गोत्र मे मेरी उत्पत्ति हुई है। पचऊलीया आते का जो पुत्र है ऐसा कवि रल्ह जिनदत्त चरित की रचना कर रहा है।

अन्तिम छदो मे कवि ने अपने को 'अमई' का पुत्र वताया है कदाचित यहा भी 'आते' के स्थान पर पाठ 'अमई' होना चाहिए। समवत अमई– अमि–आते हुआ है।

पचऊल – पञ्चकुल। कइ – कवि।

[२७]

माता पाइ नमउ ज जोगु, देखालियउ जेहि मतलोगु।
उवरि मास दस रहिउ धराइ, धम्म बुधि हुइ सिरीया माइ॥

अर्थ —माता के चरणों मे यथायोग्य नमस्कार करता हूँ जिसने मुझे मृत्युलोक दिखाया, तथा जिसने अपने उदर मे दस मास तक रखा, ऐसी धर्म बुद्धि वाली सिरिया मेरी माता थी अथवा धर्म बुद्धि मे मेरी माता सिरिया (श्रीमती–जिसका उल्लेख कथा मे हुआ है) के समान हुई।

पाइ – पाद–चरण। मतलोगु – मृत्युलोक। उवर – उदर–पेट।

[२८]

पुणु पुणु पणवउ माता पाइ, जेइ हउ पालिउ करुणा भाइ।
म उवयारणु हुइसउ उरणु, हा हा माइ मज्झु जिण सरणु॥

अर्थ —मैं वार वार माता के चरणो मे नमस्कार करता हूँ जिसने दया भाव से मुझे पाला है। मै उसके उपकार से उऋण नही हो सकूगा। हे माता मेरे तो जिनेन्द्र भगवान ही शरण है।

उवयार – उपकार।

(रचनाकाल)

[२९]

संवत तेरहसें चउवण्णे, भादव सुदि पंचम गुरु दिण्णे ।
स्वाति नखत्तु चंदु तुलहती, कवइ रल्हु पणवइ सरसुती ।।

अर्थ —सवत् १३५४ की भाद्रपद शुक्ला पचमी वृहस्पतिवार को जब चन्द्र स्वाति नक्षत्र मे था और तुला राशि थी, कवि रल्ह सरस्वती को नमस्कार करता है ।

तुल – तुला ।

(कथा का प्रारम्भ)

[३०]

लवणोवहि चउपासहि फिरिउ, जंबूदीपु मज्झि विप्फुरिउ ।
दाहिण भरहखेत्त जिण भणी, वहइ कालु तहि अउसप्पिणी ।।

अर्थ —लवणोदधि समुद्र जिसके चारो ओर फिरा हुआ है, ऐसे जम्बूद्वीप के मध्य मे विस्फुरित दक्षिण दिशा मे भरत क्षेत्र है जहा अवसर्पिणी काल चल रहा है ।

लवणोवहि – लवणोदधि । भरहखेत्त – भरत क्षेत्र । विप्फुरिउ – विस्फुरित । अवसप्पिणी – अवसर्पिणी ।

(मगध देश का वर्णन)

[३१]

सवइण पाउ वत्थ जहि ठाउ, मगह देसु तहि कहियउ णाइ ।
पामरि घरणि अवासहि चडी, जणु चइ छूटि साग[1] ते पडी ।।

अर्थ —जहा पर समस्त वस्तुएँ पाई जाती है ऐसे उस देश का नाम मगध कहा जाता है। पामरो (नीच मनुष्यो) की स्त्रिया (उस देश मे) महलो पर चढी हुई ऐसी लगती है मानो वे छोडी जाकर स्वर्ग से छूट पडी हो।

मगह – मगध । णाउ – नाम । पामरि – नीच । अवास – आवास–प्रासाद । चइ – चइअ–त्यक्त–छोडा हुआ ।

१ मग–मूलपाठ ।

[३२]

णिसुणहु देसु तण्यो व्योहार, घरि घरि सफल अंबसाहार ।
करहि राजु सकुटंवउ लोइ, परतह दुखी न दीसइ कोइ ।।

अर्थ —अब उस देश का व्यवहार सुनो जहा पर घर घर मे फल सहित सहकार आम के वृक्ष थे। लोग सकुटंब राज्य जैसा सुख भोगते थे तथा प्रत्यक्ष मे कोई दुखी नही दिखाई देता था।

अंब – आम । साहार – सहकार–एक जाति का आम ।
परतह – प्रत्यक्ष ।

[३३]

पहिया पय न भूखे जाहि, केला दाख छुहारी खाहि ।
गामि गामि छेतें सतूकार, पहियह कूर देहि अनिवारु ।।

अर्थ —जहा पर पथिक मार्ग मे भूखे नही जाते थे तथा केला, दाख, छुहारा खाते थे। जहा पर गाव गाव मे सत्तु के भोजनालय थे जो पथिको को देखते ही अनिवार्य रूप मे (सत्तुओ के) कूट (ढेर) खाने के लिये देते थे।

पहिय – पथिक। कूर – कूट–ढेर। सतूकार – सत्तुक+आलय–सत्तूघर (सत्तू–भुने हुए यव आदि का चूर्ण जो पानी मे सानकर मीठा व नमकीन बना कर खाया जाता है)।

[३४]

गामि गामि वाडी अंबराइ, जइसे पाटण तेसे ठाइ ।
धम्मु विषे णरु भोयणु देहि, दाम विसाहि न कोई लेहि ।।

अर्थ —जहा पर गाव गाव मे बगीचे एव अमराइया थी तथा जैसे नगर थे वैसे ही वे स्थान (ग्राम) थे। धर्म-कार्यो मे (वहां के) नर (लोग) भोजन (आहारदान) देते थे तथा बेची हुई वस्तु का दाम नही लेते थे अथवा दाम देकर कोई वस्तुएं नही लेते थे ।

वाडी – वाटिका–वगीचा। अमराइ – अम्रराजि–आम की बगीची। भोयणु – भोजन । विसाहि – विसाहिअ–विसाधित–वेची हुई वस्तु । पाटण – पत्तन–नगर ।

[३५]

णाकरु कूड दंड तहि चरइ, अपुणइ सुखि परजा व्यवहरइ ·
चोर न चरडु आंखि देखिये, अरु परणारि जणणि पेखियइ ।।

अर्थ —जहा जो अपराधी और कूट [दुष्ट] होते थे उनके लिये दड चलता था और प्रजा अपने व्यवहार [दैनिक जीवन] मे सुखी थी। चोर चरट कही भी नही दिखायी देते थे तथा पर स्त्री माता के समान देखी जाती थी।

णाकरु – अपराधी। कूड – कूट–कुटिल, दुष्ट। चरडु – चरट–लूटेरो का एक प्रकार·। पेख – प्र+ईक्ष्–देखना ।

[३६]

मगह देसु भीतरि सुहि सारु, वासव सुरह अहिउ सो चारु ।
धण कण कंचण सव्व वियूर, मंदर तुग पिहिय कय सूर ।।

अर्थ —मगध देश भीतर से भी सुखी और सारवान (सपन्न) था। वह इन्द्र का चारु स्वर्ग था अथवा सुरथ का साकेतपुर था। वह धन धान्य एव स्वर्ण से पूरित था तथा उसके सूर्य को ढकने वाले ऊचे मदिर (पर्वत) के सदृश महल थे।

सुहि – सुखिन–सुखी। सारु – सारवान–सपन्न। सुरह – सुरथ–साकेतपुर का एक राजा। पिहिय – पिहिअ–पिहित–ढका हुआ।

(विभिन्न जातियों के नाम)

वस्तुबंध

[३७]

वणिकु वंभण वइद वासीठ ॥
वाढइ वेसा वरुड वदरा विवारी विहारह।
वाणु वाह वारी वुरु वहु विहारछ जीवरखहं ॥
वरु विहारि वारिठिआ वुह विडह [1]वणियार।
तह वसतपुरि रल्ह कइं छहि चउवीस वकार ॥

अर्थ —वणिक, ब्राह्मण, वैद्य, वसीठ, वढई, वेश्या, वरुड, वदरा, विवारी, विहार वाणु, वाह, वारी, वुरु, वहु, विहारछ, वरख, वरु, विहारी, वारिठिया, वुह, विडह, वणियार रल्ह कवि कहता है कि ये चौवीस प्रकार की वकार के नाम वाली जातियाँ वहा वसतपुर मे रहती थी।

१ त्वणियार–मूलपाठ।

[३८]

नूर सामीय ताहु सोतियहि।
सरि सरवर सावयहं सव्वत अत्थि सारंग साहणा सिऊ।
सोहा महियणहं सिरिव संत सहियण समाणहं ॥

दंसरा सीमा सत्यवइ, सत्थ सवण सुहसार ।
सुव्वस सील वसंतपुर, छंहि चउवीस सकार ।।३

अर्थ :—सकार के नाम वाली निम्न चौबीस जातियां वसंतपुर मे निवास करती थी :—

सूर, सामी (स्वामी), साहु, सोतिय (श्रोत्रिय), सरि, सरवर, सावय (श्रावक), सव्वल, सारंग, साहरा, सिऊ, सोहा, सहियरा, सिरि (श्री), सत, सहियरा, समारा, सीमा, सत्थवइ (सार्थपति), सत्थ (सार्थ), सवरा, सुहसार (सुखसार), सुव्वस, सील, (शील) ।

[३६]

मोह मछरु माणु मायारु ।

मउ मरि मारणु मरविणु, मलिणु मलणु जंहि कोवि सीसइं ।
महु मंस मयरासंहि उतहि, मछिदु मउरउरा दीसइं ।।२

मूढु मुसरा मंगलु मखरु, जंहि रा मलइ जल मीणु ।
भरगइ रल्ह सु वसंतपुर, वीस मकार विहीणु ।।

अर्थ :—रल्ह कवि कहता है कि वसंतपुर में, मोह, मत्सर, मान, माया, मद, मरी (एक रोग), मारण, मरविरा, मलिरा (मालिन्य), मलन (मर्दन), मधु, मास, मदिरा, मछिन्दु (मछन्द), मउरउरा (मुकुट विना), मूढ, मुसरा, मगल, मखर तथा मीन सहित जल ये वीस मकार नही थे।

नोट :—इस छद के पाठ में कुछ भूल लगती है चरण २ का 'जहि कोवि सीसइ' चरण ३ के 'मउरउरा दीसइ' के साथ आना चाहिए।

(वसंतपुर नगर वर्णन)

चौपई

[४०]

राज-थाणु किमु करि वण्णियइ, पच्चखु सग्गु खड जाणियइ ।
वसइ वसंतु णयरु सो घणउ, चदसिहरु राजा तहृ तणिउ ।।

अर्थ —राजा के स्थान (राजधानी) का किस प्रकार वर्णन किया जाय ? उसे तो प्रत्यक्ष स्वर्ग का टुकडा ही जानो। वह वसतपुर नगर घना वसा हुआ था और उसका चन्द्रशेखर नाम का राजा था।

थाणु – स्थान । पच्चखु – प्रत्यक्ष । सग्गु – स्वर्ग । चदसिहरु – चन्द्रशेखर ।

[४१]

चंदसेखर राजा के भवण, दिपहि त माणिक मोती रयण ।
सयलु अंतेउरु रूपनिवासु, वीस वीस सवण्हु अवासु ।।

अर्थ —चन्द्रशेखर राजा के महल से माणिक मोती एव रत्न चमकते थे (अथवा, वे महल माणिक, मोती एव रत्नो से चमकते थे)। उसका समस्त अन्त पुर रूप का निवास था तथा सबके लिये बीस बीस आवास (महल) थे।

रयण – रत्न । सयलु – सकल, समस्त । अतेउरु – अन्त पुर । सवण्हु – सबके लिये–स्वर्ण ।

[४२]

वसहि त सयल लोय सुपियार, कंचण मइ तिन्हु कियए विहार ।
पर कहु मीचु ण वछइ कोइ, जीव दया पालइ सब कोइ ।।

अर्थ :—सभी लोग प्रेम से रहते थे। उन्होंने अपने विहार (जिन मन्दिर) स्वर्ण-मय बना लिये थे। वहा दूसरे की मृत्यु की वाछा कोई नही करते थे तथा सभी जीव दया का पालन करते थे।

सुपियार – सु+पिय+तर–अत्यन्त प्रिय। मीचु – मृत्यु।

[४३]

कोली माली पालहि दया, पटवा जीवकहु इंछहि मया।
पारधी जीव ण घालहि घाउ, दया धम्मु कउ सबही भाउ॥

अर्थ —कोली और माली (तक) भी जहां दया धर्म का पालन करते थे। पटवा एव सपेरा भी दयावान थे। वधिक जीवो पर कोई भी घात नही करते थे। (इस प्रकार) सभी का दया धर्म का भाव था।

कोली – कौलिक–सूती वस्त्र बुनने वाले। पटवा – पट+वाय–रेशमी वस्त्र बुनने वाला। जीवक – सपेरा। पारधी – पापर्धि–वधिक।

[४४]

बाभण खत्री अवरति चर्म, ते सब पालक सरावग धर्म्म।
मारण णाइ दियइ कलमली, जिणवर णवहि छत्तीसउ कुली॥

अर्थ .—ब्राह्मण तथा क्षत्रिय चर्म (के प्रयोग) से विरत थे और वे सभी श्रावक धर्म का पालन करते थे। मारने (हिंसा करने) का नाम उनको कष्ट देता था और छत्तीसों जातिया जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करती थी।

अवरति – अवरत्त–अपरक्त–विरक्त।

(वस्तु बंध)

[४५]

सुवणु रंजणु धम्मु गुण वाणि ।

परिवारहं सोहियउ देइ, दाणु जिणणाहु पुज्जइ ।
सयल जीव करुणा करइ, जीवदेउ तहि सेठि छज्जइ ॥

घरणि सुहाइ तासु घरि, जीवजस सुविसाल ।
दाण किति तिन्हु रल्हु कइ, भमिय पुहमि असराल ॥

अर्थ —वह सभी सवर्णों (उच्च जातियों) का प्रिय था तथा उसकी वाणी धर्म एव गुणों से युक्त थी। वह अपने परिवार के साथ शोभित था, जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता था तथा दान देता था। सब जीवो पर करुणा (दया) करता था, ऐसा वहाँ जीवदेव नाम का सेठ शोभित होता था। उसके घर मे सुन्दर गृहिणी (धर्म-पत्नी) 'जीवजसा' नाम की थी जो बहुत सुन्दर थी। 'रल्ह कवि' कहता है कि उनकी दान देने की प्रशसा सम्पूर्ण पृथ्वी तल पर निरतर फैल रही थी।

असराल – निरन्तर। सुवणु – सवर्ण – उच्च जातियाँ। सयल – सकल। छज्जइ – शोभित होना। भमित – फैलना।

[४६]

जणहनु पीडि करावइ वेठि, जीउदेव तहि निवसइ सेठि।
जीवंजसा नामे तसु घरणि, रूव सुरेख हंस-गइ-गमणि ॥

अर्थ —दुखित जनों की पीडा को दूर कर बैठने (विश्राम लेने) वाला जीवदेव नाम का सेठ वहाँ रहता था। उसकी स्त्री का नाम जीवजसा था जो रूपवती, शुभ रेखाओ से मडित तथा हस की चाल चलने वाली थी।

[४७]

अइसउ सेठि वसइ तहि नगरी, तिहि समु भयउ न होसइ अउरु ।
धरण करण परियणु सवरण संजुत्त, पर घरि नाही एक्कइ पूतु ।।

अर्थ —ऐसा सेठ उस नगरी मे रहता था, उसके समान न तो कोई हुआ और न दूसरा होगा । वह धन-धान्य एवं सब परिजनो से युक्त था केवल उसके घर मे पुत्र नही था ।

अउरु – अपरु–दूसरा । परियणु – परिजन ।

[४८]

सेठिणी भणइ सेठ णिसुणोहि, पुत्तह विणु कुलु वूड तोहि ।
दाण धरमु सपइ सवु दीज, फुण ऋष पास जाइ तपु लीज ।।

अर्थ —सेठानी सेठ से कहने लगी "हे सेठ सुनो विना पुत्र के तुम्हारा वश डूव (समाप्त हो) जावेगा । दान, धर्म मे सब सपत्ति दे दीजिये तथा फिर ऋषि के पास जाकर तप (व्रत) ले लीजिये ।

पुत्त – पुत्र । सपइ – सपत्ति ।

[४९]

कियउ मंतु परियणु वयसारि, कहइ वयणु सुहयरु ऊसारि ।
पूतह विनु कुल वूडइ मोहि, किं किज्जइ वुह पूछउ तोहि ।।

अर्थ —अपने परिजनों को वैठाकर उसने मत्रणा की तथा यह सुखकर वचन (मुख से) निकाल कर कहा–"विना पुत्र के मेरा कुल डूव रहा है । क्या करना चाहिए, यह हे वुद्धिमानो, मैं आपसे पूछता हूँ ।"

मतु – मंत्र–मंत्रणा । सुहयरु – सुखकर । ऊसारि – उच्चारण कर । वुह – वुह–वुध ।

[५०]

चवइ श्रवण जिरणवर बंदियइ, श्रणु दिणु सेठि श्रप्पु रिणदियइ ।
परह पसंसु करइ जो भव्वु, देइ दाण मरिण परि हरि गव्वु ।।

अर्थ :—वह सेठ श्रमण भगवान का नाम लेने और जिनेन्द्र की वदना करने लगा तथा प्रतिदिन वह अपनी निन्दा करने लगा। जो भव्य दूसरो की प्रशसा करता है तथा मन से गर्व को दूर कर दान देता है।

चव् – कहना। श्रवण – श्रमण–भगवान। परह–दूसरे की। पससु – प्रशसा।

[५१]

जीवदया जो श्रह निसि करइ, पंचानुव्वइ निम्मल धरइ ।
गुणवय तिण्णि सिखवय चारि, मुत्ति स्वयंवर श्रावइ नारि ।।

अर्थ —जो रात-दिन जीव दया पालन करता है, निर्मल पचाणुव्रत को धारण करता है, तीन गुणव्रतो और चार शिक्षाव्रतो को (जीवन मे उतारता है) मुक्ति-नारी स्वय आकर उसका वरण करती है।

श्रह निसि – श्रह निशि। पंचानुव्वइ – पचाणुव्रत।[1]
निम्मल – निर्मल। गुणवय –गुणव्रत।[2]
तिण्णि – त्रीणि। सिखवय – शिक्षाव्रत।[3]

[1]अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत एव परिग्रह परिमाणाणुव्रत ये पांच अणुव्रत कहलाते हैं।

[2]दिग्व्रत, देशव्रत एव अनर्थदण्डव्रत–ये तीन गुणव्रत हैं।

[3]सामयिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण एवं अतिथि सविभाग–ये चार शिक्षाव्रत हैं।

[५२-५४]

तिहि खरिण चवइ जीवचो सेठि, हुउ आराहुउ निरु परमेठि ।
सयल चराचर जाणउ भेउ, वीयराउ महु जपउ[1] अलेउ ।।

जल चंदण अखय वर फुल्ल, चरु दीवइ अंछुइ लइय अमुल्ल ।
अगर धूव कारण निरु लयउ, फल समूह जे जिणवरु गयउ ।।

जिणवरु विवु जोइ मणु तुठ, चिरु संचिउ कलिमलु गउ तुठ ।
अठविह पूय करइ दयवंतु, नियमणु झावइ देउ अरहंतु ।।

अर्थ :—उस क्षण जीवदेव सेठ कहने लगा अब मै निश्चितरूप से परमेष्ठि की आराधना करता हूँ (करुगा) क्योकि वे ही सकल चराचर का भेद जानते है (अत) मैं उन अलिप्त वीतराग भगवान का जप करता (बोलता) हूं। ।।५२।।

एक थाल मे जल, चदन, अक्षत, उत्तम पुष्प एवं बिना स्पर्श किये हुये अमूल्य (निर्मल) नैवेद्य एव दीपक उसने लिये तथा अगर धूप (दशाग धूप) और उसी कारण (उद्देश्य) से फलो के समूह को लिया और वह मन्दिर मे गया ।।५३।।

जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के दर्शन कर उसका मन पूर्ण सतुष्ट हो गया तथा चिरकाल से सचित पापमल त्रुटित (नष्ट) हो गये। वह भगवान की अष्ट विधि से पूजा करने लगा तथा अपने मनमे अर्हंत् देव का ध्यान करने लगा ।।५४।।

खरिण – खण–क्षण। परमेठि – परमेष्ठि। अखय – अक्षत।
निरु – निश्चितरूप से। चरु – नैवेद्य। दीपह – दीपक।
तुठ – त्रुटित–टूटा। झावइ – ध्यावइ – ध्यान करना, चितन करना।

१. जयउ–मूलपाठ।

वाढइ पूतु कला जिमु चंद, जाइ विहार कियउ आणंद ॥
जिणवर पूज मुणिह पयी पडइ, रिषि जिनदत्त नाउ तिस धरइ ॥

अर्थ —सेठ ताम्बूल, सुपारी तथा पान (बीड़े) देने लगा। उसने सूती एव रेशमी वस्त्र दान मे दिये। पुत्र (जन्म) के बधावे मे कोई खोरि (कसर-कमी) नही रखी। सेठ ने दो करोड दाम (मुद्रा) दान मे दिये ॥६१॥

चन्द्रमा की कला के समान पुत्र बढ़ने लगा तथा जिन मन्दिर जाकर उसने आनन्दोत्सव मनाया। जिनेन्द्र भगवान की पूजा करके वह मुनि के चरणो मे पडा तथा ऋषि (मुनि) ने उसका नाम जिनदत्त रखा।

फोफल – पूगफल–सुपारी। पटोल – पट्टफूल–रेशमी वस्त्र।

[६३–६४]

वरष दिवस वाढइ जे तडउ, दिन दिन विरध करइ ते तडउ ॥
वरष पंच दस को सो उछाह, विज्जा पढण उज्झाउरि जाइ ॥

ओंकारु लयउ मणु जाणि, लखणु छंदु तवक परिवाणि ॥
मुणि व्याकरण विरति कउ जाणु, भरहु रमायणु महापुराणु ॥

अर्थ —वर्ष और दिन ज्यो-ज्यो व्यतीत होने लगे वे उसमे उतनी ही वृद्धि लाने लगे। जब उसकी १५ वर्ष की अवस्था हुई तो विद्या पढने के लिये वह उपाध्याय कुल (विद्यालय) जाने लगा।

सर्व प्रथम उसने 'ओंकार' शब्द को मनमे जाना। फिर लक्षण शास्त्र, छंद शास्त्र तथा तर्क शास्त्र को प्रमाणित किया (पढा)। व्याकरण जानकर वैराग्य का विषय उसने जाना और इस प्रकार भरत (नाट्य शास्त्र) रामायण तथा महापुराण का (ज्ञान प्राप्त किया)।

उछाह – उच्छ्राय–ऊँचाई, अवस्था। विज्जा – विद्या।

उज्झाउरि – उपाध्याय कुल–विद्यालय। लखगु – लक्षण। तक्क – तर्क।
मुण – जानना। विरति – वैराग्य–अध्यात्म।

[६५–६६–६७]

लिखत पढत सीखिउ असुरालु, जोतिषु तंत मंतु सब सारु।
छुरी सयलु अरु खंडागरु, सीखी सयलु कला बहत्तरु॥

भउ जुवाणु मइ सुद्धि सहाउ, लजालु वउ धम्मु कउ भाउ।
सीलवंत कुल अज्ञा फिरइ, विषयह ऊपरि भाव न धरइ॥

देखिऊ पूत तणऊ विवहारु, भणइ सेठि कुल बूडण हारु।
पूत विषय मनु लगु ण तोहि, कैसै बंस विद्धि हुई मोहि॥

अर्थ —निरन्तर पढ कर जोतिष, तंत्र शास्त्र और मत्र का सब सार सीख लिया। सभी प्रकार से छुरी और तलवार चलाना (आदि) सभी ७२ कलायें उसने सीख ली ॥६५॥

वह युवा हुआ किन्तु वह स्वभाव मे शुद्ध मति का था, इस अवस्था मे भी वह लज्जाशील था तथा उसे धर्म का भाव था। वह शीलवत कुल की मर्यादा के भीतर आचरण करने वाला था तथा विषयों पर ध्यान नही देता था ॥६६॥

पुत्र का (ऐसा) व्यवहार देखकर सेठ कहने लगा "(मेरा) कुल (इसके कारण) डूबने वाला है। (पुत्र से, उसने कहा,) हे पुत्र तुम्हारा मन विपयो मे लग नही रहा है, अत मेरे वंश की वृद्धि कैसे होगी" ॥६७॥

असरालु – निरतर। तत – तंत्र। मंतु – मत्र। – खंडागरु– तलवार।

जुवाणु – युवा। मइ – मति। लजालु – लज्जाशील।
वउ – वपुप्–शरीर अवस्था। वसविद्धि – वंश वृद्धि।

[५५-५६]

सत्थु पुज्ज गुरु पूज्जिउ झत्ति, मुनिवर पाइ पडी तिहु पत्ति ।
तुह जाणहि सामिय जिणसुत्त, महु होइ इह मुणिवरु भण पुत्तु ।।

हाथु देखि मुनि बोलइ ताहि, जिण सेठिणि हियडइ विलखाहि ।
लखण बत्तीस कला संजूत्तु, कुल मंडणु तुव होसइ पूत्तु ।।

अर्थ —शास्त्र की पूजा करके शीघ्र ही उसने गुरू की पूजा की तथा (तदनन्तर) उसकी पत्नी मुनि के पाव पड़ गई। (उसने कहा) हे स्वामी आप जिनसूत्रो (आगमो) को जानने वाले हो। मुझे पुत्र हो, हे मुनिवर, (आप) यह कह (आशीष) दें [अथवा, क्या मुझे पुत्र होगा, हे मुनिवर, आप यह बताएँ] ।।५५।।

हाथ देखकर मुनि उस समय बोले "हे सेठानी हृदय मे दुखित मत हो। बत्तीस लक्षणो एव् कला से युक्त एव कुल की शोभा वाला पुत्र तुम्हारे होगा ।।५६।।

सत्थु – शास्त्र। पत्ति – पत्ती–पत्नी–भार्या। झत्ति – झटिति–झट–शीघ्र।

[५७-५८]

सेठिणि सगुणु गाठि बाधियउ, णिय घर जाइ महोछउ कीयउ ।
मोसिउ मुणिवरु कहिउ गुणगु, तूठी सेठिणि माइ ण अग ।।

पुणु अलहादी बोलइ सोय, रिसि भासियउ न झूठिउ होय ।
णिरु आणंदिउ बोलइ साहु, पिव होसइ मणु चित्ति उछाहु ।।

अर्थ —सेठानी ने उस शकुन (शुभ सूचना) की गाठ बाध ली और अपने घर जाकर महोत्सव किया। गुणो के धारी मुनिवर ने मुझ मे (इस प्रकार) कहा है "इससे प्रसन्न सेठानी अपने अगो मे समा नही रही थी ।।५७।।

फिर प्रसन्न होकर कहने लगी "ऋषि का कहा हुआ कभी झूंठा नहीं होता है। सेठ भी निश्चित रूप से आनन्दित होकर बोला—प्रिय (अच्छा ही) होगा ऐसा मनमे सोचकर उछाह करो। ॥५८॥

णिय — निज। महोछ्उ — महोत्सव। मोसिउ — मुझसे। णिरु — निश्चित रूप से। पिव — पितृ—पिता—प्रिय।

[५९—६०]

(पुत्र जन्म)

राजु करत दिन केते गये, सेठिणि गब्भु मास दुइ भए।
आइ भए पूरे दस मास, पूतु जम्मु भौ पूरिय आस॥

जीवदेउ घरि नंदण भयउ, घर घर कुटंब बधाऊ गयउ।
गावहि गीतु नाइका सउकु, चउरी पूरिउ मोतिन्ह चउकु॥

अर्थ—राज करते हुये (सुख भोगते हुये) कितने ही दिन बीत गये। कालान्तर मे सेठाणी को गर्भ रहा जो दो मास का हो गया फिर दस मास पूरे हो गये। पुत्र का जन्म हुआ और सबकी आशा पूरी हुई ॥५९॥

जीवदेव के घर जब पुत्र उत्पन्न हुआ तो उसके कुटुम्बियों द्वारा घर-घर मे बधावा गाया गया। स्त्रिया उत्साहपूर्वक गीत गाने लगी तथा उन्होने मोतियो के चौक पूरे ॥६०॥

गब्भु — गर्भ। नाइका — नायिका—स्त्री। सउकु — स+उत्क— उत्साहपूर्वक।

[६१—६२]

देहि तंबोल तं फोफल पाण, दीणे चीर पटोले पाणे।
पूत बधाए नाहो खोगि, दीने सेठि दाम दुइ कोडी॥

वाढइ पूतु कला जिमु चंद, जाइ विहार कियउ आणंद ॥
जिणवरु पूज मुणिह पयी पडइ, रिषि जिनदत्त नाउ तिस धरइ ॥

अर्थ —सेठ ताम्बूल, सुपारी तथा पान (बीडे) देने लगा। उसने सूती एव रेशमी वस्त्र दान मे दिये। पुत्र (जन्म) के वधावे मे कोई खोरि (कसर-कमी) नही रखी। सेठ ने दो करोड़ दाम (मुद्रा) दान मे दिये ॥६१॥

चन्द्रमा की कला के समान पुत्र बढ़ने लगा तथा जिन मन्दिर जाकर उसने आनन्दोत्सव मनाया। जिनेन्द्र भगवान की पूजा करके वह मुनि के चरणो मे पडा तथा ऋषि (मुनि) ने उसका नाम जिनदत्त रखा।

फोफल – पूगफल—सुपारी। पटोल – पट्टफूल—रेशमी वस्त्र।

[६३-६४]

वरष दिवस वाढइ जे तडउ, दिन दिन विरघ करइ ते तडउ।
वरष पंच दस को सो उछाह, विज्जा पढण उज्झाउरि जाइ ॥

ओंकारु लयउ मणु जाणि, लखणु छंदु तवक परिवाणि।
मुणि व्याकरण विरत्ति कउ जाणु, भरहु रमायणु महापुराणु ॥

अर्थ —वर्ष और दिन ज्यों-ज्यो व्यतीत होने लगे वे उसमे उतनी ही वृद्धि लाने लगे। जब उसकी १५ वर्ष की अवस्था हुई तो विद्या पढने के लिये वह उपाध्याय कुल (विद्यालय) जाने लगा।

सर्व प्रथम उसने 'ओंकार' शब्द को मनमे जाना। फिर लक्षण शास्त्र, छंद शास्त्र तथा तर्क शास्त्र को प्रमाणित किया (पढा)। व्याकरण जानकर वैराग्य का विषय उसने जाना और इस प्रकार भरत (नाट्य शास्त्र) रामायण तथा महापुराण का (ज्ञान प्राप्त किया)।

उछाह – उच्छ्राय—ऊँचाई, अवस्था। विज्जा – विद्या।

उज्झाउरि – उपाध्याय कुल–विद्यालय। लखणु – लक्षण। तक्क – तर्क। मुणु – जानना। विरति – वैराग्य–अध्यात्म।

[६५–६६–६७]

लिखत पढत सीखिउ असुरालु, जोतिषु तंत मंतु सव सारु।
छुरी सयलु अरु खंडागरु, सीखी सयलु कला बहत्तरु॥

भउ जुवाणु मइ सुद्धि सहाउ, लजालु वउ धम्मु कउ भाउ।
सीलवंत कुल अज्ञा फिरइ, विषयह ऊपरि भाव न धरइ॥

देखिऊ पूत तणऊ विवहारु, भणइ सेठि कुल बूडण हारु।
पूत विषय मनु लगु ण तोहि, कैसैं वंस विद्धि हुई मोहि॥

अर्थ :—निरन्तर पढ कर जोतिष, तंत्र शास्त्र और मंत्र का सब सार सीख लिया। सभी प्रकार से छुरी और तलवार चलाना (आदि) सभी ७२ कलायें उसने सीख ली॥६५॥

वह युवा हुआ किन्तु वह स्वभाव मे शुद्ध मति का था, इस अवस्था में भी वह लज्जाशील था तथा उसे धर्म का भाव था। वह शीलवंत कुल की मर्यादा के भीतर आचरण करने वाला था तथा विषयों पर ध्यान नही देता था॥६६॥

पुत्र का (ऐसा) व्यवहार देखकर सेठ कहने लगा "(मेरा) कुल (इसके कारण) डूबने वाला है। (पुत्र से, उसने कहा,) हे पुत्र तुम्हारा मन विषयो मे लग नही रहा है, अत मेरे वंश की वृद्धि कैसे होगी" ॥६७॥

असरालु – निरंतर। तंत – तंत्र। मंतु – मंत्र। – खंडागरु– तलवार।

जुवाणु – युवा। मइ – मति। लजालु – लज्जाशील। वउ – वपुष्–शरीर अवस्था। वंसविद्धि – वंश वृद्धि।

[६८]

(वस्तु बंध)

कवड जिणि कं वसइ णिय चित्ति ।
जगु ज हडहि आरडहि, गठि मुठि तवकंते जोवहि ।
जुवारिउ लज्ज विणु, विसय भत्त न विरत्ति सोवहि ।।

जिन्ह परद्दव्वहं मनु ठविण्णु, अरु वछहि परनारि ।
तिन्हु हक्कारि वि सेठि निरु, कहिय वत्त वय सारि ।।

अर्थ —जिनके चित्त मे नित्य कपट वसता है, तथा जो दुनिया को गाली देते है (वुरा भला कहने) तथा शोरगुल मचाते है, तथा जो (दूसरो की) गांठ और मुट्ठी ताकते हुये देखते रहते है। जुवारी जन जो निर्लज्ज् होकर विषयो के भक्त होते है और जिन्हे वैराग्य अच्छा नही लगता है जिनका मन सदैव दूसरो के द्रव्य मे स्थित रहता है तथा जो दूसरो की स्त्री की वाछा करते रहते है ऐसे व्यक्तियो को सेठ ने वुलाने एव वैठाकर (अपनी) बात करने का निश्चय किया।

कवड – कपट। हड ∠ हड ∠ भण्ड – वुरा कहना, गाली देना। आरड् ∠ आ+रट् – चिल्लाना, शोर करना। हक्कारि – वुलाना। भत्त ∠ भक्त। निरु – निश्चित रूप से। विरत्ति – वैराग्य।

[६९–७०]

तवहि सेठि मंतु परिठविउ, जुवारीन्हकुं हवकारउ गयउ ।
नट भट जो न करहि वहु काण, ते सहु सेठि वुलाए जाण ।।

वार वार वेसा धरि जाहि, अरु जूवा खेलत न अघाहि ।
चोरी करत न आलसु करइ, गांठ काटि अंतरालइ धरइ ।।

अर्थ —तब सेठ ने मत्र (विचार) परिस्थापित (निर्धारित) करने हेतु जुवारियो को बुलाया । नट तथा भट जो बहुत कानि (लज्जा) नही करते थे उन सबको भी सेठ ने जान बूझकर बुलाया ।।६९।।

जो वार वार वेश्या के घर जाते थे तथा जुवा खेलते हुये तृप्त नही होते थे, जो चोरी करने मे आलस्य नही करते तथा (दूसरो की) गाठ काट करके अपने घर के भीतर धरते थे ।।७०।।

[७१–७२]

जिनु कै दव्व गइय तिन्हु दिठि, सो जणु कियउ आपुणी मुठि ।
गंजणु कूडू मारि जिणु सही, तिणि सहु सेठि बात सहु कही ।।

अहो वीरु तुम्ह एसउ करहु, बूडिउ कुल मेरउ उद्धरउ ।
जो जिणदत्त विषय मनु लावै, निछ्चय लाख दामु सो पावै ।।

अर्थ —जिनकी दूसरो के धन पर दृष्टि जाती थी उनको उसने अपनी मुट्ठी मे कर लिया । जिनका कार्य तिरस्कार करना (कपट करना) एव मारना (इस प्रकार का) सभी कुछ था, उनसे भी सेठ ने वे सभी बातें कही ।।७१।।

"अरे वीरो तुम इस तरह करो कि मेरे डूबे हुए वश को उबार लो । जो जिनदत्त का मन विषयो की ओर लगा देगा, वह निश्चित रूप से एक लाख दाम पावेगा ।।७२।।

गजण ∠ गञ्जन – अपमान, तिरस्कार ।

दाम ∠ द्रम्म – एक सोने का सिक्का ।

[७३–७४]

जुवारिउ हंसि बोलइ बोलु, तुम्हि तौ धरिउ हमारौ तोलु ।
जइयहु रमइ नयर नर नारि, तउ तुम पाछै सकहु सवारि ।।

राजा सेठि सु जपइ ताहि, मह्व समु वलियउ अउर न आहि ।
यहु लीला रसु वंछइ जाहि, तउ हमु उत्तरु दीवउ ताहि ॥

अर्थ —जुवारियों ने हँस करके यह वात कही "तुम ने तो हमको टटोल लिया (हमारा मूल्य आक लिया)। यदि वह (जिनदत्त) नगर–नारियो (वेश्याओ) के साथ रमने लगे, तो (उसके) पीछे तुम उसे (अपने लक्ष्य के अनुसार) ठीक कर सकोगे ?"

राज–सेठ ने उनसे कहा कि मेरे समान लज्जित दूसरा कोई नही है इससे अधिक क्या कहूँ। वह जिनदत्त लीला रस (भोग विलास) मे जव इच्छा करने लगे, तव हमे उसका उत्तर देना (विवाहादि के विषय मे उसके विचार वताना)।

जइ ∠ यदि। नयर ∠ नगर।
व्रलियउ ∠ व्रीडित – लज्जित, शरमिन्दा।

[७५–७६]

चले वीर जिणदत्त हकारि, नवजोवणी दिखालहि नारि ।
कवणइ वीर थका मनु लाव, पुणु दत्तहि नु एक्कइ भाव ॥

कवणइ वीर जुवा रस रमइ, कवणइ लेइ वेसा घरि वसइ ।
लइ ठाढउ पुणु तिय महि कियउ, तोवि ण तासु वेधियउ हियउ ॥

अर्थ —वे वीर जिनदत्त को वुला कर ले चले तथा उन्होने नव युवतियों को दिखलाया। किसी वीर ने उसका मन किसी अन्य प्रसग मे लगाया लेकिन जिनदत्त का मन एक मे भी नहीं लगा ॥७५॥

कोई वीर उसे जुए के रस मे रमाने लगा तथा कोई उसे वेश्या के घर में ले जाकर रहने लगा। किसी ने उसे ले जाकर स्त्रियो के वीच मे खडा कर दिया, तव भी उसका हृदय (उनसे) विह्वल न हुआ।

हकारि ∠ आ+धारय् – बुलाना ।
वेसा ∠ वेश्या । थका ∠ थक्क – अवसर, प्रस्ताव-समय ।

[७७–७८]

एत्थंतरि ते कहा कराहि, एांदरा वरा चैत्यालइ जाहि ।
वइसि वीरुन्ह वंदरा ठई, उह की दिठि लिलाडेहि गई ।।

दीठी पाहरामय पूतली, गय जिरादत्त दिठि भिभली ।
वहु लावण्ण गढी सुतधारि, भूले देखि अचेयरा नारि ।।

अर्थ.—इसके पश्चात वे क्या करते है कि नदन वन के चैत्यालयों में जाते है । वहा पर वैठकर उन वीरो ने भगवान की वदना की । इसके पश्चात् उसकी दृष्टि (चैत्यालय) के ललाट पर गई ।

जव एक पाषाणमय (पाषण निर्मित) पुतली दिखाई पडी तो जिनदत्त की विह्वल दृष्टि उस पर जा लगी । वह सूत्रधार (शिलपकार) के द्वारा अति सुन्दर गढी गई थी । उस अचेतन स्त्री (पुतली) को देखकर वह जिनदत्त अपने आप को भूल गया ।

एत्थतरि : इत्थतर – इसके वाद । दिठि ∠ दृष्टि ।
पाहरामय – पाषाणमय । गय – गत ।

[७९–८०]

भूलिवि पडिउ ताहि मुख देखि, इह परि आहि रूप की रेख ।
काम वाण तसु वेधिउ हियउ, धार जुवारिन्हु अंचलु कउ लयउ ।।

वाहरि वीर ति देखहि आइ, लइ जिरादत्त उछंग चडाइ ।
देखि पूतली विभिउ एहु, सेठिरिए भरिएउ वधाउ देहु ।।

अर्थ —उसका मुख देखकर वह अपने आपको भूल गया और कहने लगा हो न हो यह रूप की सीमा है। उसके हृदय को जब मदन बाण ने बीध दिया तो उसने दौड कर जुवारियो का आचल पकड लिया।

उन वीरो ने उसे बाहर आकर देखा और जिनदत्त को गोद मे उठा लिया। "पूतली को देखकर वह विस्मित हो गया है इसलिये सेठानी से कह कर वधावा दें" ॥८०॥

उछग = उत्सग—गोद।

[८१]

तखरण वीर पहूते तहा, निय मदिरह सेठि हौ जहा।
कुवरह लछरण परखि किन लेहु, हम कहु सेठि वधाऊ देहु॥

अर्थ —उसी क्षण वे वीर वहाँ पहुँचे जहाँ सेठ अपने मन्दिर मे था। (उन्होंने कहा) हे सेठ, कुमार के लक्षणो को क्यो न परख लो? हमको भी हे सेठ, (अब) वधाई (पुरस्कार) दो।

तखिरण √ तत्क्षरण।

[८२–८३]

तवहि सेठि तूठउ सतभाउ, लाख दामु तिन दियउ पसाउ।
दइ तबोल घरह पठाइ, अग डाहु जिरणदत्तु भरणाइ॥

रिगसुरिग पूतु तुहि कहउ विचारि पुतली रूपजा जारगहि नारि।
जइ र विजाहरि रूपहि रासि, अवसि करउ तोहि घरि दासि॥

अर्थ —यह सुनकर सेठ बहुत सन्तुष्ट हुआ और प्रसन्न होकर लाख दाम उन्हे पुरस्कार-स्वरूप दिये। उन्हे (तदनन्तर) पान देकर घर विदा किया और अपने शरीर के दाह (चिता) को जिनदत्त से कहा ॥८२॥

"हे पुत्र, सुनो। मैं तुम्हे विचार कर कहता हूँ। जिस नारी को तुम पुतली के रूप मे जानते हो, यदि वह रूप की राशि विद्याधरी भी हो, तो ऐसी स्त्री को तुम्हारे घर मे दासी के रूप मे लाऊँगा ।।८३।।

तबोल ∠ ताम्बूल–पान। विजाहरि ∠ विद्याधरी।

[८४–८५]

सुत्तधारि लइयउ हकराइ, किसुंकइ रूप घरी तै नारि।
कहिहि देसु महु वहियउ आइ, कर कंकरण तुव देउ पसाउ ।।
निसुणहि सेठि कहउ फुड तोहि, वारह वरस भमत गये मोहि।
फिरत देस महु चित्त पइठु, नयरी एक भलो मइ दिठु ।।

अर्थ :—उसने सूत्रधार को वुलवा लिया और उससे पूछा "तूने किस स्त्री के रूप की यह (पुतली) गढ़ी है? उसका देश मुझसे कहो, मैं व्यथित हूँ। मैं तुम्हे प्रसाद के रूप में कर ककरण दूँगा।

(यह सुनकर वह कहने लगा) "हे सेठ, सुनो, मैं तुमसे स्पष्ट कहता हूँ कि जव मुझे वारह वर्ष देशो मे फिरते हुए हो गए। देशो मे भटकते हुए मैंने ऐसी एक भली नगरी देखी और वह मेरे हृदय में प्रविष्ट हो गयी"।

वहिय – व्यथित। फुड – स्फुट–स्पष्ट।

[८६–८७]

चपापुरी नयरी सा भरणी, धरण करण कंचरण सोहइ घरणी।
अंड दंड एक सोवन घडी, मंदिर दिपहि पदारथ जडी ।।
घरि घरि कूवा वाइ विहार, कंचरण मइ जिन कीए पगार।
उत्तम लोक वसहि सा भरी, जणु कइलास इंद की पुरी ।।

अर्थ —वह चपापुरी नगरी कहलाती थी जो धन-धान्य एव कचन से

खूब सुशोभित थी, जहा एक स्वर्ण-निर्मित अण्ड दण्ड नाम की गढी है तथा रत्नो से जडे हुए महल दीप्त रहते हैं ॥८६॥

जहाँ घर घर मे कुवा, वावडी एव विहार वगीचा है जिनके प्राकार स्वर्ण के वने है। उत्तम लोग उसमे भरे रहते है और (वह ऐसी लगती है) मानो इन्द्र की पुरी कैलाश हो ॥८७॥

वाइ – वापी–वावडी।

[८८–८९]

वंदिणि जण के हु देहि जु चाउ, नीयवतु गुणवाल जु राउ ।
सयल सरुउ अंतेउरु नारि, करहि राजु ते नयर मझारि ॥
विमल सेठ विमला सेठिणी, तहि कीरति महि मंडल घणी ।
विमलामती नंदनि सा किसी, रूप विसेषइ जिह उरवसी ॥

अर्थ —वदी जनो को जो [अपनी कीर्ति से] उत्साह प्रदान करता है उस नगरी का [चम्पापुरी का] राजा गुणपाल है जो नीतिवान है। उसके अन्त पुर की समस्त स्त्रियाँ रूपवती है ऐसा राजा नगर मे राज्य करता है ॥८८॥

उसी नगर मे विमल सेठ और विमला सेठानी है जिनकी कीर्त्ति मही मण्डल मे घनी है। विमलामती नाम की उनके जो लडकी है वह मानो रूप की विशेपता मे उर्वशी है।

नीय – नीति।

[९०]

वस्तु बंध

सौजि सुंदरी णयण पुत्तार।
लंतिय हंस गइ कीलमाण सरवर वइठी ।
खेलंती जलं पयड रूपरासि मइ दिठिय ॥

सहिय समाणिय तहो भणिय इम जंपइ सुतधारी ।
तासु रूव गुण वण्णियउ कइ रल्ह सुविचार ॥

अर्थ —उस सुन्दरी नयनाभिराम [आँखो की पुतली के समान] हँस गति लिये हुई, क्रीडा करती हुई, सरोवर [के तट] पर बैठी हुई और जल से खेलती हुई, प्रकट रूप राशि को मैंने देखा। उसकी सखियां और समवयस्काएँ भी उसके अनुरूप थी, ऐसा सूत्रधार ने कहा। "[तदन्तर] रल्ह कवि कहता है कि वह विचार करके उसके रूप और गुण का वर्णन करने लगा।

णयणपुत्तार – आँख की पुतली। कीलमाण – क्रीडमाण। पयउ – प्रकट। सहिय - सखिन्। समाणिय – समान+इक–समवयस्का।

[९१-९२]

मुंदडिय सहु कसु सोहइ पाउ, चालत हंसु [1] देउ तसु भाउ ।
जाणू थाणु विहितहि घणे, तहि ऊपरि नेउर वाजणे ॥
सवई वण्णु सोहइ पिंडरी, जणु छहि ते कुंथू पिंडरी ।
जंघ जुयल कदली ऊयरइ, तासु लंक [2] मूठिहि माइयइ ॥

अर्थ :—छल्लो से युक्त उसके पैर सुशोभित थे। उसकी चाल हँस की चाल का भाव प्रगट करती थी। घुटनो के नीचे के स्थान टिकोणे बहुत घने थे और उन पर बजने वाली नेवरियाँ थी।

उसकी पिण्डलियों में सभी वर्ण शोभित थे, मानो वे कुंथु (मनुष्य विशेष) की पिण्डलियाँ हों। उनके ऊपर कदली के (तने के) समान उसकी युगल जाँघें थी और उसकी कटि मुट्ठी में समा (आ) जावे ऐसी क्षीण थी।

कुंथु – एक पौराणिक राजा, मनुष्य विशेष।

१. हसु – मूलपाठ। २. लोक – मूलपाठ।

[९३–९४]

जणु हइ छति अणगहु तणी, सहइ जु रग रेह तहि घणी ।
नीले चिहुर स उज्जल काख, अवरु सुहाइ दीसहि काख ।।
चंपावण्णी सोहइ देह, गल कंदलह तिण्णि जसु रेह ।
पीणत्थणि जोव्वण मयसार, उर पोटी कडियल वित्थार ।।

अर्थ —वह (कटि) मानो कामदेव का छत्र थी और समस्त रग तथा घनी रेखाएँ उसमे थी । उज्वल एव नील वर्ण की रोमावलि थी जो अत्यन्त सुन्दर एव सुशोभित थी ।

उसका चपा पुष्प के रग का शरीर शोभित हो रहा था उसके उदर मे तीन रेखाएँ पडती थी । वह पीन (उन्नत) स्तनो वाली थी तथा (उसके स्तन) यौवन-मद से युक्त थे । उसके उदर की पेशियाँ कटिस्थल तक फैली हुयी थी ।

चिहुर ∠ चिकुर – केश – रोमावलि । पोटी ∠ पोहि – उदर पेशी ।

[९५–९६]

हाथ सरिस सोहहि आगुली, णह सु त दिपहि कु द की कली ।
भुव वल जतु कांटि जणु ठाणें, वण्णि सु रेख कविन्हु ते कहे ।।
इलोणी अरु माठी लीव, हरु सु पट्टिया सोइय गीव ।
कारिण कु डल इकु सोवनु मणी, नाक थाणु जणु सूवा तणी ।।

अर्थ —हाथो के समान ही उसकी अगुलियाँ सुशोभित थी । उनके नख कु द–कलिकाओ के समान चमकते थे । उसकी बलशाली भुजाएँ थी जो मानो (सिंह जैसे) उस स्थान पर जतु की काटकर लगाई हो । ऐसा उसकी सुन्दर रेखाओं का वर्णन कवियो ने किया है ।।९५।।

लावण्यपूर्ण और माठित (सुडौल) वह बालिका थी और एक हलकी पट्टि उसकी ग्रीवा मे थी। कानो मे स्वर्ण के एक-एक कुण्डल थे। तथा नाक मानो सुए (तोते) की जैसी थी।

माठी – माठित–वर्मित । लीव – वालक, वालिका ।

[९७–९८]

मुह मडलु जोवइ ससि वयणु, दीह चखु नावइ मियरणयरिण ।
जहि के हो वप चाले किररण, जणु रि डसरणी हीरा मरिण छिररण ।।
भउह मयरण धणु खचिय धरी, दिपइ लिलाट तिलक कंचुरी ।
सिरह माग [1] मोत्तिय भरि चलइ, अवरु पीठ तलि विरणी रूलई ।।

अर्थ —चन्द्रमा के वदन के ममान उसका मुख मण्डल दीखता था। वह मृग नयनी अपने दीर्घ नेत्रो को नीचे किये हुए थी। उसके शरीर से किसी न किसी प्रकार की किरणें (दीप्ति) निकलती रहती थी। उमके दाँत हीरामरिण की कांति के समान थे।

उसकी भौहे ऐसी थी मानो कामदेव ने धनुष चढा रखा हो। उसके ललाट का तिलक तथा हार (?) चमक रहे थे। सिर की माँग मे मोतियों को भरकर वह चल रही थी और उसकी पीठ के नीचे तक वेरणी हिल रही थी।”

कचुरी – कछुली–हार।

[९९–१००]

नाद विनोद कथा आगली, पहिरी [2] रयरण जडी कंचुली ।
इकु तहि अत्थि देह की किरणी, [3] अवर रलह पहिरइ आभररण ।।
जिसु तणु वाहइ दिठि पसारि, काम वारण तसु घालइ मारि ।
तिहु कौ रूपु न वण्णइ जाइ, देखि सरीर मयणु अकुलाइ ।।

१ मोग–मूलपाठ। २ मूलपाठ – पटि। ३ मूलपाठ – किररिण।

अर्थ —"वह सगीत विनोद एव कला में बढी-चढी थी तथा उसने रत्न-जटित कचुकी पहिन रखी थी। एक तो उसके शरीर की ही किरणें थी, फिर रल्ह कवि कहता है उसने (ऊपर से) आभूषण पहिन रखे थे ॥९९॥

जिसको भी वह एक बार दृष्टि फैला कर देखती थी उसे वह काम के बाणो से मार डालती थी। उसके रूप-सौन्दर्य का वर्णन नही किया जा सकता है, (क्योकि) उसके शरीर को देखकर स्वय कामदेव भी आकुल हो उठना था।

[१०१-१०२]

माल्हती विलासगइ चलइ, दरसन देखि कुमुणिवर ढलइ।
अइसी विमलमइ गुण आगली, धम्म बुधि सो भइ साभली ॥
हस गमणि सा पदमणि जाणि, सरवर दिठि सखी सिहु न्हाति।
रूप देखि सुर विभउ करइ, नरसुर लोइ सयलु पटतरइ [1] ॥

अर्थ —वह लीलापूर्वक एव विलास गति से चलती थी और उसका दर्शन (रूप) देखकर कुमुनि पिघल जाते थे। इस प्रकार की वह गुणो मे बढी-चढी विमलमती (नाम की) थी जिसकी भली वुद्धि धर्म की ओर थी ॥१०१॥

वह हस की सी चाल चलने वाली मानो पद्मिनी थी और वह अपनी सखियो के साथ नहाते हुये सरोवर मे दिखाई पडी। उसका रूप देखकर देवता भी विस्मय (आश्चर्य) करते थे और समस्त लोग नरलोक एव सुरलोक मे (उससे) तुलना करते थे ॥१०२॥

[१०३-१०४]

सुत्तधार कउ भयउ पसाउ, दीन्यो लाख दाम कौ ठाउ।
पाट पटोले दीने जाण, दिढ मनु किउ चित्त परवाणि ॥

१ पटतरे – मूलपाढ।

चित्तकार तवु लइयउ वुलाइ, पूत रूपु पडि लिखु निकुताइ ।
लिखतह कहिउ सरीरह ठवणु, भणइ सेठि लइ जाइ हे कवणु ।।

अर्थ —उस सूत्रधार को सेठ ने प्रसाद (पारितोषिक) दिया, एव एक लाख द्रव्य का उसने ठाउ (उपहार) दिया, उसे उस ज्ञानी ने रेशमी कपड़े दिये तथा अपने चित्त को प्रमाण (स्थिर) करके उसने (एक) दृढ विचार किया ।

उसी समय उसने चित्रकार को बुलाया (तथा कहा)—मेरे पुत्र के रूप का चित्र विना किसी कुताही (कमी-कसर) के लिखो। जव (चित्रकार ने) कहा कि शरीर का उसने चित्र उतार लिया है, तव सेठ (अपने स्वजनो से) कहने लगा "इसे कौन ले जावेगा ।"

दाम – द्रव्य, एक सोने का सिक्का । पाट – पट्ट–रेशम ।
पटोल – पट्टकूल–रेशमी वस्त्र । ठयण – स्थापना–चित्र, प्रतिकृति ।

[१०५–१०६]

विप्पु एक कउ आइसु भयउ, सो पड लइ चंपापुरि गयउ ।
भेटिउ विमलमती सा वाल, देइ आसीस पड छोडि दिखाल ।।
विमलमती पडु दीठउ जाम, गय विहलघल सधर पडि ताम ।
हार डोर जलु सोहहि अग, चंदन सिचि लई उछंग ।।

अर्थ—एक विप्र को आज्ञा हुई, वह पट (चित्र) लेकर चपापुरी गया । उस वाला विमलमती से उसने भेंट की तथा आशीर्वाद देकर चित्रपट को खोल कर उसने दिखलाया ।

विमलमती ने जब चित्रपट देखा तो वह विह्वलाङ्ग होकर धरा पर गिर पडी । उसके शरीर मे हार व माला सुशोभित हो रहे थे । उसे चदन से सीच कर सचेत कराया गया ।

पड – पट–चित्रपट । विहलघल –विह्वलाङ्ग–व्याकुल शरीर वाली ।

[१०७-१०८]

कि यहु ब्रह्मा कि चउ वयणु, किं यहु सकरु कि महमहणु ।
किं यहु रूव मयणु की खानि, किसु की कला चरीतइ आणि ।।
निसुनहि सेठि कहउ हउ विवरु, कहियइ सो वसतपुर नयरु ।
वसइ जीवदेउ कुटंब सजुत, तिहि जिणदत्त मनोहरु पूतु ।।

अर्थ —(जब सेठ ने यह चित्र देखा तो उसने कहा) "क्या यह ब्रह्मा है अथवा यह विष्णु है ? अथवा शकर है अथवा मधुसूदन कृष्ण है अथवा यह रूप एव काम (लावण्य) की खान है ? यह किसकी कला है जिसे हे दूत ! तू ले आया है ? ।।१०७।।

उस ब्राह्मण ने कहा, "हे सेठ सुनो मैं तुमसे विवरण के साथ कहता हूँ, उसे वसतपुर नगर कहते है । उस नगर मे जीवदेव सेठ सकुटुम्ब रहता है, उसका यह सुन्दर पुत्र जिनदत्त है ।" ।।१०८।।

महमहणु – मधुमथन–विष्णु, उपेन्द्र । रूव – रूप । तइ – तत्र, तदा–वहा, उम समय । चरी – चरीय–चरक–चर, दूत ।

[१०९-१११]

इहा हो तउ गयउ सुतधार, जाइ कही विमलामति नारि ।
तबहि बुलाइ सेठि मंतु[1] कीय, पट्टय वरण तुहारी धीय ।।
णिय परियणु तवु लइ हकारि, पूछइ सेठि मतु वइसारि ।
परियणु भणइ विमल अस कीज, विमलमति जिणदत्तहि दीज ।।
अहो कुटव तुम्ह नीकउ कियउ, इसवर बोल हम विगसइ हियउ ।
धीय रूवडी कहा सो कीज, सा पर अवस सजण घरि दीज ।।

अर्थ —(पुन उमने कहा) "जव यहा मे होकर सूत्रधार गया था,

1 मनु–मूलपाठ ।

उसने विमलमती नारी की बात (वसतपुर) जाकर कही थी। तब सेठ ने (सेठानी को) बुला कर मन्त्रणा की कि तुम्हारी लड़की को वरण करने के लिये वे (मुझे) भेजें ॥१०९॥

यह सुनकर सेठ ने अपने परिजनों को बुला लिया और उन्हें बिठाकर उसने मन्त्रणा पूछी। परिजनों ने कहा "हे विमल, ऐसा (ही) करो; विमलमती को जिनदत्त को दे दो ॥११०॥

सेठ ने कहा, "हे कुटुम्बियों, तुमने अच्छा किया, तुम्हारे इस श्रेष्ठ वचन से हमारा हृदय विकसित हो रहा है। दुहिता रूपवती हो तो क्या किया जाय? हो न हो उसे अवश्य किसी सज्जन के घर दे दिया जाए" ॥१११॥

[११२-११३]

चवइ सेठि तुव देण्ण सभाइ, नीकौ लगनु विवाहहु आइ।
धीय रूप पुणु पट्ट लिहाइ, कापरु पहिरि विप्पु घर जाइ॥
विप्पह जाइ भेटियउ साहु, सेठि जीवदेउ हसतिनचाहु।
तुमह काजु हम कियउ जु बहुत्त, धण्ण सुलखणु तुहारउ पूतु॥

अर्थ :—तब सेठ (प्रस्ताव स्वीकार करते हुये) दैन्य स्वभाव से कहने लगा "अच्छी लगन में आकर व्याह करलो।" फिर (उसकी) लड़की का रूप एक पट्ट पर लिखा कर और कपड़े पहन कर वह ब्राह्मण (वापस) घर गया ॥११२॥

(घर) जाकर ब्राह्मण ने सेठ से भेंट की। सेठ जीवदेव उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। ब्राह्मण ने कहा "मैंने तुम्हारा कार्य बहुत (प्रकार से) किया। तुम्हारा सुलक्षण पुत्र धन्य है ॥११३॥

देण्ण :: दइण्ण – दैन्य।

[११६-११७]

तउ जिरणदत्तह लइय हकारि, पूछइ सेठि बात वइसारि ।
निसुरण पूत हउ अक्खउ तोहि, इहु लिह लेख वाचि किन मोहि ॥
भगति तुहारउ कुंटब कुसलात, अरु छइ लिखी लगुरण की बात ।
अति रुवडी नयरण सुतारि, दीठी लिखी विमलमति नारि ॥

अर्थ :—फिर उसने जिनदत्त को बुलाया तथा (पासमें) बिठला कर वह बात पूछने लगा पुत्र ! सुनो मैं तुमसे एक बात कहता हूँ, निश्चित कर के इस लेख को पढ़ कर मुझे क्यों न सुना दो ॥११६॥

(पुत्र ने पढ़ कर कहा,) पत्र में भक्ति, तुम्हारे और (अपने) कुटुम्ब की कुशल-क्षेम लिखी है तथा उसमें लग्न (विवाह) की बात भी लिखी

हुई है। (इसके अनन्तर) उसने अत्यधिक रूपवती तथा सुन्दर तारिकाओं के नेत्रवाली विमलमती नारी को (पट्ट पर) लिखा (चित्रांकित) देखा ।।११७।।

[११८-११९]

पुणु जइ देखइ नारि गुणंग, काम वाण घाइंय सव्वंग ।।
अतुल महावल साहर धीर, गउ विहलंघल तासु शरीर ।।
भणइ सेठि हमु हुइहइ सोगु, करहु विवाह हंसइ जिण लोगु ।
जे र विजाहरि रूवहि रासि, अवसि करमि तोहि घरि दासि ।।

अर्थ—जब उसने गुण सम्पन्ना उस स्त्री (विमलमती) को देखा तो उसके सर्वांग को काम वाण ने वेध दिया। वह अतुल महा बलवान एवं धीर साहूकार था किन्तु (उस नारी के चित्र को देखते ही) वह शरीर से विह्वलाङ्ग हो गया।

सेठ ने कहा "(हे पुत्र, तुम्हारी इस दशा से) हमें तो दुःख होगा। तुम विवाह करो, जिससे लोग हसी नही करें। यदि वह विद्याधरी तथा रूप की राशि है तो भी उसे अवश्य ही तेरे घर की दासी बनाऊँगा" ।।११९।।

साहर ∠ साहार ∠ साधुकार ∠ शाहूकार—महाजन।

[१२०-१२१]

तवहि सेठि घरि उछउ कियउ, सहु परियणु न्योते आइयो ।
पंच सबद वाजेवि तुरंतु, वहु परियणु चाले सु वरातु[1] ।।
एकति जाहि सुखासण चढे, एकतु चाखर भोडे तुरे ।
एकनु सराजित सिगरी घरी, एकणु साजि पलाणी चरी ।।

अर्थ—तब सेठ ने अपने घरमे उत्सव किया। (उसमे) सभी परिजनों

१. वरात – मूलपाठ।

ने निमन्त्रण पाकर भाग लिया। शीघ्र ही पाच प्रकार के बाजे बजने लगे तथा बहुत से परिजन बारात मे चले ॥१२०॥

कोई बराती सुखासण (पालकी) पर चढे जा रहे थे तथा कोई घोडो पर काठी रख करके चले। कोई शीघ्र जाने वाले वाहनो पर चढे और किसी ने ऊँटो पर पलाणा सजाया।

उछउ – उत्सव। परियणु – परिजन। सुखासण – एक प्रकार की पालकी।

[१२२-१२३]

एकति डाडी डोला जाहि, एकति हस्त चढे विगसाहि ॥
एकति जाहि विवाहणु वइठ, सवु मिलि चपापुरिहि पइठ ॥
चपापुरि कोलाहलु भयो, आगइ होनि विमलु आइयो।
मिलिउ लोगु भउ हल्ल कल्लोलु, उपर परते देहि तवोलु ॥

अर्थ —कोई डांडी के डोले मे चल पडे। कोई हाथी पर चढे हुए प्रसन्न हो रहे थे। कोई विमानो मे बैठ कर जा रहे थे और वे इस प्रकार सब मिलकर चम्पापुरी की ओर चले ॥१२२॥

चपापुरी मे कोलाहल मच गया। विमल सेठ अगवानी के लिये आगे आया। लोग जब आपस मे मिले तो शोरगुल एव प्रसन्नता छा गयी और वे एक-दूसरे को तावूल देने लगे ॥१२३॥

डोला – दोल। हल्ला –हल्ला। तवोल – ताम्बूल–पान।

[१२४-१२५]

भणइ विमलु तुम्हि असो करहु, कुमरु वरात सवु जेंवण चलहु।
उठहु सुहड जेंवहु जिवणार, पुनि तौ होइ लगुण की वार ॥

चउरी रचीय हरिए वास, अरु तह थापे पुण्ण कलास ।
गावहि गीतु नाइका सउकु, चउरी पूरिउ मोती चउकु ।।

अर्थ —विमल सेठ (परिजनो से) कहने लगा, आप ऐसा करें कुमार एव वरात (को लेकर) सव जीमने चलें । हे सुभटो, उठो और जीमणवार जीमो क्योकि फिर लग्न का समय हो जावेगा ।।१२४।।

हरे वाँस की चँवरी (वेदिका) वनायी गयी और वहाँ पुष्प कलश स्थापित किए गए । स्त्रियाँ उत्साहपूर्वक गोत गाने लगी तथा उन्होने चँवरी के वीच मोतियो का चौक पूरा ।।१२५ ।।

जेंवरण – जीमन । सुहड – सुभट । लगुरण – लग्न । पुण्ण – पुण्य, पवित्र । नाडका – नायिका–स्त्रियाँ । सउका – स+उत्क – उत्साहपूर्वक ।

[१२६–१२७]

भयो विवाह विमल कसु किण्ण, अगनिउ दाम[1] दाइजी दिण्ण ।
समदी विमलमती विलखाइ, लइ विवाह वसंतपुरु जाइ ।।
घरह जाइ ते कहा कराइ, चडिवि अवास भोग विलसाइ ।
राज करत दिनु केतकु गयो, एतहि अवरु कथंतरु भयो ।।

अर्थ '—विवाह सम्पन्न हुआ तथा विमल सेठ ने दहेज मे अगरिणत द्रव्य दिया । उसने कुमारी विमलमती को विलखते हुए विदा किया अथवा समधी (व्याही) विलखती हुई विमलमती को लेकर विवाह के पश्चात् वसन्तपुर के लिए रवाना हो गये ।।१२६।।

घर जाकर उन दोनो ने क्या किया । वे अपने महल मे रह कर भोग भोगने लगे । इस प्रकार राज्य करते हुए (आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए) कितने ही दिन व्यतीत हो गये । इसके पश्चात् कथा का प्रवाह दूसरी ओर मुडा ।

१ मूलपाठ – दाम ।

कसु – कीदृश। दास (दाम) – द्रव्य–सोने का सिक्का–सेवक। समद् – विदा करना।

[१२८–१२९]

चडे सुखासरण जात विहार, भई भेट लंपटहु जुवार।
आइ कुमारी वोलियो वोलु, अहो जिनदत्त इकु खेलहि खेलु॥
णं ण कारु करत वइसरइ, सूनौ दाउ जुवारिउ धरइ।
पढरण ननादी पूर हुवा, आप आपु कू भासहि तिया॥

अर्थ –एक दिन पालकी में बैठ कर चैत्यालय को जाते हुए जुवारियों एव दुराचारियो से (जिनदत्त की) भेट हो गयी। उन्होने (जिनदत्त को देखकर) कुमारी आ रही है, इस प्रकार वचन कहे और फिर कहा "अहो जिनदत्त (आओ) हम एक खेल खेले' ॥१२८॥

मना करते रहने पर भी वह वहाँ बैठ गया। और तब जुवारियो ने एक सूना दाव लगाया। (पासा) खेलने पर उनकी इच्छा पूरी हुई तथा वे अपने-अपने को तीन अंको वाला कहने लगे ॥१२९॥

तिया – पाँसे की वह ढलान जिसमें प्राप्त अक ३ के हों।

द्यूत क्रीडा

[१३०–१३१]

खेलंत भई जिरणदत्तहि हारि, जुवारिन्हु जीति पच्चारि।
भरगइ रल्हु हँमु नीहौं खोडि, हारिउ दव्वु एगारह कोडि॥
हारि दव्वु घरि चाहइ जारिण, जुवारीन्ह रु दीनी आरग।
हम विणु दीने जइ घर जाहु, तौ तुम्ह जीवदेउ वघ करहु॥

अर्थ –खेलते-खेलते जिनदत्त की हार होती गयी और (अन्त मे)

जुवारियों ने ललकार कर उससे दाव जीत लिया। रल्ह कवि कहता है कि जुवारियो ने कहा, कि हमारा इसमे कोई दोप नही है" और इस प्रकार जिनदत्त ग्यारह करोड द्रव्य वहाँ हार गया ॥१३०॥

हारने के पश्चात् जव जिनदत्त ने घर जाना चाहा तो जुवारियो ने उसे सौगध दिला दी और कहा कि यदि हमे विना दिये घर जाओगे तो तुम जीवदेव का वध करोगे ॥१३१॥

पच्चारि – प्रचारय्–ललकारना। मूलपाठ–करउ

[१३२–१३३]

सो जिणदत्त अगोटिउ तहां, पठवउ जण रु भडारी पहां।
जाइवि तेण कही यह वात, देहु पदारथ जाहु तुरंत॥
भंडारिउ कोपिउ पभणेइ, जूवा हारे को धणु देइ।
देइ सेठि त रु देखहु मागि, मइ भंडारह विलाइवी आगि॥

अर्थ —उसके पश्चात् जिनदत्त तो वही रुक गया और उसने एक आदमी अपने भडारी के पास भेजा। उसने वहाँ जाकर सारी वात कही और कहा कि शीघ्र ही वहु-मूल्य रत्नादि दो जिससे वह जावे ॥१३२॥

भडारी क्रोधित होकर कहने लगा कि जुए मे हारने वाले को कौन धन देता है ? यदि सेठ देवे तो उससे माग करके देखलो। मैं (तो) भण्डार को अग्नि मे नष्ट नही होने दूँगा ॥१३३॥

[१३४–१३५]

जणु उठि गयउ विमलमति पास, जिणदत्तह छइ पडिउ उपासु।
णितुणि वात नियमणि आकुली, आफी रयण जडित काचुली॥
माणिक रतन पदारथ जडी, विचि विचि हीरा सोने घडी।
टए पासि मुत्ताहल जोडि, लइ हइ मोलि सु णव धन कोडि॥

अर्थ —वह व्यक्ति फिर विमलमती के पास उठ कर चला गया और कहा कि "जिनदत्त को उपास करना पड गया है।" यह वात सुन कर वह अपने मन मे व्याकुल हुई तथा उसने अपनी रत्न-जड़ित कचुकी उसे दे दी ।।१३४।।

वह कचुकी माणिक्य एव रत्नो आदि पदार्थो से जडी हुई थी तथा वीच-वीच मे हीरे एव सोने से घडी हुई थी। इसमे पास-पास मे मोती जडे हुए थी। तथा वह नौ कोटि द्रव्य मे मोल ली गयी थी ।।१३५।।

[१३६-१३७]

जणु लइ गयउ काचुली तहां, छइ जिणदत्त अघोटिउ जहां ।
हारिवि दव्व काचुली आपि, तुणु घर जाइवि पडिउ संतापु ।।
पडिउ संतापु भयइ विलखाइ, वापु विढंती कुपुरिषु खाइ ।
मो समु अउर कुपूत न भयो, तात अर्थ मइ हु णु लयो ।।

वह व्यक्ति कचुकी लेकर उसी स्थान पर गया जहाँ पर जिनदत्त रुका हुआ था। जिनदत्त हारे हुये द्रव्य (के रूप) मे कचुकी अर्पित कर घर चला गया और फिर वहाँ सताप करने लगा ।।१३६।।

वह दुखित होकर विलाप करने लगा और कहने लगा कि पिता की कमाई (इस प्रकार) कु पुरुष ही खाता है। मेरे समान दूसरा कौन कुपुत्र होगा जिसने पिता के धन को इस तरह हारने के लिये लिया हो ।।१३७।।

अघोटिउ – अगोटना, रोकना, छिपाना। आप् – अर्पय्-अर्पित करना। वापु – पिता। विढती – कमाई हुई पूँजी।

[१३८-१३९]

धीर वीर जे पुरिस गहीर, विढवहि अर्थ जाहि पर तीर ।
विढइ अर्थ जिण भुवेवा करहि, ते पुरिस किन जाम ति मरहि ।।

उद्दिमु करहि जे साहसु करहि, धीरे होइ दिसंतर फिरइ ।
विढइ लच्छि जे पुरवहि आस, जाए गुणि यहि दस मास ॥

अर्थ —जो पुरुष धीर, वीर एव गम्भीर होते है वे परदेश जाकर धन कमाते है । जो धन कमा करके उसकी वृद्धि नही करते है वे पुरुष क्यों नही जन्म ग्रहण करते ही मर जाते है ॥१३८॥

जो साहस करके पुरुषार्थ करते है तथा धीरतापूर्वक देशान्तरों में फिरते है, तथा जो लक्ष्मी कमा कर आशा पूर्ण करते है ऐसे ही लोगों को दस मास तक माता के गर्भ में रह कर उत्पन्न होना उचित मानना चाहिए ॥१३९॥

[१४०–१४१]

ना विढवहि न दिसंतरु फिरइ, दान धरमु उपगार नु करहि ।
दिहिं न किसहिं पातकी लोणु, वइठे राखहि घर के कवणु[1] ॥
गासत घर बैठे सु खियाहि, पाणिऊ पिवहि चार चउ खाहि ।
आंसु पराई करइ जू मुयउ, सोभित न पूतु गरभ ही मुयउ ॥

अर्थ —जो न धन कमाते है और न किसी देशान्तर मे जाते हैं तथा न दान, धर्म एव परोपकार करते है । ऐसे पापी किसी को नमक भी नही देते है, और वे केवल घर के कोने मे बैठ कर रखवाली करते है ॥१४०॥

बैठे बैठे घर को नष्ट करते हैं और क्षय को प्राप्त होते है । उनका कार्य केवल पानी पीना तथा चार २ बार खाते रहना है । जो दूसरो की आशा करते हैं वे मरे हुये हैं । ऐसा पुत्र (भी) शोभित नही होता, वह सो मानो गर्भ मे ही मर गया हो ॥१४१॥

दिसतर – देशान्तर । उपगार – उपकार । लोणु – लवण, नमक । चार चउ – चार बार ।

[१४२–१४३]

एते खणि जइ आयो पूव, कउण पूत तुम्ह पडिउ संतापु ।
संप (इ) पूत सुपत्तह दीज, जूवा हारि होणि न हु कीज ।।
जूवा हारिवि खोवहि दव्वु, तिन्ह कहु पूत हसइ जणु सव्वु ।
वडइ खखदि लछि पाइयइं, सा किमु पूतु अपहि लायइइ ।।

अर्थ —उसी क्षण जव उसका पिता ,आया, तो उसने कहा "हे पुत्र, तुम कौन से दुख मे पडे हो ? सपत्ति को सुपात्र को देना चाहिए किन्तु अव जुए मे हार कर चिन्ता न करनी चाहिए ।।१४२।।

जुए मे हार कर जो द्रव्य खोता है, हे पुत्र ! उस पर सभी जन हँसते हैं । वडी कठिनाई से लक्ष्मी पाई जाती है उसे हे पुत्र ! किस प्रकार कुमार्ग मे लगाया जाय ? ।।१४३।।

जइ – यदा – जव । पूव – पितृ – पिता । सुपत्त – सुपात्र । होणि – चिन्ता । खखदि – कठिनता । अपह – अपथ – कुमार्ग ।

[१४४–१४५]

दीजइ हीण दीण कहु पूत, धम्मु काजि वेचियइ बहूत ।
कँइ वालकहु दीज, अउर वछ सपय कह कीज ।।
इमु समझाइ जिवायौ जाम, जिणदत्त भयो परहस ताम ।
देखि रल्ह तिस कौवि उपाउ, घर छाडण कौ करै उपाउ ।।

अर्थ —"हे पुत्र ! हीनो (अपगो) एव दीनो को देना चाहिए और धर्म कार्य के लिए वहुत कुछ (यदि आवश्यक हो तो) वेच भी डालना चाहिए। तथा (चाहे उसे) किसी वालक को दे दिया जावे किन्तु हे वत्स ! सपत्ति का और क्या किया जावे" ।।१४४।।

इस प्रकार अपने पुत्र को समझा कर जव उसनें उसे जिमाया उस

समय जिनदत्त प्रसन्न हो गया। (किन्तु) रल्ह कवि कहता है वह अवसर देख कर घर छोड़ने का कोई उपाय करने लगा ॥१४५॥

[१४६-१४७]

झूठउ लेखि सुसर कहु लिखइ, फुणि बुलाइ जण एकह कहइ ।
कहिउ सेठिस्यों जाइवि तेण, हौं जिणदत्तह आयउ लेण ॥
तउ जिणदत्तह लेइ हकारि, पूछइ मंतु सेठि वइसारि ।
जइयह पूत तत इसउ कीज, नातरु घर पठइ जणु दीज ॥

अर्थ :—(तदनन्तर उसने) अपने श्वसुर का एक झूठा लेख (पत्र) लिखा और एक व्यक्ति को बुला कर कहा, "सेठ के पास जा कर यह कहो कि मैं जिणदत्त को लेने आया हूँ ॥१४६॥

फिर सेठ ने जिनदत्त को बुलाया और अपने पास बैठा कर मन्त्रणा की और पूछा "यदि पुत्र, जाना है तो ऐसा करो, नहीं तो इस व्यक्ति को घर भिजवा दो" ॥१४७॥

[१४८-१४६]

तौ जिणदत्त भणइ कर जोडि, हम कहु तात देहु जिण खोडि ।
आपु मतै हौं कैसे चलौ, जो तुम पिता कहहु सौ करौ ॥
पिता मतइ जिणदत्त चलाइ, संवल वहुलकु देइ अघाइ ।
विमलामती चली तिह ठाइ, सासु सुसरु कइ लागइ पाइ ॥

अर्थ —तब जिनदत्त हाथ जोड़ कर वोला "पिताजी हमे कुछ दोष न दो। मैं अपने मतानुसार कैसे चलूंगा ? जो आप हे पिता कहेगे मैं वही करूंगा" ॥१४८॥

पिता से आज्ञा लेकर जिनदत्त चला गया उसके साथ मार्ग के लिये वहुत

सा सामान वाध दिया गया। विमलामती भी सास श्वसुर के पाव लग कर उसी स्थान को चली ।।१४६।।

[१५०-१५१]

जणे पंचदश गोहिणि चले, वेगि मज्झि चपापुरि मिले ।
भणइ विमल तुम्ह नीकउ कियउ, आणि भिटाइय म्हारिय धीयउ[1] ।।
दिन दोइ चारि तिहा ठा रहइ, पुणु उवाउ चलिवे कौ करइ ।
सो जिणदत्तु विमलमति कंतु, नंदणवणु चल्लिउ वियसतु ।।

अर्थ .—(जिनदत्त के) साथ मे पन्द्रह आदमी और चले और शीघ्र ही चपापुर आकर उन्होने पडाव किया। विमल सेठ ने उससे कहा "तुमने अच्छा किया जो यहा लाकर मेरी लडकी से भेंट करादी" ।।१५०।।

दो चार दिन तो वहा वह ठहरा लेकिन फिर चलने का उपाय करने लगा। वह विमलमती का पति जिनदत्त विकसित होता हुआ नदनवन को चला ।।१५१।।

गोहिणि – साथी। उवाउ – उपाय

१ धीयो–मूल पाठ

[१५२-१५३]

देखित वासुपूज्ज कौ भवणु, पंचमि ताहि करायौ न्हवणु ।
अजणु मूलु लई तं जोइ, भयो परछन्नु न देखइ कोइ ।।
पुणिरु असीस देइ सोघणी, फूलह माझि होंति अंजणि ।
सिरह असीस आभडी जाम, विमलामती न देखइ ताम ।।

अर्थ —(उस नदनवन मे) वासुपूज्य स्वामी का मन्दिर देख कर जिनदत्त ने पचामृत अभिषेक कराया। उसने अजनी मूल (एक प्रकार की

जडी) को देखकर लिया—(उसकी सहायता से) वह प्रछन्न हो जाता और उसे कोई न देख पाता था ।।१५२।।

फिर उसने (सभी को) खूब आशीर्वाद दिया तथा वह फूलों के मध्य होने वाली पराग (रुप) हो गया । जब (विमलमती) के शिर पर (हाथ रख कर) उसने आशीष दी, तो विमलमती भी उसे नहीं देख सकी ।।१५३।।

पचमि – पचामृत

वस्तु बंध

[१५४]

पुणुवि सिर रूधित्त अंजणीया ।
ज्झत्ति पछण्णु भयउ, सिग्घु सोवि दसपुरि पइठिउ ।
ता रडियउ विमुलमई, जा न कंतु नियं नयणु दिठियऊ ।।
छडि इकल्ली जिणभुवणि, गउ पहु कारिणि कवण ।
पिय विऊय हुय रल्ह कइ, रोवइ हंसागमणि ।।

अर्थ —जिनदत्त ने फिर सिर पर अजनी रख ली जिससे वह झट प्रछन्न हो गया और शीघ्र ही दशपुर पहुँच गया । जब उसने अपने स्वामी को अपनी आखो से न देखा तब विमलमती (रोने) लगी । "मुझे जिन मदिर मे अकेली छोड कर मेरा स्वामी किस कारण से चला गया" रल्ह कवि कहता है कि पति से विमुक्ता होकर वह हँसगामिनी रोने लगी ।

ज्झत्ति – झटिति, झट, शीघ्र । सिग्घु – शीघ्र । विऊय – विमुक्त ।

अर्द्ध नाराच

[१५५–१५६]

हंसागवणी चंदावइणी, करइ पलाव ।
मोही आगइ देखत पेखत, कत गयउ नाह ।।

धाव धूपइ हियडा कोपइ, मणुग्र रडइ।
हा हा दइया काहोभइया, पिउ पिउ पिउ कराइ ॥
आयउ मरणू णाही सरणू, साइ कहा कराऊ।
कंठारोहणु वालि हुवासणु, झंपा देइ मराऊ ॥
काठउ कीयउ कैसे जीवउ, पिय विणु तेंहि ।
हाइ वाइ गुसइ सहि, छाडि कति गयउ कंत मोहि ॥

अर्थ —वह हंसगामिनी और चन्द्रवदनी (विमलमती) प्रलाप करने लगी। "मेरे आगे मे देखते देखते, हे नाथ, आप कहां चले गये।" वह दौड धूप करती है। उसका हृदय कुपित हो रहा है तथा मन रुदन कर रहा है। हा हा देव, क्या हो गया ? (इस प्रकार रटते हुये) वह पिउ, पिउ करने लगी ॥१५५॥

"(अव) मेरी मृत्यु आ गयी है, किसी का शरण नही है, अव क्या उपाय करु ? कठ अवरुद्ध हो रहा है, क्या अग्नि जला कर और उसमे कूद कर मरजाऊँ ? तुमने कष्ट दिया है हे पति ! तुम्हारे विना कैसे जीऊँ ? हाय मेरे स्वामी कहा छोड कर चले गये ॥१५६॥

काठ – कट्ठ – कष्ट। साइ – साति – उपाय।

[१५७]

चौंदिसि जोवइ धाहहि रोवइ, कहा कियौ करतार।
वेलि चडती पडिल्धडती, गउ सामी अंतराल ॥
भई स दुखी काला मुखी, सासू सुसरे माइ।
जिणदत्त गुसाईऊ अप्पाणउ, सायउ चल्ली इवहि गवाइ ॥
तसु कौ कतू सो जिणदतू, तिसकौ सुनहु विचार।
एकल्लउ गइयउ सो त्तु, भयउ दसपुर वारि ॥

अर्थ —चारो दिशाओं मे वह देखती है तथा धाड मार कर रोती है,

परमात्मा, तूने यह क्या किया ? चढती लता को गिराकर स्वामी अतराल (बीच) मे ही चले गये। अत्यधिक दुखित हुई तथा सास श्वसुर एव माता (के सामने) वह मलिन मुख वाली हो गई। जिनदत्त गुसाई को जो अपने स्वामी थे, उन्हे मै इस प्रकार गवा चली। अब उसका स्वामो जो जिनदत थे उसके बारे मे सुनिये। वह जो अकेला गया था वह दशपुर के द्वार पर जा पहुँचा ॥१५७॥

चौपई

[१५८-१६०]

विमलमति जिणहरु निरु रहइ, पिय विवोय सो कठुवि सहइ ।
इदिय दमइ सीलु पालेइ, णमोयार णिय चित्त् गुणेइ ॥
जीवदेव नदनु नियकंतु, जिणवरु वंदइ परिहरि तंदु ।
जुवा खेले परिहसु भयो, मिमि संघात दसपुरु गयो ॥
दसपुर पाटण कइ पइसार, वाडी देखतु भई वडवार ।
वृष असोक कैउ दि गऊ जहा, खणु इकु नीद विलंव्यो तहा ॥

अर्थ —विमलमती निश्चित रूप से जिन मन्दिर मे रहने लगी। पति के वियोग मे वह कष्ट सहन करने लगी। इन्द्रियो का दमन और शील-व्रत का पालन करने लगी तथा सदैव णमोकार मत्र का चित्त मे स्मरण करने लगी ॥१५८॥

जीवदेव का पुत्र मेरा पति है। मन्दिर की वदना करते समय मुझे छोड कर चला गया है। जुवा खेलने से (उसका) जो परिहास हुआ उसी चोट के कारण वह दशपुर चला गया है ॥१५९॥

[उधर जिनदत्त को] दशपुर नगर के प्रवेश द्वार पर उसके बगीचे देखते २ बडा समय हो गया। वह अशोक वृक्ष की ओट मे गया, वहाँ उसने एक क्षण (थोडी देर) नीद मे विश्राम किया ॥१६०॥

[१६१-१६२]

चढिउ सुखासणु सायरदत्तु, आयउ जहि सोइ जिणदत्तु ।
जण ए (कइ) पूछियउ उठाइ, अहो वीर तू सोवहि काइ ।।
णियमणि वीर राइ पयपाइ, तो जिणदत्तु भणइ विहसाइ ।
हउं तहु अछउ निठाले ठवण, तुम्ह तौ आए कारण कवण ।।

अर्थ —(इतने मे ही) सुखासन (पालकी) पर बैठ कर वहाँ सागरदत्त आया, जहाँ वह जिनदत्त सो रहा था । (उसके) एक जन (सेवक) ने उसको उठा कर पूछा "हे वीर ! तू क्यो सो रहा है ।।१६१।।

अपने मन मे वीर का राज पद प्राप्त करके वह जिनदत्त हस करके बोला "मैं तो निठल्ली स्थिति का हूँ, तुम यहा किस कारण आये हो ?" ।।१६२।।

[१६३-१६४]

हाथि जोडि तौ नाइकु भणइ, हू आयौ वाडी देखणइ ।
तउ जिणदत्त भणइ वियसाइ, पुर की वाडी दीसइ काइ ।।
कारणु स कौन केम गह गही, मुणिउ न सूकि जेमु यह रही ।
धनु परियणु मो घरह वहुतु, पर पथी घर नाही पूतु ।।

अर्थ —हाथ जोड कर तब नायक (सागरदत्त) ने कहा "मैं वाडी (वगीचा) देखने के लिये आया हूँ ।" जिनदत्त तब विकसित हो (हसकर) कर कहने लगा "तुम्हे पुर की वाडी मे क्या दिख रहा है ?" ।।१६३।।

कौन (क्या) कारण है ? किस प्रकार यह आह्लाद है ? यह सूखी वाडी कैसे हरी हो गई यह मैं नही जान पाया । मेरे घर मे धन और परिजन तो वहुत है-किन्तु हे पथिक ! पुत्र नही है ।।१६४।।

वियस – विकम् – विकास करना ।

[१६५-१६६]

तउ जिणदत्त वात हसि कहइ, हउ जाण ... जहि सूको अहइ ।
तोहि निपुंस्सकु जंपइ लोगु, ताहि अमरउ रहिउ करि सोगु ।।
भणइ वीरु जइ कहिउ करेहि वाडी सयल भुगति जइ देहि ।
फूलहि अंब नीव कचनार, सहले करि आफउ सइहार ।।

अर्थ :—फिर जिनदत्त हस करके वात करने लगा, मैं तो सूखी (वाड़ी) ही जानता हूँ। लोग तुम्हे नपुंसक कहते है और इसीलिये यह आम्र वाटिका शोक कर रही है ।।१६५।।

पुन. उस वीर (जिनदत्त) ने कहा "यदि आप मेरा कहना करें तो सपूर्ण वाडी भुक्ति (भोजन फल) देने लगे; आम, नींबू, कचनार के पेड़ों पर फूल आ जावे तथा मैं सहकार को सफल (फलयुक्त) करके अर्पित करूं" ।।१६६।।

अमरउ (अमराउ) – आम्रराजि – आम्र वाटिका

उद्यान-वर्णन

[१६७-१६८]

जइ तू वाडी करहि सुवास, तौ जिणदत्त हूं तेरउ दास ।
करहि संत जइ आवइ तोहि, निहचै राजु करहि घरि मोहि ।।
जो वाडी हूई थी मइल, अठविह पूज रई तहि सयल ।
पुष्प विडे जे उकटे गए, जिण गंधोवइ सिचण लिए ।।

अर्थ —सेठ ने कहा "यदि तू वाडी को सुवासित कर दे तो हे जिनदत्त ! मैं तेरा दास हो जाऊं। यदि तुझे (कुछ) आता हो, तो (मेरा यह अनिष्ट) शांत कर और मेरे घर मे तू निश्चय राज्य कर ।।१६७।।

जो वाड़ी मलिन हो गयी थी वहाँ अब सब ने अष्ट प्रकार से पूजा

की। पुष्प के जो विटप (वृक्ष) पहिले उकठ (सूख) गये थे, उनका जिन भगवान के गंधोदक से वह सिंचन करने लगा ॥१६८॥

[१६९-१७०]

जो असोक करि थक्किउ सोगु, अन पर परिलहि दीनउ भोगु ।
जो छुउ कसिर रहिउ केवडउ, सिंचिउ वीर भयो रूवडउ ॥
जे नालियर कोपु करि ठिए, तिन्हइ हार पदोले किए ।
जे छे सूकि रहे सइकार, तिन्हु अंकवाल दिवाए वाल ॥

अर्थ —जो अशोक वृक्ष पहिले शोक कर (से) थक रहा था, उस पर (गधोदक) पड़ते ही भोग मे रखने योग्य हो गया। जो केवड़े का पौधा पहिले कृश हो रहा था, क्षीर से सिंचित होने के पश्चात् वह सुंदर हो गया ॥१६९॥

जो नारियल क्रोध किए हुए खडे थे ? उन्हे अब हरे एव मजबूत कर दिये। जो आम पहिले सूख रहे थे उन्होने अक पाली मे अब मजरिया दी ॥१७०॥

कसिर – कसिट – कृष्ट । अकवाल – अकपाली ।

[१७१-१७२]

नारिग जवु छुहारी दाख, पिडखजूर फोफिली असंख ।
जातीफल इलायची लवग, करणा भरणा कीए नवरग ॥
काथु कपित्थ वेर पीपली, हरड वहेड खिरी आविली ।
सिरीखंड अगर गलींदी धूप, णरहि नारि तहि ठाइ सरूप ॥

अर्थ —नारगी, जामुन, छुहारा, दाख, पिडखजूर, असख्य पूगफली (सुपारी), जायफल, इलायची, लोग, करणा तथा भरणा के वृक्षो ने नया रग कर लिया ॥१७१॥

वहाँ जो कत्था, कैथफल, वेर, पीपल, हरड, वहेडा, खिरणी, इमली,

श्रीखंड, अगर और गलौंदी धूप के वृक्ष थे, वे सुन्दर नर-नारी के समान ही वहाँ खडे थे। ॥१७२॥

[१७३-१७४ [

जाई जूहि वेल सेवती, दवणो मरुवउ अरु मालती।
चंपउ राइचंपउ मचकुंद, कूजउ वउलसिरो जासउदु॥
वालउ नेवालउ मंदारु, सिंदुवार सुरहो मंदार।
पाडल कठपाडल घणहूल, सरवर कमल वहुतक हूल।

अर्थ —जाति, यूथिका, वेला, सेवती, दवणा मरुआ तथा मालती, चंपा, रायचंपा, मुचकुंद, कुब्जक मोलसिरी तथा जपापुष्प ॥१७३॥

बाला, निवारिका, मंदार, सिंदुवार, सुरभित मंदार, पाडल, कठपाडल, गुडहल तथा तालाब मे (खिले हुए) कमलो मे (भ्रमरादि का) बहुतेरा हल्ला (शब्द) होने लगा ॥१७४॥

वउलसिरी – बकुलश्री – मोलसिरी। सुरही – एक प्रकार की घास।

[१७५-१७६]

अंवराउ फल लीयउ असरालु, कोइल शब्द कियो वंवालु।
उवहिदत्त तहि कहा कराउ, पाइ लागि पुणु घरि लइ जाइ॥
उदहिदत्तु घरि गउ जिणदतु, धर्मपुत्त करि ठयउ तुरंतु।
तिस हित सुख अखंड सरीर, जो इह वणिज जाण पर तीर॥

अर्थ —(अब) अमराव (आम्र वाटिका) ने निरंतर (सघन रूप से) फल धारण किए, कोयलों ने जोरशोर का शब्द किया। तब सागरदत्त ने क्या किया कि पैरो पड़ कर वह उसे घर ले गया ॥१७५॥

जब जिनदत्त सागरदत्त के घर गया तो सागरदत्त ने उसे तत्काल

धर्म पुत्र कह के मान्यता दे दी। उसके शरीर सुख के लिये पूर्ण व्यवस्था कर दी ताकि वह समुद्र पार व्यापार के लिये न [जावे] ॥१७६॥

अवराउ – आम्रराजि। असरालु – निरतर। ववालु – द्वन्द्व+आलु – जोर शोर का।

[१७७–१७८]

एतहि खरिण वरिणवर सामहहि, ता जिरणदत्त हियउ गहगहइ।
हाथ जोडि पुरण पूछइ बात, हमहू वरिणज पठावहु तात॥
उवहिदत्त बोलइ मुह पेखि, पूत वियोग रण सकउ देखि।
हमि तुम्हि एकहि जइवौ पूत, जिम लइ आवहि रयरण बहूत॥

अर्थ —इतने ही मे कुछ बडे व्यापारी वहाँ सम्मुख आए, जिससे जिनदत्त का हृदय गद्‌गद् हो गया। हाथ जोड कर सागरदत्त से उसने निवेदन किया, कि "हे तात हमे भी व्यापार करने भेजो" ॥१७७॥

सागरदत्त उसका मुख देख कर बोला, "मैं पुत्र का वियोग नही देख सकूँगा। हे पुत्र, हम और तुम एक ही (साथ) जाएँगे, जिससे हम बहुतेरे रत्न लाएँगे" ॥१७८॥

पेख् – प्र+ईक्ष् – देखना।

व्यापार के लिये प्रस्थान

[१७९–१८०]

उवहिदत्तु चालइ जिरणदत्तु, अनु-अनु वाखर लयो बहूत।
लइ सुकीठ वस्तु सव भरी, जा पर तौर महघी खरी॥
चारुदत्त गुरणदत्तु, सुदत्तु, सोमदत्तु घरणउ धरणदत्तु।
सिरिगणु हरिगणु आसादित्तु, छौ थे हुप्पा सेठि कौ पुतु॥

अर्थ —सागरदत्त और जिनदत्त चले तथा अपने साथ उन्होने बाखरो मे बहुत सा अन्य अन्य (विविध प्रकार का) सामान लिया। उन्होने उन सब वस्तुओ को भरा जो कठिनाई से तैयार होती थी और विदेशो मे बहुत मँहगी थी ॥१७६॥

(सागरदत्त के साथ) चारुदत्त, गुणदत्त, सुदत्त, सोमदत्त, धन्ना, धनदत्त, श्रीगुण, हरिगुण, आशादित्त तथा हपा सेठ का पुत्र छी था ॥१८०॥

कीठ - क्लिष्ट – क्लेश युत्त – कष्ट पूर्वक तैयार की हुई।

[१८१–१८२]

अजउ विजउ रजउ चलहि, आसे वासे सोम तहि मिलहि।
चलिउ साहु तेजू दिवपालु, महरु पुत्त सुठ सुठु सुरुपाल ॥
तीकउ वीकउ हरिचंद पूतु, ते वाखर भरि चले वहूत।
सील्हे वील्हे गुणहि ण काहु, चलहि विज्जाहर आसे साहु ॥

अर्थ —अजय, विजय तथा रजय चले, और आशा, वासा तथा सोम (नाम के व्यापारी उनमे) मिल गये। तेजू साह तथा देवपाल चले तथा महरु का सुन्दर पुत्र सुठु तथा श्रीपाल भी उनके साथ हो गये ॥१८१॥

हरिचद के पुत्र तीकउ तथा वीकउ (वे भी अपना सामान) बाखरो मे भर कर चले। सील्ह तथा वील्ह इस प्रकार चल पडे कि किसी को (अपने आगे) नही गिनते थे तथा विद्याधर आसा साहु भी (उनके साथ) चले ॥१८२॥

[१८३–१८४]

धध थोणवहि ख ख गूढ, छोला खोखरु कन्हउ सूढु।
सुमति महामति सोतह तणउ, चलिउ सधारु वील्ह चंद तणउ ॥

पूतु न जाणउ वाखर आदि, कोडि सींग भर लइ जे वादि।
धणुदेउ सेठि कुल दिए, दुइ वोहथु भरि वेणालए।

अर्थ —गूढ खोणवाही, धाधा, छोला, खोखर, कान्हा, सूढा, महामति सोत का (पुत्र) सुमति, सधारु एव चद का (पुत्र) वील्ह चले ।।१८३।।

उन्होने वाखरो मे क्या है, यह न जानते हुये भी कोडियाँ एव सीगो को बैलो पर लाद लिया। धनदेव सेठ ने भी, अपार सामग्री दी जिससे दो जहाज भर लिये और वेणा नगर (को जाने का सकल्प) लिया ।।१८४।।

[१८५-१८६]

धाधू पीता चालिउ अवरु, कोडि खडा तिणि लीए चमरु।
धनु नाम नागे कउ पूतु, सारु पाटलइ चालिउ धूतु ।।
जिसुकै हियउ पच परमेठि, सो पुणु चालिउ दता सेठि।
जिणवरु पूज करइ तिहुकाल, सोपुणु चालिउ सहु गुणपाल ।।

अर्थ —और धांघू तथा पीता भी चले तथा करोड खरे चमर (साथ) लिए। नाग का लडका धन्ना तथा धूत भी रेशमी (मूल्यवान पाट लेकर) चला ।।१८५।।

जिसके हृदय मे पंच परमेष्टि थे ऐसा वह दता सेठ भी चला। जो जिनेन्द्र भगवान की तीनो काल पूजा करता था ऐसा गुणपाल भी साथ चला ।।१८६।।

[१८७-१८८]

चले ति रयण परीछा करहि, चले ति मोलु पदार्थ धरहि।
सव वणजारे भए इकठाइ, कोस पंचदश मिलिए जाइ ।।
सवु वणिजारे चतुर छइल्ल, वारह सहस चले भरि वइल्ल।
जो मतिहीण अवूझ अजाण, सव महिं उवहिदत्त परधान ।।

अर्थ —जो रत्नो की परीक्षा (परख) करते थे वे भी चले तथा जो बहुमूल्य पदार्थ रखते थे वे भी चले। सभी व्यापारी एक स्थान पर इकट्ठे हुये तथा पन्द्रह कोश पर जा कर उन्होने पडाव किया ॥१८७॥

सभी व्यापारी चतुर एव छैले थे और बारह हजार बैलो को भर कर वे चले थे। जो मतिहीन एव अज्ञ थे (उन) सब मे सागरदत्त प्रमुख थे ॥१८८॥

रयण – रत्न। परीछा – परीक्षा, पारखी

[१८९]

छाडत नयर देश अंतराल, गए विलावल कइ पइं पसारि।
बलद महिष सबु दइ निरु करहि, वाखरु सयल परोहणु भरहि ॥

अर्थ —नगर और देशो की दूरी को छोडते हुये वे विलावल तक चलते गये उन्होने बैलो एव भैसो को दूसरो को दे दिया और सारा सामान जहाजो मे लाद दिया ॥१८९॥

[१९०–१९१]

भरि वोहिथ चले निज ठाइ, अण्णु वहुत इंधणुरु चडाइ।
सयलह वत्थु परोहणु कयउ, वारस वरिस के संवल लयउ ॥
वणिजारे जल जंतइ ठांइ, धुजा पताका पडा इरइ।
मुदिगर लोहे भार साकरे, सावधान हुइ वणिवर चडे ॥

अर्थ .—तदनतर वे जहाजो को भर कर अपने स्थान को चले। साथ मे वहुत सा अन्न एव ईधन उस पर चढा लिया। वारह वर्ष का सवल (खर्ची) लेकर सभी वस्तुओ को जलयानो मे लाद दिया ॥१९०॥

वणिजारो को जल जतुओ का पता था। (जलयानो पर) ध्वज, पताका तथा पट (हवा द्वारा) प्रेरित हो रहे थे। उन्होने अपने साथ मुद्गर

एव लोहे की भारी साकल भी ली। इस प्रकार वे व्यापारी सावधान होकर चढे ॥१९१॥

ईर – प्रेरणा करना।

[१९२–१९३]

मज्भु परोहणु रोपिउ वासु, तहिं चडियउ मरजिया देसासु ।
माथे दीनी लोह टोपरी, नातरु गीद्ध लेहिं चांचुरी ॥
धुजा पताका पवण जव हयउ, जोयण साठि परोहण गयउ ।
दूत रु चाय रु चलिउ तुरंत, सुरा सेतु दीसइ सु अणतु ॥

अर्थ —(उन्होंने देखा कि) मरजीवा ने प्ररोहण (जहाज) के मध्य मे बाँस खडा किया तथा उस पर वह (मरजीवा) साँस रोक कर चढ गया। उसने माथे पर लोहे की टोपी दे रखी थी नही तो उसे (समुद्री) गिद्ध अपने चोचो मे ले लेते ॥१९१॥

ध्वजा एव पताका जब वायु से आहत हुई तब वह प्ररोहण (जलयान) साठ योजन चला गया। वे द्रुत और उत्साहपूर्वक चल रहे थे और अनत जल ही जल चारो ओर दिखाई पडता था ॥१९२॥

मरजिया – मरजीवक – समुद्र के भीतर उतर कर उसमे से वस्तुओं को निकालने वाला। दूत – द्रुत – वेग से

[१९४–१९५]

दुद्धर मगरमच्छ घडियार, पाणिउ अगम न सूभइ पार ।
जल भय कंपइ सयल सरीर, लहरिं पयड भकोलइ नीर ॥
घडहडाइ गाजइ जु समुद्द, सउ जोयण गहिरउ जलउद्द ।
वूड निकरहि रहस मुह्र कीलि, जाणइ मचछ तु घालइ लीलि ॥

अर्थ :—पानी मे दुर्द्धर मगर, मत्स्य एव घडियाल थे तथा उस अगम पानी का पार भी नही सूझता था। जल के भय से सब शरीर काँपता था तथा प्रचड लहरो से पानी झकोले मारता था ॥१९४॥

समुद्र गडगडा कर गर्जना करता था तथा वह समुद्र सौ सौ योजन गहरा था। वह मरजीवा डुबकी लेकर सुख पूर्वक मुह को बंद किए हुये निकलता था; क्योंकि यदि मच्छो को मालूम पड जाता तो उसे निगल ही जाते ॥१९५॥

घडियार — घडियाल । पयड — प्रचड । उद्द — उदर । रहस — रमस् — सुख ।

[१९६-१९७]

वेणा नयरु छाडि जवु चलेय, कवणु दीउ वेगि परहरिय ।
भंभा पाटणु वाए वीचि, लयो वोहिथ कुंडलपुरु खीचि ॥
मयणदीउ हूतइ नीसरिउ, पाटण तिलउ दीउ पइसरिउ ।
सहजावती वेगि परिहरउ, गउ वोहिथ फोफल की पुरउ[1] ॥

अर्थ :—जब वे वेणा नगर को छोड कर चले तब कवण द्वीप भी उन्होने शीघ्र ही छोड दिया। भभा पाटण वीच ही मे छोड़ कर उन्होने जहाज को कुडलपुर खींच लिया ॥१९६॥

मदन द्वीप से होकर वे निकले तथा पाटल तिलक द्वीप मे प्रवेश किया। (तदनतर) उन्होने शीघ्र ही सहजावती को छोडा और वह जहाज फोफलपुरी (पूगफल—सुपारी की नगरी) को गया ॥१९७॥

वोहिथ — जहाज । फोफल — पूगफल — सुपारी ।

१ मूल पाठ पुरी

[१६८–१६६]

बडवानल वोहिथु गउ पेलि, अतरु छाडि पवाली वेलि ।
संखदीउ परिहरियउ जाणि, गयो वहा जहि हीरा खानि ।।
पणसइ धणु जलु जिणवरु नाहु, भव अतर दीठिउ जलवाहु ।
तहि पय परिसिव वणिवरु चलइ, कलिमलु सयलु लोउ परिहरहि ।।

अर्थ —वह जहाज वडवानल को ढकेल कर आगे वढा तथा वीच में पवाली–वेला को भी उसने छोड दिया । सङ्ख द्वीप को भी उसने जानवूझ कर छोड दिया और वह वहाँ गया जहाँ हीरो की खान थी ।।१६८।।

वहाँ जल के मध्य जिन चैत्यालय था तथा वहाँ उन्होने भव से पार करने वाले जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किये । उनके चरणो का स्पर्श करके वे व्यापारी आगे चले और समस्त लोगो ने वहाँ अपने कलिमल (पाप) त्याग दिए ।।१६६।।

[२००–२०१]

तहां हुंतउ परोहणु चलइ, जोयण सउ वीसा नीसरइ ।
सुन्हि राइसिहि कइन्हु कि भाइ, संघल दीप पहूते जाइ ।।
वणिवारा तहि ठाहरि रहइ, कय विकेण दीवि पइसरहि ।
मोल महंघी वाखर देहि, आप सउ धी साटिवि लेहि ।।

अर्थ —वहाँ से होकर वह प्ररोहण (जहाज) चला और फिर एक सौ बीस योजन निकल गया । कवियो का सत्सग करने वाले राजसिंह ने सुना है कि वे सभी सिंहल द्वीप जा कर पहुँचे ।।२००।।

व्यापारी लोग वहाँ ठहर गये तथा क्रय विक्रय करने के लिये उस द्वीप मे प्रवेश किया । अपनी वाखरो (वस्तुओ) का वे महँगा किए हुए भावो मे देते थे और उनकी वस्तुओ को वे सस्ते भाव मे साट [बदल] लेते थे ।।२०१।।

भाइ – भागिन – साझीदार, सत्सगी । महघ – महार्घ – महगा ।

[२०२–२०३]

तहि घणवाहण पहु चक्कवइ, जो असराल दीप भोगवइ ।
नव निहि चउदह रयण भण्डार, विजयादे राणी सुपियार ॥
तसु कुमरि सिरियामति केह, लइ वियाधि पीडिय जसु देह ।
जो तहि पहिरइ निसि पइसरइ, कारणु किसही सो जु नरु मरइ ॥

अर्थ :—उस (द्वीप) का प्रभु घनवाहन नाम का चक्रवर्ति था जो निरतर उस द्वीप का भोग (राज्य) करता था । उसके भण्डार मे नव निधियां तथा चौदह रत्न थे, और अत्यन्त प्रिय विजयादे उसकी रानी थी ॥२०२॥

उसके श्रीमती नाम की राजकुमारी थी जिस की देह व्याधि के कारण पीडित थी । जो भी आदमी निशा का प्रवेश होने पर उसका पहरा (पहर पहर तक की रखवाली करना) देता था वह मनुष्य किसी भी कारण मर जाता था ॥२०३॥

[२०४–२०५]

मत्री मंतु कियउ भलि जोइ, घरि घरि पतइ वसइ सवु कोइ ।
सयल लोगु तिन्हि लयउ हकारि, कहीय वात जां वलि वइसारि ॥
कहइ मति तुम्ह अइसउ करेहु, अपणे ऊसरइ तुम पहिरउ देहु ।
एक पूतु तउ मालिणि केरउ, पडियउ आइताइ ऊसरउ ॥

अर्थ :—मन्त्रियो ने फिर भलाई देखकर मंत्रणा की, क्योंकि सभी घरों मे पात्र (पहरा देने के उपयुक्त युवक) रहते थे । इसलिये उन्होने सभी लोगो को (मत्रणा के लिये) बुलाया और उन्हे बैठाकर उनसे बात कही ॥२०४॥

मन्त्रियों ने कहा "आप लोग ऐसा करो कि अपने२ ओसरे (पारी) पर

पहरा दो।" वहा एक मालिन के एक ही पुत्र था, उसका उस समय (उस दिन) ओसरा आ पडा था ॥२०५॥

[२०६–२०७]

फूल विसाहरण गउ जिरणदत्तु, मालिरिण कइ घरि जाइ पहुतु ।
रोवइ वूढी हियइ विलखाइ, तवहि वीरु पूछइ वियसाइ ॥
कउरण काज थे री आरडहि, काहु कारणि पलावे करहि ।
किसि कारणि दुख धरहि सरीरु, वेगि कहेहि इउ जपइ वीरु ॥

अर्थ —जिनदत्त फूल क्रय करने के लिये निकला और (सयोग से) मालिन के घर पहुच गया। वुढिया हृदय से विलख२ कर रो रही थी, तब उससे वीर जिनदत्त ने विकसित (खुलकर) कारण पूछा ॥२०६॥

अरी किस लिये इस रीति से रोती हो और किस कारण प्रलाप करती हो ? किस कारण शरीर को दुखित कर रही हो ? उस वीर ने कहा, "मुझसे शीघ्र कहो।" ॥२०७॥

री – रीइ – रीति। पलाव – प्रलाप। जप –जल्प – कहना।

[२०८–२०९]

रूदन करई अरु जपइ वयणु, आसू वहुत न थाकइ नयणु ।
कहउं तासु जो दुखु अवहरइ, हीणह कहे कहा सुखसरइ ॥
सुरण जिरणदत्त पयपय ताहि, भली वुरी कहियर सवु काहि ।
मालिन वातु कहइ मनु सोइ, मन दुख तुझ निवारइ कोइ ।

अर्थ —वह वृद्धा जिसके आंखो के आँसू नही रुक रहे थे, रोती हुई बोली (यह दुख) मैं उससे कहूँ जो उसे दूर कर सके। हीन (असमर्थ) से कहने से कौनसा सुख प्राप्त हो सकता है ॥२०८॥

फिर जिनदत्त उससे कहने लगा "भली बुरी जो भी हो, वह सबसे कहना चाहिए। जो बात तुम्हारे मन मे हो, ऐ मालिन, बात वह तुम्हे कहनी चाहिए, जिससे कि तुम्हारा दुःख कोई दूर कर सके ॥२०९॥

[२१०-२११]

कहइ बात बूढी बिलखीइ, इहि काल इनि राइ (ण) धीइ ।
जो तहि जागइ राति उहाण, सो णर दीसइ मुकऊ बिहाण ॥
इहजि कुवरि बुरी ही टेच, दिन दिन माणसु मारइ देव ।
जो इहि जागइ पहिरइ हुवऊ, सो नर भोलइ (न) खियइ मुवऊ ॥

अर्थ —वह वृद्धा रो रो कर कहने लगी, "इस समय यहाँ एक राजा की कन्या है जो कोई वहा रात्रि मे (उसके साथ) दूसरा (होकर) जागता रहता है वह व्यक्ति सवेरे (दूसरे दिन) मृत दिखाई पडता है ॥२१०॥

राज कन्या की यह बहुत बुरी आदत है कि वह दिन प्रति दिन मनुष्यो को मारती है। जो वहाँ जागता है और पहरा देता है, वह भोला आदमी मरा दिखाई पडता है ॥२११॥

उह – उभय ।

[२१२-२१३]

एकु पूतु एकवति घरवाहि, कहि गउ डोमु ऊसरउ ताहि ।
पहिरइ आजु पूतु सो मरइ, तह दुखु, पूत हियउ गहवरइ ॥
मालिण तणी सुणी जबु वत्तु, आहूठ डि उद्धसे जिणदत्तु ।
इहर बात पूछियइ अकाजु, पूछित रु दुखु सारउ आजु ॥

अर्थ —(इस घर मे) इकलौता एक ही पुत्र है और डोम (वधिक) कह गया है कि आज पहरे का ओसरा उसी का है। आज के पहरे मे मेरा वह पुत्र मरेगा, इसी दुःख से मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है ॥२१२॥

जब उसने मालिन की यह बात सुनी तो जिनदत्त अपने मन मे कहने लगा, यह बात मैंने व्यर्थ ही पूछी, किन्तु पूछ बैठने पर तो आज इसका दु ख दूर ही करूँगा ॥२१३॥

[२१४–२१५]

विरलौ नरु परतिय परिहरइ, विरलउ अवगुण कहु गुण करइ ।
विरलउ सामि काजु सय भीच, विरलउ मरइ पराई मीच ॥
हा हा कारु करइ जिणदत्तु, मालिणिस्यो वोलइ विहसत ।
रहु रहु माइ म रोवहि खरी, कांइ कुढावहि महु डोकरी ॥

अर्थ —विरला ही मनुष्य दूसरे की स्त्री का परित्याग करता है, तथा विरला ही कोई अवगुण करने पर भी गुण करता है । विरला ही भृत्य स्वामी का कार्य करता है तथा विरला ही दूसरे की मौत मरता है ॥२१४॥

जिनदत्त ह ह करने लगा तथा मालिन से हँसता हुआ बोला, "हे माता चुप रह चुप रह । इतना अधिक मत रो । हे वृद्धा, तू मुझे क्यो कुढा रही है ॥२१५॥

मीच – भृत्य । मीच – मृत्यु । डोकरी – वृद्धा ।

[२१६–२१७]

जइ महु बूढण नीदउ चरणु, तहु महु आदिनाह जिण आणु ।
कहा पचारहि मूढनि काज, तुव सुउ उह हमु माहिव्वउ आजु ॥
कहत वात भयो तीजौ पहरु, आयो डोम हकारउ अवरु ।
तौ जिणदत्त भणइ विहसाइ, साभी वारु व सेव्वउ आइ ।'

अर्थ —यदि मै वृद्धा के चरणो की निदा करता हूँ, तो मुझे आदिनाथ की सौगन्ध है । (इस प्रकार) मूर्ख मुझे क्यो व्यर्थ ही ललकार रहे है ?

तुम्हारे इस पुत्र को और मुझको (दोनो को) आज उसे मारना होगा ।।२१६।।

बाते कहते हुये तीसरा पहर हो गया । डोम आया और उसने पुकार लगाई तो जिनदत्त हँस करके कहने लगा कि सध्या समय आकर मैं सेवा करूँगा ।।२१७।।

उह – उभय

[२१८–२१९]

माल गठि पहरण पहरियउ, वीर गंठि करि जूडउ ठयउ ।
लइ कर खडग फरी फटकाइ, खांति तंबोल वसण सो जाइ ।।
चढत अवास दीठ जवु राइ, घणवाहण वोलइ को जाइ ।
कउणे कहिउ रायस्यो खरे, यह देव जाइ वसण ऊसरइ ।।

अर्थ —मल्ल गाठ देकर [और द्वन्द्व युद्ध के लिये] उसने कपड़े पहन लिए तथा वीर ग्रंथि कर उसने बालो को बाँधा । हाथ मे तलवार लेकर फरी (लाठी) को फटकाता (फटकारता) हुआ पान खाता हुआ वह सोने के लिये चला ।।२१८।।

महल पर चढते हुये जब उसे राजा ने देखा तो पूछा कि "कौन जा रहा है ? किसी ने राजा से खडे होकर निवेदन किया हे देव ! यह पारी पर सोने के लिए जा रहा है ।।२१८।।

तबोल – पान । को – कौन ।

[२२०–२२१]

देखि राउ पछतावउ करइ, अइसउ वीरु ऊसरइ मरइ ।
धिय पापिणी लियो ऊचालि, जितनु देखउं तितु देहि निकालि ।।

गउ जिणदत्तु अवास मझारि, सहसर वयणी दीठी नारि ।
आवतु देखि राइ की सुवा, हाथु जोडि आसणु जंपिया ।।

अर्थ —राजा देख कर पछताने लगा, कि "ऐसा वीर ओसरे (पारी) पर मरेगा । धिक्कार है जिसने ऐसी बुरी चाल कर रखी है जितनो को देखता हूँ वह उनको (मार कर) वहाँ से निकाल देती है ।" ।।२२०।।

जिनदत्त महल के मध्य गया (वहाँ) वह (चन्द्र) वदनी स्त्री दिखाई दी । जब राजा की सुता ने उसे आते हुए देखा तो हाथ जोड़ कर उससे आसन पर बैठने को कहा ।।२२१।।

सुवा — सुता

वस्तु बंध

[२२१]

विजय मंदिरु गयो जिणदत्त ।
ता विंभउ णिय मणहु, जंवु जंवु सुछंडि पालंक उठियउ ।
जिम मुंद्ध माणुसु गसहि, मुहु मयंक वोलंति ।।
मिठिया कि अण वाणहि, हणहि अवरु ण आवहु तुज्झ ।
भणइ वीरु फुड वत्त कहि, सिरिमइ सुन्दरि तुज्झ ।।

अर्थ —जिनदत्त विजय मन्दिर गया । उसे अपने मन मे विस्मय किया तब वह (जिनदत्त) (व्यवस्थापूर्वक) पलँग को छोड कर अलग जा बैठा । जिस प्रकार मोह मनुष्य को ग्रसता है उसी प्रकार वह चन्द्रमुखी बोली "तुम क्यो अपनी मधुरिमा से मुझे मार रहो हो, और (तुम मेरे) पास (क्यो) नही आ रहे हो ? यह सुन कर वह वीर (जिनदत्त) कहने लगा "श्रीमती ? सुन्दरी ! तुम स्फुट (स्पष्ट) रूप से (अपनी) बात कहो" ।।२२२।।

विभउ — विस्मय । जंवु — यापय — व्यवस्था करना ।
पालक — पर्यङ्क — पलग । मुद्ध — मुग्ध ।

[२२२]

राइ सुन्दरि पेखि वर वीरु ।।
को तुहु पर लोय, महु कासु पुत्ति कवणे गवेसिउ ।
परहसु सायर तिरिवि आणि, सत्थे तुहु णयरि पेसियउ ।।
देखि वूढि रोवंति दुहिया, एक्कइ पूतु विशाख ।
तिहि सुउ कहुतो मरउ, अइसइ दिण्ण मइ भाख ।।

अर्थ :—राज सुन्दरी उस श्रेष्ठ वीर को देख कर (पूछ कर) बोली। इस परलोक (परदेश) मे तुम कौन हो ? तुम किसके पुत्र हो, और किसकी तलाश मे हो ? (उसने उत्तर दिया)-(लोक) परिहास के कारण मैने सागर पार किया और एक (व्यापारी-दल) मे यहाँ आकर तुम्हारे नगर मे मैंने प्रवेश किया। दुखिता वृद्धा को जिसके एक ही विशाख नाम का पुत्र है, रोती देख कर उसके पुत्र के स्थान पर मैं मरुँगा, ऐसा मैंने उसे वचन दिया है ।।२२२।।

पेख – प्र+ईक्ष – देखना। गवेसउ – गवेषणा करना – खोजना सत्थ – सार्थ –व्यापारी दल। पेस् – प्रविश – घुसना, पैठना। दुहिया – दुःखिता।

[२२३]

ताहं जपइ राय सुंदरीय ।
परऐसिय पाहुणइं जाहि जाहि, मइ तुह निवारिउ ।
तुव पेखि मोहिउ जणणु, वस हूं भइं जन तुह जु मारिउ ।।
एमु भणंतहि रल्ह कइ, गरु छाय गइ नाइसि ।
कथा एक वर वीर कहु, निवडइ पहिरइ चइसि ।।

अर्थ :—तब राज सुन्दरी [राजकुमारी] कहने लगी "ऐ परदेशी

पाहुने ! तुम यहाँ से जाओ जाओ। मैं तुम्हे मना करती हूँ। तुम्हे देख कर मेरे पिता मोहित हो गये हैं और एक मैं हूँ जो तुम्हे मारने जा रही हूँ।" रल्ह कवि [कहता है] इस प्रकार कहते कहते काफी रात्रि बीत गयी और फिर [उसने कहा] "हे श्रेष्ठ वीर एक कथा कहो जिससे पहरा बैठे बैठे [जागते] रात्रि का शेष प्रहर निकल जावे ॥२२४॥

नाराउ छंद

[२२४]

ता पहरइ बैठिउ नारि दिठउ वीर भुजंगु ।
बोलइ कुद्धि सोवि विरुद्धि मोडति अंगु ॥
कहहि कहा नीकी जाणी, निंद सुखु जिमु होइ ।
कह वाता सोजि तुरंता तथ मइ धण सोइ ॥

अर्थ —उस पहर मे वह नारी बैठी रही और एक वीर [भयकर] सर्प उसको दिखाई पडा। [अत] वह क्रुद्ध होकर और विरुद्धित होकर तथा अगो को मोडती हुई बोली "तुम कोई भली भाँति जानी हुई कथा कहो, जिससे निद्रा–सुख मिले। कथा–वार्ता से वह शीघ्र वहाँ मृत स्त्री [होकर] सो गयी ॥२२४॥

[२२५]

सूती जा महि मतू ता महि जिणदत्त करई ।
गयउ मसाणि मडउ आणि खाट तलि धरइ ॥
अपुणु सोवइ छण्णउ होइ खडगु सभालि ।
अज्ज जु आवइ पहिरइ खायइ मरइ अयालि ॥

अर्थ —जब वह सो गई उस समय जिनदत्त ने यह किया कि श्मशान भूमि जाकर वहाँ से एक मुर्दा लाकर खाट के नीचे रख दिया और आप स्वय

छन्न होकर [छिप कर] तथा तलवार सँभाल कर सोने लगा। [उसने कहा,] यदि वह पहरे मे आवेगा तो वह खड्ग् से अकाल ही मरेगा ॥२२५॥

खाय – खड्ग – तलवार। अयाल – अकाल – अनुचित समय

[२२६]

एत्तहि ताला गरुलह झाला मुह मंहते नीसरइ ।
कालउ दारुण विसहरु वारुणु तहि फौकरइं ॥
हिढइ चउपासहि दीह सहासहि कालु भमंतु ।
कहि गउ सो पहिरउ जसु हो वइरिउ खूटउ जसु कउ मंतु ॥

अर्थ :—इसी समय (उस राजकुमारी के) मुख में से एक गुरु ज्वाला-निकली और वह काला और दारुण सर्प वहाँ (द्वार पर) फुंकारने लगा। वह चारो ओर घूमने लगा मानो दीर्घ काल हँसता हुआ घूम रहा हो। (उसने कहा) वह पहरेदार कहाँ गया, जिसके साथ मेरा वैर है, जो क्षय हो चुका है और जिसका अन्त (सन्निकट) है ॥२२६॥

विसहर – विषधर – सर्प। खूट – क्षी – क्षय होना।

[२२७]

माणसु सुत्तउ निंदइ भुत्तउ जाणइ न काइ ।
बोलइ वीरु सा बलधीरु वह भुयंगु नितु खाइ ॥
करि कर दप्पु कालउ सप्पु लाग्यो (मुं) डइ सु खाणि ।
वीरे पच्चारिवि दीनो गालिवि इव इवण लब्भइ जाण ॥

अर्थ —यह मनुष्य (जिनदत्त) सो रहा है और निद्रायुक्त है, क्या वह (मेरा आगमन) नही जानता है? (यह सुनकर) वह वीर और बलधीर बोला, "यही सर्प रोज खा जाता है।" बड़े गर्व के साथ वह काला सर्प उस

को डसने लगा। (तब) वीर ने ललकार कर उसे गाली दी "अब तू जाने नही पाएगा" ॥२२७॥

[२२८]

अरे चोरी खाहि भाजिव जाहि पेटहि पइसि रहही।
आजु अतडउ असिवरु मारउ का सुत णर कहाहि॥
एवां कहि जाही वेग माही फिरि तिहि सिरि चपिउ।
फुक्कारंतउ धरिउ तुरतउ पूछ धरे पिणु फेरियउ॥

अर्थ—अरे तू चोरी से खाता है और भाग जाता है और (श्रीमती) के पेट मे घुस कर रहता हे। आज मैं इसे तलवार से मारूँगा जिससे कौन सा पुत्र नर कहा जायेगा। यह कह कर तथा वेग से जाकर उसने उस सर्प के मिर को धर दबाया और उस फुंकार करते हुये (सर्प) को तुरत पकड कर और फिर उसकी पूछ को पकड़ कर घुमाया (फिराया) ॥२२८॥

चौपई

[२२९-२३०]

पुणि झुलाइ तहि तलि सिरु करइ, गरवु छाडि विसहरु धर पडइ।
विकल भुयंग देखी मनु धरइ, जीउ मारि को नरयहं पडइ॥
वोलि जणाइ तउ रहु रहु करइ, हाथु होइ तउ हाथहि धरइ।
होहि पाइ तउ जाइ पलाइ, सो वपु डाहउ मारउ काइ॥

अर्थ—उसे झुलाकर उसका सिर तले (भूमि) पर कर दिया, (जिसके परिणाम स्वरुप) गर्व छोड कर वह सर्प धरा पर पड गया। (अब) उस भुजग को विकल देख कर वह मन मे सोचने लगा कि जीव-वध करके कौन मनुष्य नर्क मे पडे? यदि उसे वोली ज्ञात होती तो वह 'ठहरो ठहरो'

करता, हाथ होते तो हाथ को पकडता, पैर होते तो भाग जाता, अत अब इस शरीर मात्र को क्या कष्ट दूँ अथवा मारूँ ।।२२९-२३०।।

[२३१-२३२]

जंपइ सेठिपुत्त गुण चाउ, किम करि करउ जीव कउ घाउ ।
हाथ पाउ विणु किमु साधरउ, अयसउ घालि चौपुडी धरउ ।।
घालि चउपुडी धरियउ नागु, फुनि निसंगु होइ सोवणु लागु ।
पह फाटी हूवउ भुणसारु, आयो डोमु सु काढण हारु ।।

अर्थ —गुणो को चाहने वाला वह सेठ पुत्र बोला किस प्रकार मै जीव-वध करूँ ? उस विना हाथ पैर वाले जीव को कैसे पकडूँ ? इसलिये इसे ऐसे ही डालकर चौपुटी मे रख देता हूँ ।।२३१।।

चौपुटी (पोटली, चगेडी) मे डालकर उसने सर्प को रख दिया और फिर नि.शक होकर वह सोने लगा । पौ फटने पर जब सवेरा हुआ तो डोम उसे निकालने आया ।।२३२।।

घाउ – घात । चौपुडी – चतु.पटी – चार छोरो की पोटली । निसगु – नि शक ।

[२३३-२३४]

माझ अवास डोमु जबु गयो, खेलत सार वीर देखियो ।
भाजित पाणु राइसिहु कहइ, कालि वसिउ सो खेलत अहइ ।।
गयि राइ भेटियउ तुरंतु, किमु उव्वरिउ वीर कहि बात ।
भणइ कुमरु इनि नीकउ केह, निरविस भई हमारी देह ।।

अर्थ —जब वह डोमु महल मे गया तो उस वीर को उसने चौपड खेलते हुये देखा । प्राण (लेकर) भागते हुये उसने राजा से कहा, “जो कल सोने के लिये आया था वह आज (चौपड़) खेल रहा है ।” ।।२३३।।

राजा ने जाकर उससे तुरन्त भेंट की तथा पूछा, "हे वीर, तुम कैसे बच गये ? वह वार्त्ता कहो।" राजकुमारी ने कहा कि इन्होने (मुझे) रोग से अच्छा कर दिया है अब मेरा शरीर विष रहित हो गया है ॥२३४॥

सार – चौपड । नीक – णिक्क – अच्छा ।

[२३५–२३६]

काढि भुयंगु दिखालइ सोइ, भाजी राउ पिछोउडो होइ ।
इहु देव कुमरि पेट नीसरउ, इनि देव सयलु लोग सहरिउ ॥
वाल छोडि तवु झाडे पाइ, सिरियामती दीनी परणाइ ।
दइ दाइजे रयणी अनिवार, घरह जाण चाहइ वणिवार ॥

अर्थ —उस (जिनदत्त) ने सर्प निकाल कर दिखाया। (जिसे देख कर) राजा भाग कर उसके पीछे हो गया। जिनदत्त ने कहा हे देव ! यह राजकुमारी के पेट मैं से निकला है और इसीनें हे देव ! सब लोगो का सहार किया है ॥२३५॥

यह सुन कर राजा ने अपने वालो को खोलकर (जिणदत्त के) पैरो को झाडा तथा श्रीमती का उसके साथ विवाह कर दिया। दहेज मे अनगिनत रत्न दिये। (इसके बाद) वणिक दल घर जाने की इच्छा करने लगा ॥२३६॥

[२३७–२३८]

वणिवर सयल प्ररोहण चढहि, तउ जिणदत्त वीनती करहि ।
समदहि देव मोहु चित घरहु, मेरउ साथ जातु हइ घरहि ॥
घणवाहण वोलइ सनभाउ, आधउ देसु करउ निरु राय ।
भो रायणु तुम्ह नाहीं खोड, मुहु पुणु पिता तणी अवसेरि ॥

अर्थ —सभी व्यापारी प्ररोहण (जहाज) पर चढ गये तव जिनदत्त

ने (राजा से) विनती की, "हे देव मुझे विदा दो। मुझे चित्त मे रखना। मेरा सार्थ (व्यापारी-दल) घर (वापस) जा रहा है ॥२३७॥

घणवाहन ने उससे सत्य भाव से कहा, "तुम आधे देश पर निश्चित-रूप से शासन करो। जिनदत्त ने कहा, "हे राजन! तुम्हारी ओर से कोई त्रुटि नही है किन्तु मुझे ही मेरे पिता की चिन्ता हो रही है" ॥२३८॥

जातु -कदाचित। अवसेरि - चिन्ता।

[२३६-२४०]

सिरियामती ममंदी जवही, चउदह दिन्न आभरण तवहि।
जिनदत्तहि दीने वहु रयण, समदिउ राउ विलखाणिउ वयण ॥
तीरिद खुलइ परोहण चडइ, उवहिदत्तु पाप जु मनि धरइ।
पापी पाप वुधि जवु जडी, काकर वांधि पोटली धरी ॥

अर्थ —जब श्रीमती को राजा ने विदा किया तब उसे उसने चौदह (प्रकार के) आभूषण दिये। जिनदत्त को भी बहुत से रत्न दिये और राजा ने रोते हुये वचनो से उन्हे विदा दी ॥२३६॥

जहाज पर चढते ही उसके लगर खोल दिये गये, (किन्तु इसी समय) सागरदत्त के मन मे पाप पैदा हुआ। जब उसके (पापी के) पाप बुद्धि चढी तब उसने काकरो की पोटली बाध कर रख दी ॥२४०॥

समद् - विदा देना। तीरिद - तीर से बधे हुए नगर।

[२४१-२४२]

सो घाली र समद महि रालि, कही वीर रयण्णह की माल।
एहा ही धरी रयण पोटली, सो देखि पुत्त समद महि परि ॥
रोवहि वाप म धीरउ होहि, काढि पोटली अप्पउ तोहि।
तवहि वीरु मनु साहसु धरइ, लागि वरत सायर महि पडइ ॥

अथ —उसने वह पोटली समुद्र मे डाल दी और कहा "हे वीर वह रत्नो की माला हैं। यह रत्नो की पोटली यहा रखी हुई थी हे पुत्र देख वह समुद्र मे गिर गयी है ॥२४१॥

[जिणदत्त ने कहा,] "हे पिता, आप मत रोइये और धैर्य धारण करिये। मैं पोटली को निकाल करके तुम्हे अर्पित करूँगा। तव वीर [जिनदत्त] मन मे साहस धारण कर तथा रस्सी से वध कर सागर मे कूद पडा ॥२४२॥

अप्प् – अर्पय् – देना।

[२४३–२४४]

गयउ पोटली खोजु पताल, काटी वरत ठेठ अतराल।
काटी वरत पापीया जाम, सिरियामती धहायउ ताम॥
इकु रोवइ अरु वोलइ ताहि, छाडे पूत सुसर कत जाहि।
सुसरु सुसरु तुम वोलहि काहु, वह तउ हूंतउ हमरउ दास॥

अर्थ —जब वह जिनदत्त पोटली को खोजने के लिये पाताल मे गया, तो सेठ ने वह रस्सी ठेठ बीच मे काट दी। जब उस पापी ने डोरी को काट दिया तव श्रीमती धाड मार कर चिल्लाई ॥२४३॥

वह रोने लगी तो एक वोला "पुत्र ने छोड दिया तो श्वसुर कहाँ गया है"? लेकिन सागरदत्त नें कहा, श्वसुर २ तुम किसे कहते हो? वह तो हमारा दास था ॥२४४॥

[२४५–२४६]

उँहु को सोगु सखी मति करहि, मोप्रौ राजु भोगु सुहु घरहि।
उवहदत्त के वंयण सुणेइ, सिरियामती हाथ मुंह देइ॥

कुलवहु किहुर कहा चित धरइ, कुंभी नरक पापीया पडहि ।
उवहुदत्त बोलइ सुह वयणु, वहु रोवहि अरु धीजहि नयणु ।।

अर्थ —सागरदत्त ने कहा, "हे सखी, उसका शोक मत करो। मेरे साथ तुम राज सुख भोगो।" जब सागरदत्त के ये वचन उसने सुने तो श्रीमती ने मुख को हाथो से ढक लिया ।।२४५।।

श्रीमती ने कहा, "कुल-वधू के विषय मे तुमने चित्त मे कैसी भावना धारण कर ली है ? हे पापी ! तुम कुभीपाक नर्क मे पडोगे।" सागरदत्त ने फिर उससे सुखकारी वचन कहे, "तुम बहुत रो रही हो, अब नेत्रो को धैर्य दो ।।२४६।।

धीज् – धैर्य देना ।

[२४७–२४८]

जइ ज लहर महि सती सतभाउ, तो यहु बूडि परोहणु जाउ ।
उहि सत जलदेवी उछलहि, उछली परोहणु बोलहि मणहि ।।
डगडगाण लाग्यो वोहिथु, किउ वणिजारिन्ह मंत उचितु ।
वणिवरु सयल परंपरु भणहि, बूड्यो वोहिथु इउं करइ ।।

अर्थ —(वह प्रार्थना करने लगी) यदि "लहरो मे सती का सत्यभाव हो तो यह जहाज डूब जावे।" उसके सतीत्व के प्रभाव से जलदेवी उछल पडी और उछल कर मन मे विचार किया कि जहाज डुबा दे ।।२४७।।

वह वोहिथ (जहाज) डगमगाने लगा। तब व्यापारियो ने एक उचित विचार किया तथा वे व्यापारी परस्पर कहने लगे, "यह जहाज इसी प्रकार के कार्यो से डूब रहा है।" ।।२४८।।

सतभाउ – सत्य भाव । परोहण –प्ररोहण, सवारी । बोल् – ब्रोडय् –डुवाना । मत –मत्र – मत्रणा । परपरु – परस्पर ।

[२४९–२५०]

सावु लागि सिरियामति पाइ, कोपु सति करि म्हारी माइ ।
उवहिदत्तु तिन्हु कूटणु लयउ, सिरियामती कोपु छडियउ ।।
चलिउ परोहणु रहिउ उन ठाउ, दीप विलाउलि लागिउ जाइ ।
भवियहु सुणह सती सतभाउ, दुइसइ उणचासे भउभाउ ।।

अर्थ —(यह सोचकर) सभी ने श्रीमती के पांव पकड़ लिये तथा निवेदन किया, "हे हमारी माता! अपने क्रोध को शान्त करो ।" वे जब सागरदत्त को मारने लगे तब श्रीमती ने क्रोध त्याग दिया ।।२४९।।

जहाज उस स्थान से चला और एक द्वीप के वेलाकुल (बदरगाह) पर जा लगा। हे भविको ! सती का सत्यभाव सुनो । इसके २४९ भेद है ।।२५०।।

विलाउलि –वेणाकुल – बन्दरगाह ।
भविय –भविक – मुमुक्षु ।

[२५१–२५२]

कहइ रल्ह महु यहु सभवइ, सु सीलु ता सजि संभवइ ,
भण जिणदत्त पच पय सरणु, जव जलहर महि आय उपरणु ।।
महु जिणिंद सामी की आण, लिउ अणसगु किगु जाहि पराण ।
जइ जिन सुमरत जाहि पराण, होइ जीव पचम गइ ठाण ।।

अर्थ —जब जिनदत्त सागर मे से ऊपर आया तो उसने कहा, मुझे पचपरमेष्ठि के पदो की शरण है । रल्ह कवि कहता है कि यह सब शीलव्रत पालने से ही सभव हुआ है । ।।२५१।।

मुझे जिनेन्द्र स्वामी की सौगन्ध है । मैंने अनशन का निश्चय ले लिया है क्यो न चाहे मेरे प्राण चले जाएं । यदि जिन भगवान का

स्मरण करते हुये प्राण निकल जाए तो जीव को पंचमगति का स्थान (मोक्ष) प्राप्त हो जावे ॥२५२॥

[२५३-२५४]

सत्तषर पथपंच मुणाइ, कै सुरु स की मोखहि जाइ ।
सही कथा यह पूरी भई, सागर मज्झि कहा संभई ॥
विषम समुद्द न जाई तरण, जिणदत्त सुमरइ जिण के चरण ।
जहां जु रहणु वणिंद हु कियउ, सिरिया धम्मु साथि पाइयउ ॥

अर्थ —सात अक्षर (णमो अरिहताण) एव पचपद (पच परिमेष्ठि) का स्मरण करते हुये मरण होने पर या तो वह देव होता है अथवा मोक्ष जाता है। यह समस्त कथा यहाँ पूरी होती है तथा आगे की कथा सागर के मध्य उत्पन्न होती है ॥२५३॥

समुद्र विषम था जिसे तैरा नही जा सकता था। जिणदत्त ने जिनेन्द्र भगवान के चरणो का स्मरण लिया। (फलत) जहाँ भी वणिकेन्द्र (जिणदत्त) ने रहना किया (ठहरा) श्रीमती के धर्म को अपने साथ (रक्षा करते हुये) पाया ॥२५४॥

[२५५-२५६]

पापी छाडि गुपति सी भई, मिलि संघात चंपापुरि गई ।
सा पुणि गइ जिणिंद विहारि, पाय लागि जिणदत्त संभालि ॥
पिय कौ नामु विमलमति सुनिउ, को जिणदत्त सखी इउं भणइ ।
सिरिमति कहइ मुहइ चाहि, तहि कौ घरि वसंतपुरि आह ॥

अर्थ —उस पापी को छोडकर श्रीमती गुप्त होगई तथा एक सघात (समूह) मे मिलकर चपापुर चली गयी। फिर श्रीमती जिन

मन्दिर मे गयी तथा उसके (विमलमती) चरणो मे लगकर उसने जिनदत्त को पुकारा ॥२५५॥

जब विमलमति ने पति का नाम सुना तो पूछने लगी, "हे सखी। वह जिनदत्त कौन है जिसका नाम तुम ले रही हो ? "श्रीमती ने उसके मुख को देख कर कहा, "उसका घर वसतपुर मे है ॥२५६॥

[२५७-२५८]

जीवदेव नंदन सुपियार, सो मेरउ जिणदत्तु भत्तारु ।
सो तहि रयण ण भोयणु करइ, मण वय करण परतिय परिहरइ ॥
रहिय तिरिय ते दुख सरीर, सायरु उछलिउ साहस धीर ।
. . ॥

अर्थ —"जो जीवदेव का प्रियतर पुत्र है वही जिनदत्त मेरा स्वामी है। वह रात्री मे भोजन नही करता है और मन, वचन, काय से परस्त्री का त्यागी है ॥२५७॥

(विमलमती ने कहा,) "हे स्त्री (बहिन) तुम रुको, तुम्हारे शरीर मे दुःख है। वह साहसी एव धैर्यवान सागर मे से (उछल कर) निकल आयेगा ॥ ॥२५८॥

(वस्तु बंध)

[२५९]

विषमु सायरु गहिर गभीरु ।
तहि विहु उछलिउ कठखड पुण्णेण लद्धउ ।
तहि तुरतु हक्किउ खयरु, विहिवसेण तहि काइ सिद्धउ ॥
तरिवि महोवहि भवियणहि, णिसुणहु जजि लहेइ ।
देखि रल्ह तहि पुण्ण फलु, विज्जाहरि परिणेइ ॥

अर्थ —समुद्र विषम, गहरा एव गभीर था। वहाँ लकडी के टुकडे उछल आए जिन्हे उसने पुण्य–प्रताप से प्राप्त कर लिया। उसे शीघ्र ही एक विद्याधर ने बुलाया तथा कहा [देखो] भाग्य से कार्य सिद्ध हो गया। रल्ह कवि कहता है, उस महोदधि को तैर कर भव्य जनो! सुनो, जो कुछ उसने प्राप्त किया। उसके पुण्य–फल (प्रभाव) को देखो कि किस तरह विद्याधरी ने उससे विवाह किया ॥२५९॥

हक्क – आक्कारय् – बुलाना। खयरु – खचर–आकाश मे विचरने वाला विद्याधर। महोवहि – महोदधि

[२६०–२६१]

वूडउ वीर तहां उछलइ, भुजादंड सो सायरु तिरइ।
सूके सीवल के पुर खड, णीसो आयो धम्म करंड॥
देखत विज्जाहरु आवही, मारुवेग महावेगु धावही।
अरे रि किसु मरण बुधि तुहि गई, राखि समुद्द तीरहि मानई॥

अर्थ —वह डूबा हुआ वीर वहाँ उछल पड़ा और अपने भुजादड से सागर को तिरने लगा। सूखे सेमल का एक टुकड़ा धर्म-करड (पेटिका) के समान उसके न्यास आया (धरोहर के रूप मे मिला) ॥ २६० ॥

विद्याधरो ने उसे आता देखा तो वे वायुवेग तथा महावेग उसकी ओर दौडे। उन्होने कहा, "अरे कैसी मरने की बुधि तुम्हे हुई है जो तुमने इस समुद्र को छोड कर तीर पर आने का सकल्प किया है?"

णास – न्यास – स्थापना, धरोहर

[२६२–२६३]

कवडु भाइ वौलह ति पचार, जाहि ण वपुडा घालहि मारि।
रयणु निहाणु जहां हइ रहिउ, जो जलु कवणु तरण तुहि कहिउ॥

कायर मारु मारु पभणेहि, गडवड करहु समद जिम मेहु ।
उन्नति करि गजहि अपमाण, विहडि जाहि दीसहि न निपाण ।।

अर्थ —वे ललकार कर कपट भाव मे बोले, "यह वप्पुडा (असहाय) जाने न पावे, इसे हम मारेंगे । यह रत्न–निधान (रत्नाकर) है जहां मृत्यु रहती है । इसके जल को पार करने के लिए तुमसे किसने कहा है ?" ।। २६१ ।।

वे कायर जन मारो मारो कहने लगे । जिस प्रकार समुद्र मे मेघ गर्जना करते है, उसी प्रकार उमड कर वे अप्रमाण (अपरिमित रूप मे) चिल्लाने लगे । " यह विघटित हो जाए (टुकडे २ हो जाए) और यह जलाशय समुद्र मे दिखाई न पडे ।। २६२ ।।

हइ – हति – मृत्यु ।

[२६४–२६५]

महिलइ मारणु वोलइ जोइ, तो मरइं चित मणुसु न होइ ।
मारि जु पाछइ मारणु कहइ, सोजि वीरु मुणसाइ लहइ ।।
कहइ जिणदत्त छुरी करि तोलि, आवहु अज्ज न मारउ वोलु ।
तौ न मुणसु जौ अैसौ करउ, मारि छुरी दह दिह वित्थरउ ।।

अर्थ —जो मध्य मे ही मारने के लिये कहता हे वह चिन्ता करके मरता है तथा (पुन) मनुष्य नही होता है । पहिले मार करके जो पीछे मारने के लिये कहता है, वही वीर मनुष्यता प्राप्त करता है । ।। २६४ ।।

छुरी को दिखला कर जिनदत्त ने कहा आओ, मारने के बोल मत बोलो । जो ऐसा नही करेगा उसे छुरी मार कर दशो दिशाओ मे फेंक दूगा । ।। २६५ ।।

[२६६–२६७]

भणहि खयरु यहु घाटि नु होउ, हाथ समुद्द पइरतु हइ जोइ ।
रहु रहु वीरु कोपु जणि करहि, चडि तू विमाण हमारे चलहि ।।
घालि विमाण लयो जो तहा, भणइ वीरु लइ जइह कु किहा ।
वसहि विज्जाहर गिर उप्परहि, तुहु लेइइ जइह रथनुपुहि ।।

अर्थ :—खेचरो (विद्याधरो) ने कहा, "यह वीर कम नही है जो अपने हाथो से समुद्र को तैर रहा है (पार कर रहा है)।" वे कहने लगे, "हे वीर, शान्त हो कोप न कर! तू विमान पर चढ और हमारे साथ चल ।।२६६।।

विमान पर चढा कर जव वे जाने लगे तो उस वीर ने पूछा, "तुम मुझे कहाँ ले जा रहे हो? उन्होंने कहा," इस पर्वत के ऊपर विद्याधर लोग रहते है, उस रथनूपुर नामक स्थान पर तुझे ले जावेंगे ।।२६७।।

रथनूपुर नगर—वर्णन

[२६८–२६९]

तहि असोक विज्जाहर राउ, असोक सिरी राणि कहु भाउ ।
णं सुरेंद्र जो थापिउ सुरहं, गरुव णरेंद सेवज सु करहं ।।
साहण वाहण न मुणउ अंतु, करहि राजु मेइणि विलसंत ।
अतेउरू चउरासी राणि, तिन्हु के नाम रल्हु कवि जान ।।

अर्थ —"वहाँ पर अशोक नामका विद्याधर राजा है और उसकी रानी का नाम अशोकश्री है । मानो इन्द्र ने ही वहाँ स्वर्ग की स्थापना की हो और जिसकी सेवा वडे वडे नरेन्द्र करते है ।" ।।२६८।।

'उसके साधन-वाहनादि का अत न जानो । इस प्रकार वह राज्य करता तथा पृथ्वी का भोग करता है । उसके अन्त पुर मे ८४ रानिया है जिनके नाम रल्ह कवि कहता है मैं जानता हूँ ।" ।।२६९।।

[२७०–२७१]

कानडि गूजरि अरु मरुहटी, लाडि चोडि दक्षिण सोरठी ।
पूरविणी कणवजि वगालि, मगाली तिलग सुरतारि ।।
दवडी गउडी करणा भणी, रूपादे कंचणदे धणी ।
उपमादे भामादे नारि, अचाभउ सुतभउ रुव मुरारि ।।

अर्थ —"कन्नडी, गूजरी, महाराष्ट्रीय, लाडी, चोली, दक्षिणी, सौराष्ट्री, पूरविनी, कन्नौजिनी, वगालिनी, मगाली ? तैलगी, सुरतारी, द्रविडी, गौडी, करणा, रूपादे, कचणदे, उपमादे, भामादे और अचाभउ सुतभउ रूप–मुरारी ।। २७०–२७१ ।।

[२७२–२७३]

चित्तरेह तहिवर सो रेख, कित्तरेख जणु सोवनु रेख ।
गुणगा सुरगा नवरस देइ, भोगमति गुणमति भणेइ ।।
उरभादे रभादे काति, विहसणदे अछइ विलसंति ।
सुमयादेवि रूपसुन्दरी, पदमावती मयणसुन्दरी ।।

अर्थ —वहा चित्त रेखा है, जो वह श्रेष्ठ रेखा वाली है, और कीर्ति-रेखा है जो मानो स्वर्ण–रेखा है, नव रसो का आनन्द देने वाली गुणगा और मुरगा है और भोगमती एव गुणमती कही जाती है । ।।२७२।।

उरभादे एव रभादे है । जो कातिमती है तथा विहसणदे रानी है जो सुशोभित रहती है । सुमयादेवी, रूपसुन्दरी पद्मावती और मदनसुन्दरी हैं । ।। २७२–२७३ ।।

[२७४–२७५]

मारोगा कन्हादे राणि, सावलदे सुहगादे जाणि ।
रेह सुमई सुय पदमणि, भोगविलासनि हसागमणि ।।

दरसरिणदे सुखसेरणावलि, तारादे कहु रल्ह सभालि ।
मंदोवरि अरु चंद्रामती, हीरादे राणी रेवती ।.

अर्थ —"मारोगा, कन्हादे राणी है, सावलदे और सुहगादे को जानो; रेखा, सुमति सुता पद्मिनी है। तथा भोगविलसिनी, हसगामिनी है।" ।।२७४।।

दर्शनदे, सुखसेणावली, तारादे (के नाम) रल्ह कवि समरण कर कहता है। मदोदरी, चन्द्रमती, हीरादे तथा रेवती रानियाँ है ।।२७५।।

[२७६-२७७]

सारंगदे अरु चंद्रावयणि, वीरमदे राणी भावती ।
गगादे राणी गजगमणि, कमलादे अरु हंसागमणि ।।
मुक्तादेवि रुव आगली, चित्तिणि हंसिणि अरु पद्मिनी ।
सोनवती वरंगत हो घणी ... . ।।

अर्थ —"सारगदे, चन्द्रवदनी, मनको भावने वाली राणी वीरमदे, गगादे, रानी गजगामिनी, कमलादे और हसगामिनी है।" ।।२७६।।

"मुक्ता देवी है जो रूप मे वडी चढी है, चित्तिणी, हसिणी एव पद्मिनी रानियाँ है। सोनवती अत्यधिक सुन्दर स्त्री है ... .।।२७७।।

[२७८-२७९-२८०]

अवलो वाला पोढा तिरी, पियसुन्दरी सुमइल मनपुरी ।
मोरवती रामा अविचार, भोगवती कइलास कुमारि ।।
श्रीवसंतमाला सोभाष, हरइ चित्त कामिणी कडाष ।
सव्वइ दानि दारिद्द घालहि, सव्वइ असोइराय वालही ।।
कला विनोद छंद अरु करहि, सुरय पसंगि राइ मन हरहि ।
गीत विनान जाण पयडंति, हाव भाव विभ्रम सुधरंति ।।

अर्थ :—पुन अवलीवाला प्रौढा स्त्री है। प्रिय सुन्दरी, मन को प्रसन्न करने वाली सुमइल्ल (सुमति) देवी, मोरवती, रामा, भोगवती तथा कैलाश कुमारी है" ॥२७८॥

"श्रीवसतमाला कही जाती है जो अपने कटाक्षो से चित्त को हरण करने वाली है। सभी रानिया दानी और दरिद्रता को दूर भगाने वाली है। ये सभी रानिया अशोक राजा की वल्लभाएँ है" ॥२७६॥

"वे विविध प्रकार के कला विनोद तथा छद रचना करती हैं, सुरत-प्रसग द्वारा राजा के मन को हरती हैं। गीत-विज्ञान तथा ज्ञान को प्रकट करती हैं तथा वे हाव-भाव एवं विभ्रम धारण करती हैं" ॥२८०॥

[२८१–२८२]

अइसौ सयल अंतेउरु सा थाटु, असोगसिरी राणी कहु पाट ।
तहि कुलिणंणि चगी खरी, छइ सिगारमइ विज्जाहरी ॥
को तहि कहइ अग सोवण्ण, जीती रूप ताल लोचन्न ।
राइ असोग पूछिउ मुनिनाहु, धीयह वरु सो सामि कहाहु ॥

अर्थ —"ऐसा (उस राजा का) सम्पूर्ण रणवास का थाट (ठाट) है। उसकी अशोकश्री पट्टरानी है उसके कुल की मर्यादा स्वरूपा अत्यधिक सुन्दरी तथा विद्याधरी शृगार मती नाम की पुत्री है" ॥२८१॥

उसके स्वर्ण के सदृश अगो का कहा तक वर्णन करें। उसने रूप और ताल मे लोचन को जीत लिया है। राजा अशोक ने मुनिवर से पूछा "हे स्वामी मेरी पुत्री का कौन पति होगा उसे कहिये" ॥२८२॥

[२८३–२८४]

हाथ उर्वाहं जो पइरतु होइ, कन्या कउ वरु होइसइ सोइ ।
विजाहर राइ अैसाउ कहिय, तउ हमु आइ समुद्द तल रहिय ॥

तुह तुरंतु भेटियउ इह ठाउ, वेगि चालि परिणावहि जाइ ।
गए विज्जाहर पुरी संभारि, गूड र तोरण ऊभे वारि ।।

अर्थ :—(उन्होने उत्तर दिया,) "अपने हाथों से इस समुद्र को तैरता (पार करता) हो, वही इस कन्या का स्वामी होगा ।" जब विद्याधर राजा ने हम से ऐसा कहा और तभी से यहा आकर समुद्र-तट पर रह रहे है ।।२८३।।

"इसलिये तुम उस स्थान पर चलकर राजा से भेंट करो तथा शीघ्र चलकर (उसकी कन्या से) विवाह करो ।" (यह सुनकर) वह विद्याघरो की नगरी मे गया जहां गुडी एव तोरण द्वार पर लगे हुये थे ।।२८४।।

उवहि – उदधि ।

सोलह विद्याओं की प्राप्ति

[२८५–२८६]

देखि वीर आनंदउ खयरु, परिणाविय सिंगारमई कुमरि ।
राय सोग तह काइ करेइ, अगनिउ दानु दाइजौ देइ ।।
सिंहुज पदार्थ मूंदडी मिली, विज्जा सोलह पाई भली ।
गगनगामिनी वहुरूपिणी, पाणिउसोखणी वलथंभणी ।।

अर्थ —उस वीर को देख कर वह विद्याधर आनन्दित हुआ तथा अपनी कुमारी शृंगारमती का उसके साथ विवाह कर दिया । राजा अशोक ने क्या किया कि दायजे मे अगणित धन दिया ।।२८५।।

उसे (दहेज मे) सिंधुज पदार्थो की मुद्रिका मिली एवं सोलह उत्तम विद्याएँ प्राप्त हुई । वे है गगनगामिनी, वहुरूपिणी, जलसोखिनी तथा वलस्तभिनी ।।२८६।।

[२८७–२८८]

हियलोकरणी सुइछिउ देइ, श्रागिथभ थभरिगउ करेइ ।
सव्वसिद्ध विज्जातारणी, पायालगामिरगी श्ररु मोहरणी ।।
चिंतामरिण गुटिका सिद्धि लहइ, गुपति निहारगु श्रजरगी कहइ ।
मारिणकु देइ रयरग वरसिरगी, शुभ दरसिरगी भुवरग गामिरगी ।।
रसरग श्ररगेय भेय रसु देइ, वज्ज सरीरु वज्जरगी थेई ।।

हृदयलोकिनी जो स्वइच्छित देती है, अग्निस्तभिनी (श्राग से) स्तभन करती है । सर्वसिद्धि, विद्या तारिरगी, पाताल गामिनी एव मोहनी ।।२८७।।

चिन्तामरिग गुटिका जिससे सिद्धि प्राप्त होती है तथा गुप्त तथा निधान (गाडी हुई) वस्तुश्रो को कहने वाली श्रजरगी, रत्नवर्षिरगी जो मारिगक देती है, शुभदर्शिनी, भुवनगामिनी, रसना जो श्रनेक भेदो का रस देती है' श्रौर वज्र जैसा शरीर वनाने वाली वज्रिरगी विद्याश्रो को उसने प्राप्त किया ।।२८८।।

[२८९–२९०]

श्रवर पन्न लई तहि भली, तिमिर दिठि विज्जा तहु मिली ।
श्ररगीवंध धारा वंधरगी, सव्वौसही तहि भरगी ।
वलि विज्जउ जिरगदत्त लिलार, सोलह विज्जा लइय विचार ।
विज्जनु कौ देखइ जु पमारगु, हक्कारिउ मनु चिंतिउ जु विमारगु ।।

श्रर्थ —उस प्राज्ञ ने वहाँ श्रौर भी विद्याएँ ली । तिमिर दृष्टि विद्या (श्रन्धकार मे देखने की विद्या) भी उसे मिली । श्ररगीवध तथा धारा बधरगी श्रौर सर्वौषधि विद्याएँ तक उसने प्राप्त की ।।२८९।।

जिनदत्त का ललाट विद्या वलित हो गया । उसने विचार करके सोलह विद्याएँ ली जिससे उसका मुख चमकने लगा । उसने विद्याश्रो की

परीक्षा करने के लिये मन मे जिस विमान का विचार किया उसको बुलाया ।।२९०।।

पन्न – पण्ण–प्राज्ञ । हक्कारिउ – बुलाया ।

[२९१–२९२]

आयउ जगमगंतु सो तित्थु, जीवदेव नदणु हइ जित्थु ।
विज्जा चवइ निसुण जिणदत्त, वंदि अकिट्टमि जिणमलचत्तु ।।
तहि जिणदत्तु तिरिय वीसमइं, मण चिंतिअ पासि उपमइ ।
फिरि कैला (स) वंदि जिणदेव, वंदि करिवि आयो तहि खेव ।।

अर्थ —और जगमगाता हुआ वह विमान वही पर आ गया जहाँ पर वह जीवदेव का पुत्र (जिनदत्त) था । इस विद्या ने जिनदत्त से प्रार्थना की "अकृत्रिम चैत्यालय की वदना करने चलिये" ।।२९१।।

फिर जिनदत्त ने अपनी विस्मृत स्त्री को मन मे विचारा तो वह पास आ गयी । फिर कैलाश पर जिनदेव की वदना करके वापिस वही आ गया ।।२९२।।

नोट—कैलाश पर्वत भगवान् आदिनाथ का मोक्ष स्थान है ।

[२९३–२९४]

आइ णयरि ते राजु कराहि, पुणु असोग सिउ बात कराहि ।
समदह देवति भेटण जाहि, माय वापु अवसेर कराहि ।।
कहइ विज्जाहरु एमु करेहु, आधौ देसु कौ राजु तुम लेहु ।
भणइ वीर हमु यहु न सुहाइ, तात गवेसिउ करि हउ जाइ ।।

अर्थ —वे नगरी मे आकर राज करने लगे । फिर उसने अशोक राज से वात की और कहा, "हे देव ! तुम मुझे विदा दो तो माता तथा पिता से मिलने जाएँ । वे मेरी चिन्ता कर रहे हैं" ।।२९३।।

विद्याधर ने उससे कहा, "तुम ऐसा करो कि तुम आधा देश का राज्य ले लो (और यही रहो)।" वीर (जिनदत्त) ने कहा, "मुझे यह अच्छा नही लगता है। मैं जाकर माता-पिता की सेवा करूँगा" ॥२६४॥

[२६५]

राय सोयं पुणु नीकउ कीयउ, कडइ चूड करि मडिय धीय ।
अर मनु चिंतिउ दिन्नु विमाणु, तहि दियइ रयण अपमाण ॥

अर्थ :—राजा अशोक ने फिर यह सत्कार्य किया कि अपनी लडकी को कडइ (कडा) तथा चूडा (आदि आभूषणो) से मडित किया और उसे मन चाहा विमान दिया तथा अप्रमाण (अनन्त) रत्न दिये ॥२६५॥

तहि – तहा–तथा

चंपापुरी के लिये प्रस्थान

[२९६–२९७]

दिपहि विमाण रयण घाघरी, पालक सेज सुहाइ धरी ।
ठइयो हसतूल विचि छाइ, समदत राय सोउ विलखाय ॥
उतरि विमार्णाहि ठाडउ भयउ, विणउ करि पिणु पूजण लयउ ।
णिरु मणु चिंतिउ अखउ तोहि, चपापुरि लइ घलहि मोहि ॥

अर्थ :—वह विमान रत्नो की झालर से चमक रहा था, जिसमे एक सुन्दर पर्यंक-शय्या रक्खी हुई थी। हस के समान उस विमान मे वह बैठ गया और राजा अशोक ने उसको विलखते हुए विदा किया ॥२९६॥

विमान से उतर कर वह खडा हो गया। दोनो हाथो से उसने फिर (भगवान की) पूजा की। पुन' विमान से कहा, "मनमे विचार करके निश्चयपूर्वक मैं तुझसे कहता हूँ, तू मुझे चपापुर ले चल ॥२९७॥

विण ८ विण्ण–दोनो ।

[२९८–२९९]

सो विमाण ठिय रयणनु भरइ, विज्जाहरिय कति सिहु चडइ ।
विण्ण विचित्तिहु वेगह गहो, चंपापुरिय रायसिउ कहे ।।
चंपापुरि णयरी पइसारि, वाडी देखत भई वडी वार ।
अंथइ सूरु मेरु तल गयो, पहली राति पहर इकु भयो ।।

अर्थ —पुन. रत्नो से वह विमान भर गया तथा विद्याधरी अपने कान्त (जिणदत्त) के साथ उस पर चढ़ी । राजसिंह (कवि) कहता है कि वह विमान शीघ्र ही चपापुरी पहुँच गया ।।२९८।।

चपापुरी नगरी के प्रवेश-मार्ग पर वाडी (उद्यान) देखते उसे वडी देरी हो गई । सूर्य अस्त होकर मेरु के तले (पीछे) चला गया तथा इस प्रकार (वहाँ) प्रथम रात्रि का एक पहर व्यतीत हो गया ।।२९९।।

विण्ण – विज्ञ ।

[३००]

जंपइ वीर नारि सुनि भत्ति, पहिरे अज्जु विलवहु राति ।
भणइ तिरिय मइ लाइव रोय, पहिलउ पहिरउ मेरउ देव ।।

अर्थ —वीर जिनदत्त विद्याधरी से कहने लगा, "हे नारी (स्त्री) शीघ्र सुनो, आज की रात्रि पहरे मे विलमाओ (व्यतीत करो) ।" स्त्री ने कहा, "मैं रुचिपूर्वक करूँगी । प्रथम पहरा हे देव, मेरा हो" ।।३००।।

भत्ति – झटित–शीघ्र । रोय – रोग्र–रुचि ।

[३०१–३०२]

सोवइ तहि जिणदत्त अघाइ, राउ विरउ पहरु तिहि जाइ ।
भउ परतूस पहरु दुइजो आइ, जागि वीरु बोलइ विहसाइ ।।

सुण तू राइ असोगह धीय, जागत वहुल रयण सो भईय ।
वोलु एकु वोलहि स भणी, हू जागउ तू सोवहि घणी ।।

अर्थ — वहा जिनदत्त अघाकर (थक कर) सोने लगा तथा एक पहर रागविराग मे व्यतीत हो गया । जव दूसरा पहर हुआ तो उसे प्रतोप (सतोप) हुआ और वीर (जिणदत्त) जाग कर हँसता हुआ वोला ।।३०१।।

"हे राजा अशोक की पुत्री ! तू सुन तुझे जागते हुए वहुत रात्रि हो चली है । मैं तुझसे एक वात कहता हूँ कि अव मैं जागता हूँ और तू खूव सो जा" ।।३०२।।

राउ – राग । विरउ – विराग । रयण – रजनी ।

[३०३–३०४]

पिय वालहे सुणहि मो वात, अवधिउ वोल म वोलहि कत ।
पिय दुखु दइजु घणी सुखियाइ, तह पतिवारु अहलउ जाइ ।।
सती तिरीने नाह सुजाण, सामी आगइ देहि पराण ।
सुणि साई मेर जु भत्तार, नाहि मोहि घडइ इतिवार ।।

अर्थ —(स्त्री ने कहा,) "हे प्रिय वल्लभ ! मेरी वात सुनो, छोटे वोल हे कान्त, न वोलो । जो प्रिय (पति) को दुख देकर घने सुख उठाती है उसका पतियारा (विश्वास) निष्फल जाता है ।।३०३।।

सती वह है जो (अपने) सुजान (नाथ) के सामने (अपना) अस्तित्व मिटा दे और जो स्वामी के आगे प्राण दे । हे स्वामी सुनो, "तुम मेरे भर्त्तार हो, (किन्तु आपकी वातो पर) मुझे एतवार (विश्वास) नही हो रहा है" ।।३०४।।

[३०५–३०६]

जइ तुम्हि जागत अवसुखु होइ, तो मुहि लोगु ण सलहहि कोइ ।
वालम पाछइ करहि कुकम्मु, ना तिन्हु तिरिय वीपुमा जम्मु ।।

तो जिणदत्त रूसि वोलेइ, केतिउ झंखहि वावली भइ ।
सोवहि घरणी म लावहि खेऊ, घडी एक हूउ पहिरउ देउ ।।

अर्थ —"यदि तुम्हे जागते हुए अवसुख (कष्ट) होता हो तो कोई भी लोग मेरी सराहना न करेंगे। वल्लभ (पति) के पीछे जो (स्त्री) कुकर्म्म करती है वह स्त्री नहीं कुत्रिया है उसे मनुष्य जन्म दुबारा नहीं मिलता है ।।३०५।।

जिनदत्त तव रुष्ट होकर वोला, "तुम पागल होकर यह सब क्या बक रही हो। तुम घनी (नींद) सोओ तथा मन मे जरा भी खेद मत करो। अब एक घडी मैं पहरा दूँगा" ।।३०६।।

वौने के रूप में

[३०७–३०८]

विलखवि घरणी नींद मनु कीयउ, वीती रयणि सूर ऊगयो ।
करइ कपटु वावरण उरिण जासु, हुइ वावरणउं छाडि गऊ तासु ।।
परछनु आइ देखइ तिरिय, घरण सत सिहु छइ किसत टलीय ।
आपणु गुपत नयर महि फिरइ, जागि नारी सो कारणु करइ ।।

अर्थ —विलखती हुई उस स्त्री ने घनी नींद की इच्छा की [और सो गई । रात्रि वीती और सूर्य उदित हुआ। उससे कपट करके (जिनदत्त ने) वौने का शरीर वना लिया तथा वौना होकर अपनी स्त्री को छोड़ गया ।।३०७।।

छिप-छिप कर वह अपनी स्त्री को देखने लगा कि वह (स्त्री) सत मेंहै अथवा सत्त को उसने छोड दिया है। स्वय वह गुप्त रूप मे नगर मे फिरने लगा। जव वह स्त्री (विद्याधरी) जगी तो कारण करने (रोने-चिल्लाने) लगी ।।३०८।।

वस्तु बंध

[३०६]

धण विषयन ललित सुकुमाल ।
खीणोवरि ससिवयणि कणय चूडमणि हार मडिय ।
सोवतिय नींद भरि पियगुण गतहि काइ छडिय ।।
पुणु धम्मक्किय जोवइ दिसइ, उठि जवु जोइय पासु ।
मज्झु विमाणहि रल्ह कइ तिरी न देखइ तासु ।।

अर्थ :—वह धन्या (स्त्री) सुख सम्पदा मे पली हुई सुन्दर एवं सुकोमल थी। वह क्षीणोदरी तथा शशि वदना थी, स्वर्ण चूडामणि एवं हार से मडित (सुशोभित) थी। नीद भर सोते हुए वह गुणगत प्रिय (पति) द्वारा क्यो छोड दी गई? पुन (तदनन्तर) धमकी (स्तभित) होकर दिशाओ मे देखने लगी। अपने पार्श्व (बगल) मे देखा तो रल्ह कवि कहता है कि विमान के मध्य उस स्त्री को वह दिखाई नही दिया ।।३०६।।

[३१०-३११]

उठि तिरिय जु जोवइ पासु, मज्झि विमाण न देखइ तासु ।
कलिमलाइ ऊचे चढि वाह, णाह णाह करि मूकी धाह ।।
अति गहु करि सामियउ लागि एउ, मइ पापिणी नींदमणि कीयउ ।
लोग कहनउ साचौ भयौ, जागत चोरु नु कुइ मुसि गयऊ ।।

अर्थ :—स्त्री ने जो उठकर पास (बगल) मे देखा तो विमान मे उसे नही पाया। अकुला कर विमान पर ऊँची चढ करके स्वामी! स्वामी! करते हुए उसने धाड मारी (वह जोर से रोने लगी) ३१०।।

अत्यधिक आग्रहपूर्वक मैंने स्वामी को पकडा था किन्तु मुझ पापिनी

ने नींद (सोने) की इच्छा की। लोगों का कहना सच्चा हो गया कि जागते हुए किसी को भी चोर नही चुरा सका है ॥३११॥

गह – आवेश–आसक्ति–तल्लीनता। मूष – मुष – चुराना।

[३१२–३१३]

गही वरि वरि कूटइ हियउ, कवणु दोसु मइ सामी कीयउ।
जणु कछु औगण दीठउ नाह, तउ काहे मूकी वण माह॥
कियो मोहि वज्र कौ हियउ, कि दइवि पाहण णिम्मवियउ।
सून विमाण देखि विलिखाइ, किन फाटहि हियड़ा चरडाइ॥

अर्थ —आवेश मे भी (आकुल-व्याकुल होकर) वह अपनी छाती कूटने लगी (तथा कहने लगी), "हे स्वामी, मैंने कौनसा अपराध किया है और यदि तुम्हे कुछ भी अवगुण नही दिखा है, तो फिर क्यों वन के मध्य तुमने मुझे छोड दिया ॥३१२॥

क्या (विधाता ने) मेरा वज्र का हृदय किया है अथवा उस दैव ने उसका पाषाण से निर्माण किया है ?" सूने विमान को देखकर वह रोने लगी तथा कहने लगी, "मेरा हृदय चरड़ा (चरचरा) कर क्यों नही फट जाता ?" ॥३१३॥

[३१४–३१५]

तुहि दीठइ मुहि रहहि पराण, तुहि दीठइ पर जियउ णियाण।
तुहि विनु अउर न देखउ आंखि, पिय जिणदत्त जिणेसर साखि॥
तइए मया मूकी निसएस, काहे पिय छाडी परदेस।
जन किनु इ नाह विनु जियउ, इव किसु देखि सहारउ हियउ॥

अर्थ —तुझे देखने पर ही मेरे प्राण रहेगे तथा तुझे देखने पर ही मैं

जी सकती हूँ। तुम्हारे विना मैं दूसरे किसी को भी इन आँखो से नही देखती हूँ, जिनेश्वर मेरे साक्षी है कि जिनदत्त ही मेरा प्रिय पति है ।।३१४।।

ऐसी रात्रि मे तुमने मुझे (कैसे) छोड दी ? हे प्रिये मुझे परदेश मे क्यो छोड दिया ? तुम्हारे विना मैं कैसे जीऊँगी तथा अब किसको देखकर हृदय को सभालूँ ? ।।३१५।।

मया – स्नेहपूर्वक ।

[३१६–३१७]

जिणदत्त जिणदत्त विरिणि भणइ, कवण केहियउ सेठिम्यो जाइ ।
रोवइ विमलु रहावइ नारि, करि उछग लइ गयउ विहारि ।।
णहयर गयउ जिणेंद विहार, पाय लागी जिणदत्त सम्हारि ।
पिय कौ नाउ विमलमति सुणइ, को जिणदत्त सखी तू भणइ ।।

अर्थ —वह विरहिणी, जिनदत्त जिनदत्त कह रही थी, यह बात सेठ से जाकर किसी ने कही । (वह सेठ) विमल रोने लगा तथा उस नारी को सान्त्वना देने लगा । तदनन्तर उसे हाथ का सहारा देकर जिन मन्दिर मे ले गया ।।३१६।।

वह फिर जिन मन्दिर मे चली गई तथा (जिनेन्द्र के) चरणो मे पडकर भी जिनदत्त को स्मरण करने लगी । जब विमलमती ने अपने प्रिय (पति) का नाम सुना तो उसने उससे पूछा, "हे सखी, तू कौनसे जिनदत्त का नाम ले रही है" ।।३१७।।

[३१८–३१९]

विज्जाहरी कहइ सुणि सखी, णिय जणणी जवजसि कही ।
जीवदेव नंदणु वरु भयउ, सोवति छांडि कालि पिउ गयउ ।।

दूवइ तिरिया कहाहे तुरंतु, हमु पुणु अछहि तासु की कंति ।
तिन्यो तिरिया अछहि ठाइ, वाहुडि कथा वीर पहि जाइ ।।

अर्थ —विद्याधरी कहने लगी, हे सखी सुन, "उसने माता का नाम जीवजसा बताया था और कहा था कि वह जीवदेव का श्रेष्ठ पुत्र है । किन्तु वह प्रिय कल मुझे सोती हुई छोड कर चला गया । ।।३१८।।

उन दोनो स्त्रियो ने भी उसी समय कहा "हम भी उसी की कान्ताएँ (पत्नियाँ) है ।" फिर वे तीनो स्त्रिया वहाँ रहने लगी । अब लौट कर कथा का प्रसग वीर जिनदत्त के पास जाता है ।।३१९।।

वाहुड – व्याघुट–लौटना ।

[३२०–३२१]

वहुक चोजु नयरी मंहि कियउ, पुणि वुलाइ राजा पूछियउ ।
कहहि जाति कुल आपुण ठाउ, पुणु कौतूलहु दरिसहि घणउ ।।
कहइ वात वइठिउ वावणा, हमु देव सामी वाभणा ।
गीत कला गुण जाणहि सव्वु, महु देउ कम्मु नाउ गंधव्वु ।।

अर्थ —नगरी मे जव उसने (जिनदत्त ने) वहुक (अनेक) चमत्कार के कार्य किए·तो उसको राजा ने वुलाकर पूछा, "अपने कुल, जाति एव स्थान को वताओ और अपने घने कौतूहल (चमत्कार) भी दिखाओ" ।।३२०।।

वह बौना वैठ कर कहने लगा, "हे स्वामी हम व्राह्मण देव है । मैं सभी गायन-कला और गुण को जानता हूँ तथा मेरा कर्म से नाम हे देव ! गधर्व है" ।।३२१।।

[३२२–३२३]

तबहि राउ वोलइ रि भडत्ति, लोपहि नाउ म गोवहि जाति ।
तुम्ह पुणु वावणि चवहि अयाणु, तुहि तिण लोगु कहइ तुम्ह पाण ।।

भूख मरत देव हउ केहा करउ, तइ हउ पाणु भयउ विवहउ ।
जवहि गुंसाई मूंडी चुडी, तवहि पणाठी कुलु अरु कुली ।।

अर्थ —तब राजा खीझ कर वोला, "तुम अपना नाम व जाति न छिपाओ। हे बौने ! तुम अज्ञ व्यक्ति की सी वातें कर रहे हो इससे तो लोग तुम्हे पाण (श्वपच तथा शरावी की तरह वकवास करने वाला) कहेंगे ।।३२२।।

"उसने कहा, "हे देव ! भूखो मरता मैं क्या करता ? तब मैं विनष्ट हुआ पाण (श्वपच) हो गया। जव से स्वामी (परमात्मा) ने मेरी चोटी मूँड दी तभी मैंने कुल और कुल की कानि प्रणष्ट कर दी" ।।३२३।।

विवहू – विनाश ।

[३२४–३२५]

पेट अरथ देव सेवा कीज, पेट अरथ देसंतर लीज ।
कतहुण अन्नु पान सिहु भेट, पाण भयउ हौ कारण पेट ।।
वार वार वावणउं भणाइ, देव विभूषित किन्न कराइ ।
मिलइ ण धोवति कापडु खाणु, वभणु हुति भयो यहु पाणु ।।

अर्थ —"हे देव ! पेट के लिए ही सेवा की जाती है तथा पेट के लिए ही देशान्तर लिया जाता (जाना पडता) है। अन्न एव पानी से मुझे भेट कहाँ थी। पेट के लिये ही मैं पाण (श्वपच) हुआ (बना) ।।३२४।।

वह बौना बार-बार कहने लगा "हे देव ! मुझे भूख रहित क्यो नही कराते ? मुझे धोती, कपडा तथा खाना नही मिलता इसीलिये ब्राह्मण से मैं यह पाण (श्वपच) वन गया ।।३२५।।

[३२६–३२७]

जाति पाति पहु पूछहि ताहि, व्याह वोधु जिण सनमधु आहि ।
वयणु एक हउ कहउ समीठु, जिणदत्तु भणति नारि मइ दिठु ।।

तंखिणी विमलुमती पहुतउ तहां, वणमहि नारि वइठी जहां ।
मेरउ खेलु जीतु छइ आल, नाटकु नटउं देखि भूपाल ।।

अर्थ :—"प्रभु ! (राजन !) जाति पाँति उसकी पूछें जिससे विवाह आदि का सम्बन्ध (करना) हो। जिनदत्त कहने लगा मैं आपसे एक मीठी (मधुर) बात कहता हूँ .—"नारी (विवाह योग्य स्त्री) को मुझे बताइये" ।।३२६।।

उसी समय जहाँ विमलमती थी तथा उद्यान के मध्य वह (विद्याधरी) स्त्री बैठी हुई थी, वह वहाँ पहुँचा (उसने अपने आप कहा) मेरा परिचित खेल कोमल और मृदु है, (अत) मैं आज एक नाटक करूँ जिसे राजा देखे ।।३२७।।

जीत ∠ जित–जीना हुआ, परिचित। आल – मृदु, कोमल।

[३२८–३२९]

नाद विनोद छंद वहु करउ, रूप विरूप कला अणुसरउ ।
छोह भाइ सुव्वि दीसइ घणउ, इउ नट भड खेलइ वावणउ ।।
धरइ तालु जिह हासउ वयण, वंधइ किरणि भमइ पुणु गगन ।
विपरितु छोहु एकु दरसियउ, राजा हसइ वावलउ भयउ ।।

अर्थ —मैं वादित्र (वजाऊँगा) एव विविध प्रकार के हास्य छद कहूंगा तथा भली एव बुरी दोनो ही प्रकार की कलाओ का अनुसरण करूँगा। जिससे क्षोभ तथा भाव (स्नेह) दोनो का ही खूब अनुभव हो। इस प्रकार वह (बौना) नट-भट (का खेल) खेलने लगा ।।३२८।।

वह ऐसे ताल धरने लगा जिससे हँसी के वचन निकले (हँसी आवे) किरणो को बाँध कर वह आकाश मे घूमने लगा। विपरीत (विरोध का) भाव

ग्रौर छोह (कृपापूर्ण, स्नेह) को एक सा दिखा दिया जिससे राजा हँसता-हँसता बावला हो गया ॥३२९॥

छद – छद्म। वाउल ∠ वातूल–बावला, पागल।

[३३०–३३१]

तूठउ राजा निज चित्ताउ, मागि मागि वावणो पसाउ।
कउणइ एकु सभामइ कहइ, वात एकु को कारणु ग्रहइ॥
विमल सेठि की तीन्यौ धीय, रही विहारि देव तपु लीय।
जइतौ नारि बुलावइ एहु, तवहि ग्रुशाई वासणु देहि॥

ग्रर्थ —राजा ग्रपने चित्त मे सन्तुष्ट हो गया तथा प्रसन्न होकर बौने से कहा, "पुरस्कार माँग, पुरस्कार माँग।" (तव तक) सभा मे किसी एक ने कहा, "एक वात का क्या कारण है ? (यह बौना वताए)" ॥३३०॥

"हे देव, विमल सेठ की तीनो लडकिया तप (व्रत) लिये हुये (मन्दिर मे) रह रही है। यदि उन स्त्रियो को यह बुला सकें, तभी ग्रब इसे प्रसाद (पुरस्कार) का वस्त्र दें ॥३३१॥

[३३२–३३३]

की पाषाण काठ की घडी, की ते चित्त लेपसो खडी।
की ते ग्रछरि की ते सवासी, भणइ राउ ते हहि माणुसी॥
भणइ देव माणुसि किं हसहि, मेरइ बोल पाहणु हँसइ।
तउ मे देव तिनि सीखी कला, जौ न हसाउ पाहणु सिला॥

ग्रर्थ —(बौने ने पूछा,) "क्या वे प्रस्तर ग्रथवा काठ की गढी हुई है ? ग्रथवा क्या वे चित्र के लेप से खडी हुई है क्या वे ग्रप्सरा हैं ग्रथवा क्या वे ब्राह्मणी (?) है ? "(तव) राजा ने कहा, वे मानवी हैं" ॥३३२॥

(बौने ने) कहा, "हे देव ! मनुष्य के हँसने की क्या ? मेरे बोल से पाषाण भी हँस सकता है । हे देव ! मैंने तो वह कला सीखी है कि मैं पाषाण की शिला को भी न हँसा दूं (तो मेरा क्या नाम) ॥३३३॥

सवास – ब्राह्मण ।

[३३४–३३५]

वस्त उठाइ सिला परिठइ, एक चित्तु विज्जा सुमरइ ।
सवै सभा चित्तुर हसाइ, तू तारूणी सिलाहु हसहि ॥
जवहि वीरु तिसु आइस कहइ, सिलारूप जइ विज्जा रहइ ।
यहु तारूणी वि(ज्जा) तिह ठाइ, हसि हहडाइ रंजावहि राउ ॥

अर्थ :—वस्तु को उठाकर शिला पर रख दिया तथा एक चित्त होकर विद्या का स्मरण करने लगा । (विद्या से उसने कहा) "सभी सभा का चित्त सुखी हो इसलिये तू ही तारुणी (विद्या) शिला होकर हँस" ॥३३४॥

उस वीर ने जव उसको यह आदेश दिया तो वह विद्या शिल-रूपिणी होकर वहा जा कर वैठ गई । यह तारुणी विद्या ही थी जो उस स्थान पर ठहाका मार कर (खूब जोर से) हँसने और राजा को रिझाने लगी ॥३३५॥

[३३६–३३७]

तवु सो सिला हसइ हहडाइ, सभा लोगु मोहउ तिह ठाइ ।
तूठहिं राजा करि तहि भाउ, मागि मागि वावणे पसाउ ॥
इवहि पसाउ पडयै केम, जाम ण नारि हसाउ देव ।
सामी वयण एकु अवधारि, दिन दिन एकु वुलालाउ नारि ॥

अर्थ —तव वह शिला ठहाका मार कर हँसने लगी जिससे सभा के लोग उस स्थान पर मोहित हो गये । राजा स्नेहपूर्वक प्रसन्न हुआ और कहने लगा "हे वौने ! तू पुरस्कार मांग पुरस्कार मांग" ॥३३६॥

(किसी ने कहा) "कैसे पुरस्कार मिल सकता है, जब तक हे देव, यह यो (इसी प्रकार) नारियो को न हँसा दे।" बौने ने कहा हे स्वामी ! मेरी एक बात मान लो। मैं एक-एक दिन एक-एक स्त्री को बुलाऊँगा ॥३३७॥

नाराच छंद

[३३८]

जाइ विहारी जिण जयकारी चाली तिन्ह की बात।
हारिउ दव्वु जूवह सव्वु निकल गयउ जिणदत्तु॥
छाडिउ पाटणु राइ दिवाटणु आयउ चंपापुरी।
इहाँ सती विमलामती छाडि गयउ तिरी॥

अर्थ :—इस वचन के अनुसार उसने विहारी (मन्दिर) मे जाकर जिनेन्द्र की, जय-जयकार की तथा उनकी वार्ता चलाई। "जुए मे सब द्रव्य हार करके जिनदत्त वहाँ से निकल गया (भागा)। पाटण को छोड कर तथा रात-दिन चल करके चपापुरी आया तथा यहा वह सती विमलमती को छोड गया" ॥३३८॥

[३३९]

बोलइ बइठी नारी जेठी, तपछह पूछउ तेहि।
छाडी मोही फुणी गउ कहि ' ' " " ' ॥
तू तुहु ठाली छहि निरवाली ठालउ अछइ कोइ।
इवा घरि जइ हउ काल कहि हउ जहा गउ सोइ॥

अर्थ —बडी स्त्री जो बैठी हुई थी यह सुनकर बोली मैं तुम से उसके बाद की (बात) पूछती हूँ। मुझे छोडकर फिर वह कहा गया। (बौने ने उत्तर दिया) तू तो ठाली है और निरवाली (उलझनें सुलझाने वाली) है,

(किन्तु) कोई (अन्य भी) ठाली (बेकार) है ? इस समय घर जाकर मैं यह कल बताऊँगा, जहाँ वह (फिर) गया ॥३३९॥

[३४०]

दुइजइ दिवसी जाय वइसी कहा सो कहइ ।
छानउ होइ जाइ सोइ दसपुर राहाइ ॥
तहा हुं तेउ जाइ पहुंतइ सिंहल दीप चडाइ ।
विवाही सत्ती सिरियामत्ती सायर मांहि पडाइ ॥

अर्थ :—दूसरे दिन वह नारी जा बैठी तो वह बौना क्या कहने लगा ? प्रच्छन्न होकर वह दसपुर मे रहा और वहां से भी जाकर वह सिंहल द्वीप जा चढ़ा । फिर वहा श्रीमती से विवाह करके सागर के मध्य गिर गया" ॥३४०॥

[३४१]

लागी आखरण नारि वियखल काहा सो भयउ ।
बूडिवि नीरह गहिर गंभीरह पुणि कत्थ गयउ ॥
तू तुहु वाली (ठग्ली) छहि निरवालीं कहिसहु कल्हि सुवात ।
इसउ कहाई सो बुलाई गयो तुरंत ॥

अर्थ :—फिर वह विचक्षण नारी कहने लगी, आगे क्या हुआ ? (सागर के) गहरे गम्भीर जल मे डूबने के पश्चात् वह कहाँ गया ? (बौने ने कहा,) हे स्त्री तू ठाली है और निरवाली (उलझन सुलझाने वाली) है । (आगे की वार्त्ता मैं कल कहूँगा) । "इस प्रकार यह कह कर वह लौटकर(?) शीघ्र ही वहा से चला गया ॥३४१॥

[३४२]

तीजइ वासरि बीजइ अवसरि तिणि ठांही आइ ।
सुणि सुणि तिरिया मेलउ परिया जहा गयउ सोइ ॥

पइरतु सायरु लइ विज्जाहरु लइ गयउ रथनूपुरि ।
सिंगारमइ विज्जाहरु आहि लइ आयउ चपापुरी ।।

अर्थ —तीसरे दिन सभा मे उस स्थान पर आकर बोला– (तब बौनें ने कहा) हे स्त्री ! सुनो, सुनो, जैसे ही वह (सागर मे) गया, वह छोड दिया गया । सागर मे तैरते हुये (उसे देखकर) उसको विद्याधर रथनूपुर नगर ले गए । वहाँ शृंगारमती विद्याधरी को व्याह कर उसे चपापुरी ले आया ।।३४२।।

अवसर – सभा ।

[३४३]

सो धरण वगी वोलरण लागी वावरण पूछइ तोही ।
देखिवि सूती निंदाभूतो छाडि गयउ कत मोही ।।
तू तहि वाली (ठाली) छह निरवाली ठालउ अछइ कोइ ।
इव घरि हउ जइहऊ कालिह सु कहिहउ जहा गयउ सोइ ।।

अर्थ —यह सुनकर वह सुन्दर स्त्री बोलने लगी, "हे बोने मैं तुम से पूछती हूँ, "मुझे वह सोती हुई और निद्रा के वशीभूत देखकर छोड कर कहाँ चला गया ?" वह बौना कहने लगा, तू तो ठाली है और निरवाली (उलझने सुलझाने वाली) है किन्तु क्या (तेरी भाँति) कोई और भी ठाला है ? अभी तो मैं घर जाऊँगा । मैं तुम्हे यह कल बतलाऊगा कि वह कहाँ गया" ।।३४३।।

[३४४]

तींनिउ तिन्निउ नारी नारी वुलाईवि सा गयऊ ।
छोहु छोहु वहुलू वहुलू राजा के मन भयऊ ।।

देई देई जाम जाम तहि वहु रयण समत्थि ।
एते खण खण छुट्ट पट्टणि वंधण हत्थी ॥

अर्थ —(इस प्रकार) तीनो की तीनो ही नारियो को बुलवा कर (उनसे बातें कर) वह गया जिससे राजा के मन मे अत्यधिक कृपा पूर्ण स्नेह हुआ। वह उसे बार बार मे रत्न देने लगा। उसी क्षण नगर मे बन्धन से एक हाथी खुल गया ॥३४४॥

छोह – कृपापूर्ण स्नेह

[३४५]

मय भिभलु गउ अंकुस मोडी खंभु उपाडि दंतूसलि तोडि ।
साकल तोडि करि चकचूनि गयउ महावतु घरकौ पूतु ॥
गयउ महावत्थ णयरी जित्थ गज भूडउभऊ अखइतत्थु ।
हउ उवयरिउ जुन खूटउ कालू तउ सूडिउ तोडितु भालु ॥

अर्थ —वह मद् विह्वल (हाथी) अकुश को मोड (न मान कर) करके, खम्भे को उपाड तथा तोड करके वह पुष्ट दाँतो वाला (हाथी) चला गया। साकल को तोड कर उसने चकनाचूर कर दिया तथा वह महावत घर की ओर भाग गया। महावत नगरी मे जिधर गया, वहो हाथी से भयभीत होकर लोग कहने लगे, मैं (किसी प्रकार) उबरा (बचा) वह मानो काल ही खुल गया हो। तब वह विनाश करके शिर तोड़ने लगा ॥३४५॥

ऊसल – पीन पुष्ट। सूड़ – सुद् – विनाश करना

वस्तु बंध

[३४६]

डसण तास ण सुंडु सपडु भू भंजणु विसमु ।
धरइ वीरु चिक्कार सोट्टउ, गुमु गुमंति अलिउलि नियरु ।
डरि लोगु भय कालु छूटउ, विद्धंसइ मंदिरु सयल तरुवरु ॥

घरणा उप्पाडि रल्ह नयर, भग पडिउ किम गयंद घरणमारि ।
दुद्धरु गयवरु धरण न जाइ, जहि चिक्कार भई लोग पलारि ।।

अर्थ —उसके जो दांत थे भूमि को भयकर रूप से नष्ट करने वाले (हो रहे) थे। वडे वडे वीर उसको पकडे हुये थे और उसका (भयकर) चीत्कार था। उसके पास भ्रमरो की पक्ति गु जार कर रही थी। लोग डरने लगे मानो साक्षात् काल ही छूट गया हो। वह मकानो तथा सभी वृक्षो को नष्ट कर रहा था। रल्ह कवि कहता है कि सारे नगर मे अत्यधिक उत्पात हो गया था तथा लोग सोचने लगे थे कि हाथी को कैसे मारा जाय। वह दुर्धर्ष (भयकर) हाथी पकडा नही जा रहा था तव लोग पुकार करके भागने लगे थे ।।३४६।।

[३४७–३४८]

दंतूसलि खूदंत फिरइ, तल की माटी ऊपर करइ ।
सो मयमतु ण लेखइ कासु, वण उडणु कियउ निरवासु ।।
तीन दिवस तहि छूटे कहे, भाजि लोगु डोगर चढि रहे ।
वाज' 'डही नयरह फिरइ, हात्थिउ माटिउ जइ कोइ धरइ ।।

अर्थ —वह पुष्ट दातवाला हाथी पृथ्वी को खू द रह था तथा नीचे की मिट्टी को ऊपर कर रहा था। वह मदोन्मत्त हाथी किसी से भी नही समझ रहा था तथा (जिसने) वनो और उद्यानो को निर्वास (नही रहने योग्य) कर दिय था ।।३४७।।

इस प्रकार उस हाथी को छूटे हुये तीन दिन हो गये थे और लोग भाग करके टीलो पर जा चढे थे। नगर मे बाजे के साथ घोषणा फिरने लगी थी यदि कोई हाथी को मार कर भी पकडेगा ।।३४८।।

दतूसली – पुष्ट दत्त

[३४९–३५०]

जो भाजइ गयवरु भडवाहु, परिणइ कुमरि देस अधराउ ।
एतिउ वोलु वावणइ सुणिउ, हाथटेकि फुणि वोलइ तणइं ।।
धरि विरुद्ध गयवरु जइजाइ, भूठे होहु त कीजइ काइ ।
साखी करण ते दिये हारि, सइ राजा परिगहु वइसारि ।।

अर्थ .—"तथा जो भट उस गजराज को प्रणष्ट कर देगा, उसे वह अपनी लडकी परणा देगा तथा आधा राज्य देगा ।" यह घोषणा बौने ने सुनी, तब हाथ टेकते हुए उसने यह वात स्वीकार कर ली ।।३४९।।

(राजा ने कहा) "यदि तुम हाथी के विरुद्ध जाकर भूठे प्रमाणित हो तो हम क्या कर सकेंगे ?" यह सुनकर साक्षी के लिये (बौने ने) हार दिये तव राजा ने उस पर अपना परिग्रह (विश्वास) विठाया ।।३५०।।

परिगह ∠ परिग्रह–ममत्व । तण् – विश्वास करना ।

[३५१–३५२]

वीतराग की आण जु मोहि, पाछइ जइणवि वाहु 'रि ।
राजासइ कौतूहल चलइ, वावण पासि लोगु वहु मिलइ ।।
ठाट विरुद्ध रु गयवरु (ग) हा, सुइरी विज्जातारणी तहा ।
देखि हाथ बोलइ जु पचारि, काहि पुर घालिय उजाडि ।।

अर्थ —मुझे वीतराग भगवान की आन (सौगन्ध है यदि मैं) इस कार्य को न करूँ । राजा स्वय कौतूहल वश वहाँ गया तथा उस वौने के पास बहुत से लोग इकट्ठे हो गए ।।३५१।।

वह बौना गजराज के सामने जाकर खड़ा हो गया । तारणी विद्या को उसने स्मरण किया । उस हाथी को देखकर वह उसे ललकार कर वोला, "तुमने नगर को क्यो उजाड डाला है" ।।३५२।।

सइ ∠ सङ–स्वय। सुइर ∠ स्मृ – स्मरण करना।
हाथ ∠ हस्तिन – हाथी ।

पागल हाथी को वश मे करना

[३५३–३५४]

सुणिह भेडक हउ दिखु तोहि, गयवरु भलउ ति सौंहो होहि ।
गयवर वीह कीह व (लि) वड, जिणदत्तह निरखे भुज दंड ।।
पयसित हाथि अकावसि धरउ, चक्क भवणु लइ गयवरु फिरिउ ।
हाकि वीरु वोलइ जु निवाणु, अरे चेड तौहि य हर पाराणु ।।

अर्थ –(वौने ने हाथी से कहा,) "सुन, मैं तुझे भीरु देख रहा हूँ, यदि तू भला और श्रेष्ठ गज है तो मेरे सन्मुख हो। उस वलवान गजेन्द्र ने मार्ग दे दिया जव उसने जिनदत्त के भुजदड को देखा ।।३५३।।

प्रविष्ट होकर उसने हाथी को पकडा तो हाथी उसको चक्र-भवन लेकर लौट पडा। वीर (जिनदत्त) उसे हाक करके निदान वोला, "अरे सेवक, तुझमे यही प्राण (वल) है" ।।३५४।।

भेडक – भीरु, कातर। वीह ∠ वीथी–रास्ता, मार्ग।

[३५५–३५६]

सुंडि पूछ धरि देखउ तोहि, गयवरु भलौ तिसौंहउ होहि ।
सूंडि पूछ जउ धरिउ तुरतु, भव लावत्त लयउ जिणदत्तु ।।
पहरु एकु धरि फेरिउ जान, खेद खिण्णु भउ गयवरु ताम ।
जहि गयवरु की गहिरी गाज, जहि गयवरु भय पिरथी भाज ।।

अर्थ –(जिनदत्त मे कहा,) तेरी सूड एव पूँछ पकड कर देखूँगा। श्रेष्ठ गज, यदि तू भद्र है तो सम्मुख हो।" उसने शीघ्र ही जव हाथी की

सूंड एवं पूंछ को पकड लिया। जिनदत्त ने उसको उसके भव (जन्म) का ज्ञान कराते हुये पकडा ॥३५५॥

उसने एक पहर तक उसे पकड कर घुमाया। वह श्रेष्ठ गज खेद-खिन्न हो गया। जिस श्रेष्ठ गजराज की गहरी गर्जना थी और जिस श्रेष्ठ गज के भय से पृथ्वी भागती थी ॥३५६॥

लाव ∠ लापय् – बुलवाना, कहलाना।

[३५७–३५८]

जहि गयवरु कउ मोटउ[1] हियउ, सो वावणे विलखौ कियउ।
जो गयवर गयवर हण माण, ण गणइ सींहहि आखु पराण ॥
वेडु जूड स पहारहि करइ, तहि वावणें जोति निरकरइ[2]।
धरि दंतूसरि मूठिहि हयउ, चढिवि कंधि करि अंकुस लयउ ॥

अर्थ :—जिस हाथी का मोटा (बडा) हृदय था, उसको उस बौने ने रुवासा (रोने पर तुला हुआ) कर दिया। जो गज श्रेष्ठ गजों के मान (अभिमान) का हनन करता था और सिह को नहीं गिनता था, जो ऐसे अक्षत प्राणो का था ॥३५७॥

जो अपने प्रहारो से (अपने) बडे बन्धन को जूट-वालो के जूडे (का सा) कर डालता था, उसे वह बौना निश्चित रूप से पराभूत कर रहा है। हाथी के पुष्ट दातो को पकड कर उसने मुट्ठी मारी तथा कन्धे पर चढकर अकुश ले लिया ॥३५८॥

ऊसर ∠ ऊसल – पुष्ट।

१ मूल पाठ – मोटट

२ इस चरण का दूसरा पाठ :—**वावणु जंघ जुव तलि नीसरइ।**

अर्थ —उसके (हाथी के) दोनो जघाओ के नीचे से वह बौना निकल गया।

[३५९–३६०]

हथिया आनि खंभ वंधि ठाउ, जय-जयकारु लोकु सहु कियउ ।
हाथि जोडि फुणि विणवइ तेव[1], पुत्तिह लगण छिकावहि देव ।
वइठो जाइ जिणेसर भवण, पूछहि निय गुरु कारजु महवणु ।
सव पुरु सामि अचभो भयउ, हाथिउ अछे वावणें धरिउ ।।

अर्थ —(तदनतर) हाथी को लाकर उसके स्थान पर उसने खभे से बाँध दिया । (इससे) सभी लोगो ने जय जयकार की । हाथ जोड कर फिर वह बौना विनय करने लगा, हे देव, "(अब) अपनी पुत्री का लग्न दिखाइये (विवाह कीजिए)" ।।३५९।।

राजा जिन मदिर मे जाकर वैठ गया तथा वहाँ पर (अपने) गुरु से उस राजा ने उस कार्य के विषय मे पूछा । सभी पुरुषो को आश्चर्य हुआ कि इस बौने ने हाथी को अक्षत (बिना किसी चोट फेट के) पकड लिया ।।३६०।।

महवणु ∠ मघवन – इन्द्र
१ मूल पाठ – 'सेव'

अद्भुत कार्यों का वर्णन

[३६१–३६२]

भवियउ बात कहहुं निरु सम्वणु, एही बात अचंभउ कवणु ।
कोडि एग्यारह जूवा खेलि, माता पिता छोडि गउ मेलि ।।
जहि परकम्म अइसा लहउ, तह कौ पौरुष केत्तउ कहउ ।
जो मोहिउ पूतलिय पहाण, पुण्यवत को सकइ पहाण ।।

अर्थ —श्रमण (गुरु) ने निश्चय रूप से कहा, हे भव्यो, ऐसी (इस)

बात में अचम्भा ही क्या? जो ग्यारह करोड जुआ मे हार गया तथा माता पिता को छोड़कर चला गया ।।३६१।।

जिसने पराक्रम (पुरुषार्थ) ऐसा पाया, उसके बल पौरुष के विषय मे कितना कहा जाय। जो पत्थर की पूतली को देखकर मोहित हो गया। उस पुण्यवत की कितनी प्रशसा की जावे ।।३६२।।

अछे ∠ अक्षत – विना अग भग किये।

भविअ ∠ भविक – मुक्तिगामी, भव्य जीव।

परकम्म ∠ पराक्रम।

[३६३–३६४]

परिहसु लियउ दिसंतर करइ, जहि कौ हाथ अजंणो चडइ।
सूकउ अवरु चहोडइ जोइ, तहि किउ पौरुष कइसउ होइ ।।
फिरिउ अनेयइ सागर दीप, पोपी सायरदत्त समीप।
सिहल हंसकूट देखियउ, तासु वीर को कैसौ हियउ ।।

अर्थ —जिसने खुशी के साथ परदेश गमन लिया तथा जिसने अपने हाथ से अजनी (गुटिका) चढाई। जिसने सूखी (वाडी) हरी कर दी। ऐसे (पुरुष) का और कैसा पुरुषार्थ होगा ? ।।३६३।।

जो पापी सागरदत्त के साथ अनेक दीप समुद्रो में घूमा। जिसने सिहल एव हसकूट देखा, उस वीर का हृदय कैसा होगा ? ।।३६४।।

[३६५–३६६]

मालिरिण तरणी बात्त निसुरणाइ, मीच पराई मरण जु जाइ।
गयो मसारिण मडउ आरिणयउ, अहो भवियहु तहु कैसो हियउ ।।
सिरियामती उव (र) नीसरयो, जिरण विसहर सयलु लोय संहरिउ।
कालु पूछ धरि ताडइ जोइ, तह कउ पौरिषु कवसउ होइ ।।

अर्थ —"मालिन से वार्ता सुनकर जो दूसरे की मृत्यु मे मरने के लिये गया, जो श्मशान जाकर मुरदे को लाया। हे भव्यो, (तुम ही बताओ) उसका हृदय कैसा होगा" ? ॥३६५॥

"श्रीमती के पेट मे से निकलने वाले जिस सर्प ने समस्त लोगो का संहार कर दिया था, उस काल की (सर्प की) पूछ पकड़कर जिसने (बौने ने) ताडना की ऐसे व्यक्ति का पौरुष कैसा होगा ? ॥३६६॥

[३६७–३६९]

करइ अकेलउ सायर झप, तहि जल मगर मछ की झंप।
गयउ पतालहि पारिणउ साहि, तहि कौ पौरषु कहियइ काहि॥
फोडि नीरु उछलिउ वलिवड, पुणु पेरियउ समुद्द भुजदड।
हाकि विज्जाहरु तिरण रु भिडाइ, तिहि पौरुष कहि हियइ समाइ॥
हुइ वावरणउ जु सत्ती वुलाइ, हेला मतिहि हियइ समाइ।
मरिण चिंतिउ विवाणु जिह लयउ, ताह वीर को कैसो हियउ॥

अर्थ :—"जो अकेला समुद्र मे कूद पडा, जहाँ मगर मच्छ वगैरह कूदते है, जो जल के सहारे पाताल लोक मे चला गया, ऐसे (मनुष्य के) पौरुष के वारे मे क्या कहा जा सकता है ?" ॥३६७॥

"वह पराक्रमी जल को फाड कर उछल आया, फिर उसने अपनी भुजाओ से समुद्र का सतरण किया (तैर कर पार किया)। विद्याधरो को ललकार कर वह उनसे भिड गया। ऐसे पुरुपार्थी का वल किसके हृदय मे समा सकता है ?" ॥३६८॥

वौना होकर जिसने सतियो को वुलवा दिया और जिसकी हेला (धाक) मन्त्रियो (?) के हृदय मे समा गई, जिसने मन चाहा विमान प्राप्त किया, ऐसे वीर का हृदय कैसा होगा ?" ॥३६९॥

[३७०–३७१]

विज्जा वलह जहि अछहि पास, चडिवि विमाणु गयौ कैलास ।
तिहु भुवणहि जहि करी खियाति, हथिए वपुडा केती बात ।।
तउ वावणउ हकारिउ राइ, पूछउ वात कहउ सतभाउ ।
तू परछण्ण वीर हहि , आपउ किन पयासहि जोहि ।।

अर्थ .—"जिसके पास विद्यावल है, जो विमान पर चढ कर कैलाश गया था, जिसने तीनो भुवनो मे अपनी ख्याति करली थी, ऐसे वप्पुडे (वेचारे) की कितनी (क्या) बात है" ।।३७०।।

तव बौने को राजा ने बुलाया और पूछा, "तू मुझसे (अपनी) वार्ता सतभाव (सत्य रूप) से कह । हे वीर! तू छिपा हुआ क्यो है ? तू किस कार्य के लिये आया है जिसे प्रकाशित नही करता (बताता) है ? ।।३७१।।

हकार ∠ आकारय् – बुलाना ।
पयास् ∠ प्रकाशय् – प्रकाशित करना ।

[३७२–३७३]

गात अलखणु कहियइ काइ, मूडिउ मडु चोटी फरहराइ ।
जिहि भोयण भिख्या कीय, सो किम परिणइ राजा धीय ।।
जाति विहीणु देव वावणउ, वार वार सत चूकउ भणउ ।
पाछइ लोगु हसइ मो वयणु, कुजर कंठि कि सोहइ रयणु ।

अर्थ —(बौने ने कहा) "जिसका शरीर लक्षणो रहित है, उसे क्या कहे ? जिसका शिर मुडा हुआ है तथा चोटी फहरा रही है, जिसने भिक्षा का भोजन किया है वह राजा की कन्या से कैसे विवाह कर सकता है ?" ।।३७२।।

"हे देव ! जो जाति विहीन तथा वौना है तथा बार बार सत्य से चूके वचन बोलता है और पीछे से जिसके वचनो को सुनकर लोग हँसते है । क्या

हाथी के गले मे रत्नो का हार शोभा दे सकता है" ।।३७३।।

रयण ∠ रत्न

[३७४-३७५]

कहा कुमरि मुहि हीणे दीन, परिहसु मरउ लेइ कोइ छीनि ।
घाली जाइ देव जिउ आल, गादहू गलै रयण की माल ।।
आपु हाउ कहियइ काइ, छेली मुह कि आलियरु माइ ।
अनइ देव न पावउ कला, वादिर कडि रयण मेखला ।

अर्थ .—मुझ हीन को राजकुमारी देने से क्या लाभ ? परिहास के कारण मैं मरुँगा और कोई उसको (राजकुमारी को) छीन लेगा । हे देव! यह वैसा ही होगा जैसे गधे के गले मे रत्नो की सुन्दर माला डालदी जाए ।।३७४।।

अपने लिये मैं और क्या कह सकता हूँ । वकरी के मु ह मे क्या कस्तूरी समाती है ? हे देव! वदर की कटि मे रत्न मेखला कला (शोभा) नही प्राप्त करती है ।।३७५।।

[३७६-३७७]

घाघ सु कहा करइ रविधाम, भुंजिउ जोडि जाइ परिणाम ।
अण छाजत इहु सइ सवु कोइ, वोले कहा सवारथु होइ ।।
देह कुछील हाथ इकु काय, आगुल चारि चारि मो पाय ।
खोचे—थु जणु रु लाकडी, खालउ पेटु पीठि कूवडी ।।

अर्थ —"सूर्य के धाम मे जाकर घुग्घु (उलूक) क्या करेगा ? उसे वहाँ जाकर उसका परिणाम भोगना पडेगा । यहाँ सव अनचाहा हो रहा है । मेरे वोलने से क्या स्वार्थ निकलेगा । ।।३७६।।

मेरी देह कुत्सित है तथा एक हाथ का शरीर है। मेरे चार २ अगुल लम्बे पैर है। शरीर जैसे लकडी हो, पिचका पेट है तथा पीठ कूवडी है ।।३७७।।

कुछील ∠ कुत्छित ∠ कुत्सित ।

[३७८–३७९]

आँखि कुढाल कपाल निधान, डसरण दातलय वूचे कान ।
कुहणी ऐसी देव मोकडी, अछ कपोल [1] नाक छीपडी ।।
कामकला तिहि तेरी कुमरि, रंभ सरंभ तिलोत्तमि गवरि ।
जोग मोहणिय मृग लोयणु जासु, सा किमु सोहइ मेरइ पासु ।।

अर्थ —आंखे वेढगी है तथा कपाल गडा हुआ है। दात हसिया (जैसे) तथा कान वूचे है। हे देव! कुहनी जैसी मूँगरी हो, गाल वैठे हुये तथा नाक चिपटी हे ।।३७८।।

(दूसरी ओर) तेरी राजकुमारी काम की कला है। वह रभा, तिलोत्तमा एव गौरी है। वह जगत् मोहिनी है, जिसके लोचन मृगो के जैसे है। वह मेरे पास कैसे सुशोभित होगी ? ।।३७९।।

दातला ∠ दात्र – घास काटने की हँसिया ।
अछ ∠ आस – वैठना ।
१ कपाल – मूल पाठ है ।

[३८०–३८१]

पउही नयर माहि वाजहि, गयवरु धरइ कन्य परणेइ ।
धरिय हाथ मइ वावण भाट, अव उठि जाउ आपणी वाट ।।
मतिहि तणउ हियउ कंपियउ, कूडउ मंतु देउ सवु कियउ ।
वेटी देहि कुचालि म चालि, कीलो लागि म देवलु ढालि ।।

अर्थ —"नगर मे पटही वज रही थी कि हाथी को वश मे करने वाला कन्या को विवाहेगा। हाथी को वौने भाट ने पकडा है और अब मैं उठ कर अपने मार्ग को जाता हूँ" ॥३८०॥

मन्त्रियो का हृदय कापने लगा तथा उन्होंने कहा, "हे देव ! समस्त विचार कूट (बुरा) किया है। अपनी पुत्री को इसे देकर कुचाल मत चलिए, कौली के लिये देवल मे मत गिराइए ॥३८१॥

हाथ ∠ हस्तिन – हाथी।

[३८२–३८३]

अवरु भणइ देव अइसो कीज, वालिय राइ एक कहु दीज।
मेरी वात जिण करहु सदेहु, फुड वयणु भइ अखिउ एहु॥
जइ पहु कइसइ धीय न देउ, तउ यहु सयलु अतेउरु लेइ।
राजा मतिहि समुद वहाइ, नयरु आपुणी आणु दिवाइ॥

अर्थ —वह फिर कहने लगे, "हे देव ! ऐसा करिये। इस कन्या को एक राजा को दीजिए। मेरी बात मे आप सन्देह न कीजिए, मैंने आपसे स्फुट (स्पष्ट) वचन कहा है" ॥३८२॥

"यदि हे प्रभो ! किसी प्रकार लडकी को नही देते हो तो सारा अत पुर यह (ऐसे ही) ले लेगा (करेगा)" राजा ने मन्त्रियो को विदा किया और अपनी नगरी मे उसने आज्ञा दिलाई (प्रसारित की) ॥३८३॥

[३८४–३८५]

मंती रहे हियइ करि सक, राजा कइ मनि पइठी सक।
वार वार भण गहियइ कोइ, अति करि मथियउ कालकुठु होइ॥
तहं करायउ सीरघु गधव्वु, पूछइ राउ कहत रु सव्वु।
तुह कउ आणि जिणेसर तणी, फुडी वात कहु सवु आपुणी॥

अर्थ :—मन्त्रीगण हृदय मे शका करते रहे तथा राजा के मन मे भी शका बैठ गयी। बार-बार मन को कोई टटोलने लगा। अत्यधिक मथने से काल कुष्ट हो जाता है ॥३८४॥

तब श्री रघु (नाम के) गधर्व ने (बौने से) कहा, "राजा पूछ रहा है (अत:) तुम्हे सब कुछ कहना चाहिए; तुम्हे जिनेन्द्र की सौगन्ध है अपनी सब स्फुट (स्पष्ट) बात कहो" ॥३८५॥

[३८६–३८७]

सुणि सुणि देउ कहूं सतभाउ, कहियइ सा वसंतपुरु ठाउ।
माता जीवंजस पिय खीरु, पिता जीवदेव साहस धीर ॥
एक पूतु हउ तिन्ह घरि भयउ, पुणु जिणदत्त नाम महु ठयउ।
हारिउ सामिय जूवा दव्वु, कियउ दिसंतरु चित्त धरि गव्वु ॥

अर्थ :—(बौना बोला) हे देव ! सुनिए, सुनिए। मैं सत्यभाव से कह रहा हूं। "उस (मेरे स्थान) को वसतपुर कहा जाता है। जिसका मैंने दूध पीया है ऐसी मेरी माता का नाम जीवजसा है तथा मेरे पिता साहसी जीवदेव है" ॥३८६॥

"उनके घर मे मैं एक ही पुत्र हुआ, तदनन्तर उन्होंने मेरा जिनदत्त नाम रक्खा। हे स्वामी ! मैं जुए मे द्रव्य हार गया, इसलिए चित्त मे गर्व धारण करके मैंने विदेश (जाने) का निश्चय किया" ॥३८७॥

[३८८–३८९]

आसा करि हउ जणियउ माइ, सो किमु छोडि दिसंतरु जाइ।
वज्र को हियउ न फाटइ देव, महु विणु बाप न जीवइ केव ॥
दीठे देस नयर बहु घणे, हूंटे दीप समुद्दह तणे।
बारह वरस दिसंतरु गए, न जाणउ माय बापु कहा भए ॥

अर्थ —"मुझे मेरी मा ने वडी आशाओ से पैदा किया था। उसे छोड कर विदेश मैं क्यो कर गया ? हे देव ! मेरा वज्र का हृदय नही फटता है। मेरे बिना मेरे पिता भी किसी प्रकार जीवित न रह सकें" ॥३८८॥

"मैंने बहुत से देश और नगर देखे तथा अनेक समुद्रो एव द्वीपो की यात्रा की। विदेश भ्रमण करते हुये बारह वर्ष बीत गये, पता नही मेरे माँ-बाप का क्या हुआ" ॥३८९॥

[३९०–३९१]

इहा परणी विमलामती, सिंघल दीपि सिरियामती ।
पुणि परिणिय विज्जाहरि, सो कह लइ आयउ चपापुरी ॥
विमलसेठि देव तणइ विहारि, मइ जु वुलाइय तीनिउ नारि ।
को तहि मरइ वहुतु कहि वत्त[1], ते तीनिउ सु अम्हारी कलत्त ॥

अर्थ —"यहा मैंने विमलमती के साथ विवाह किया तथा सिहल द्वीप मे श्रीमती के साथ (विवाह किया)। फिर विद्याधरी स्त्री से विवाह किया और उसको चपापुरी लाया" ॥३९०॥

"विमल सेठ के जिन मन्दिर मे मैंने जिन तीनो स्त्रियो को वुलाया था वे तीनो ही मेरी पत्नियाँ हैं" लेकिन बहुत सी बातें कह कर कौन मरे ? (कहने से क्या मतलब)॥३९१॥

१ मूल पाठ – 'वात'

[३९२–३९३]

जे ते वछ तुम्हारी नारि, किन पत तौ मिलवहु वइसारि ।
फुडउ वयणु जइ यहु तुम्हि देस, इह तुहु काइ विवाहउ वीस ॥
जइ ते कहहि हमह पिउ आहि, वीस कुमरि मांगउ कहु पासि ।
एक कुमरि दइ सकहि न जाहि, वीस कि तीस विवाहहु काहि ॥

अर्थ —राजा ने कहा, "हे वत्स ! यदि वे तुम्हारी पत्नियां हैं तब (उन्हे) बैठा कर मिल क्यो नही लेते ? यदि तुम स्फुट (सत्य) वचन कह रहे हो तो इन बीस (?) स्त्रियो के साथ तुमने क्यो विवाह किया ?" ॥३९२॥

यदि वे कहेगी कि तुम हमारे प्रिय पति हो तो वे बीस (?) पत्निया किससे (कुछ) मागेंगी ? तुम जब एक स्त्री को नही दे सकते हो, तब तुमने फिर बीस-तीस (?) के साथ विवाह क्यो किया ? ॥३९३॥

देस – कहना ।

[३९४–३९५]

बोल बोल वावरण तुडि करइ, राजा वोल तु सासइ पडइ ।
मंत्री कह्यो मंत्र धरि ठाणु, इव तुह एकइ कुमरि परिमाणु ॥
श्री रघुराइ पठायौ दूतु, जाइ विहारहु वेगि पहूत ।
हाथ जोडि वोलइ सतभाउ, तुम्ह पुणि तिहु वुलावइ राउ ॥

अर्थ .—वौना वोल बोल कर त्रुटि (भूल) कर रहा था और राजा के वौलते ही वह सशय मे पड गया । मत्री ने मत्रणा कर निश्चय करके कहा, "तुम्हे अब एक ही कन्या व्याहनी है" ॥३९४॥

श्री रघु (गन्धर्व) को राजा ने दूत बना कर भेजा । वह जाकर शीघ्र ही विहार (जिन-मन्दिर) मे पहुँच गया । वहा हाथ जोड कर वह सत्यभाव से कहने लगा, "राजा तुम तीनो को पुनः बुला रहा है" ॥३९५॥

[३९६–३९७]

एतउ वातु सवरण जवु सुणहि, लोभिउ राउ परंपरु भरणइं ।
काऊसग्गि रह्यो तिह ठाइ, अछीस ताहि झाणु मणु लाइ ॥
वाहुडि दूतु न बोलइ वयणु, चवहि ण देव ण वाहहि णयणु ।
जो मइ देव चुलाई सही, तीनिउ झाण मउण लइ रही ।

अर्थ .—यह बात जब कानो से उन्होने सुनी तो वे आपस मे कहने लगी, "राजा लुब्ध हो गया है ।" फिर वे कायोत्सर्ग मे (स्थित होकर) वही पर ध्यानमग्न हो गयी ॥३९६॥

वहा से लौटकर वह दूत बोला, हे देव ! वे न बोलती है और न नेत्र डुलाती हैं। ज्यो ही मैंने उन सभी को बुलाया तो तीनो ध्यान तथा मौन धारण कर बैठ गयी ॥३९७॥

वाहुड ∠ व्याघुट – लौटना ।

[३९८]

दूत वयणु सुणि वियसिउ राइ, रे वावणे यहु तेरौ ठाउ ।
वावंणु भणइ चलहु तिह ठाइ, तिन्हसि नरवइ वोलहि काइ ।

अर्थ .—दूत के वचन सुनकर राजा विकसित हुआ (मुसकराया) और कहा, "हे बौने ! यह तेरा स्थान है ।" (यह सुन कर) बौने ने कहा, उस स्थान पर चलिये, उनसे नरपति क्या बोलेंगे" ॥३९८॥

नाराच छद

तीनों स्त्रियों से पुन साक्षात्कार

[३९९]

राजा परजा लोगु वागु गयउ विहारि ।
वइठे आगे पूछण लागे तिन्हहु हकारि ॥
अहो तीया पूछउ सीया वात्त एकु तुव भणी ।
हम ण पतीजह रलहु कहाइ मेरी एती तीनिउ धन्नी ॥

अर्थ —राजा प्रजा और लोग-वाग (जनसमुदाय) उस विहार मे गये और (उनके आगे) बैठकर तथा उन्हें बुलाकर पूछने लगे । हे सीता के समान

नारियो तुमसे हम एक बात पूछते हैं। रल्ह कवि कहता है हम (इसकी वात पर) कि ये तीनो ही मेरी स्त्रिया है, प्रतीति नही करते है" ॥३६६॥

[४००-४०१]

विमलामती कहइ वात सुणि हो स्वामी ताता।
यहु तउ वांवणउ अइ दीणा वणउ कहइ हमारी कंता ॥
अम्ह पिउ चंगु सुगुणगुण सुठि अइ रुवडउ।
इहु वोलइ भूठउ विरह न दीठउ दीणउ कूवडउ ॥

पुणु पुणु जो बोलइ चित्तह डोलइ अरे अचागले।
किं बोलहि नारी भिक्खाहारी जीह आगले ॥
म्हारौ कंता जो जिणदत्ता रुवह छइ घणउ।
तू तहु वावणु करहिउ मणु रंजावहि लोयण तणउ।

अर्थ —विमलामती कहने लगी, "हे स्वामी और तात, बात सुनो, यह तो बौना है तथा अत्यन्त दीन वचन कहने वाला है और यह अपने को हमारा पति कहता है? हमारा पति स्वस्थ है, पर्याप्त सद्‌गुणोवाला एव अत्यधिक रूपवान है। यह भूँठ बोल रहा है। हमे तो विरह मे यह दीन कुबड़ा दीखा भी नही है ॥४००॥

तू बार-बार यही कहता है और तेरा चित्त, अरे दुष्ट (इस प्रकार) डोल गया है? अपनी जिह्वा के अग्रभाग से ऐ भिक्षा माँग कर खाने वाले? तू क्यो कहता है कि हम तेरी पत्निया है? हमारा स्वामी तो जिनदत्त है जो अत्यन्त रूपवान है। तू तो वौना है, करही है, तथा अपनी आख एव शरीर से लोगो का मनोरजन करने वाला है ॥४०१॥

अइ ∠ अति। करही – ऊँटनी पर सवारी करने वाला।

हुप्पा सेठ की कथा

[४०८–४०९]

झूठी भईय तिरिय गहु करहु, मेरे बोल न तुमि गरहु ।
पडे उघाडह् सइ सवु कोइ, सगे वुवा कहि भोलउ होइ ।।
णिसुणि वावणे हीण अजाण, हुपा सेठिणि वसइ पइठाण ।
असी कोडि घर दव्व अपार, घाठि कोदइ करइ अहारु ।।

अर्थ —(बौने ने कहा,) हे स्त्रियो ! तुम झूठी होकर इस प्रकार दु ख (शोक) कर रही हो । मेरी वाणी पर तुम विश्वास (?) नही करती हो । उघाडे पड जाने पर सभी हँसते हैं, सगा कह् कर मनुष्य भोला बनता है ।।४०८।।

(स्त्रियो ने कहा,) "ओ हीन और अज्ञान बौने सुन । एक हुप्पा नाम का सेठ प्रतिष्ठान मे बसता था । उसके घर मे अस्सी करोड अपार द्रव्य था किन्तु वह स्वय तो घटिया चावलो का आहार करता था" ।।४०९।।

[४१०–४११]

तीनि नारि तहु खरी गुणगु, रूप विज्जाहरि सुठु सुचगु ।
हुपा सेठि उठि वणिजह् गयउ, धूत एकु घरि पइठउ आइ ।।
दव्वु उखारि तेन विट्टयउ, आपुण हुपा सेठि सो भयउ ।
लेत पटोली भूवित तिरी, तीनिउ आनि त सोने भरी ।।

अर्थ —उसके तीन स्त्रिया अत्यधिक गुणवती थी । रूप मे वे विद्याधरियो जैसी अत्यधिक सुन्दर थी । जब हुप्पा सेठ उठकर व्यापार के लिये (विदेश) गया तो वहां एक धूर्त आया ।।४१०।।

उसके (गडे हुए) द्रव्य को (निकाल) कर उसका भोग किया (?)

और आप हप्पा सेठ बन गया। उसकी दी हुई पटोली (रेशमी साड़ी) को लेकर वे स्त्रिया अति प्रसन्न हुई और (उसके साथ मे) आकर तीनो ही (स्वर्ण से) लद गई ॥४११॥

[४१२-४१३]

मांडे दूध निवात संजोइ, घिउ लापसी कलेऊ होइ।
केला दाख छुहारी खीर, खाँड चिरौंजी नितु दुख हरी ॥
दाडिव विरसोरा वहु खाज, विलसहि राणी जइसे राज।
फूल तंबोल कपूर बहुत्त, अइसो भोग करावइ धूत[1] ॥

अर्थ :—उन्होंने दूध और नवनीत सजोकर माँड़े तथा घी और लापसी का कलेवा होने लगा। केला, दाख, छुहारा, खीर, खाड और चिरौंजी नित्य दुख हरने लगे। दाडिम, बिजौरा आदि वहुतेरे खाद्य से राणी और राजा की भाँति वे विलसने लगे। फूल, पान, कर्पूर आदि का इस प्रकार वह धूर्त बहुत उपभोग कराने लगा ॥४१२-४१३॥

१. मूल पाठ—दूत

[४१४-४१५]

घाठि कोदई जले जु गात, छाडी हप्पा सेठि की बात।
जिण बाहुडि आवइ करतार, सब सुखु पुरए ए जु भत्तार ॥
धूतह दीन्यो दरबु अघाइ, राजा कुल वालउ अपनाइ।
वरिस विण्णि दह वणिजह गए, पाछै बेटा बेटी भए।

अर्थ —किन्तु घाठी (अथवा घटिया) और कोदई [कोदव] [खाने से] उनका गात्र जल गया तो उन्होंने हप्पा सेठ की बात छोड़ दी। स्त्रिया कहने लगी, "हे भगवान हमारा भर्त्तार वापस न आए; यही हमारा भर्त्तार है क्योंकि इसीने हमारे लिए सब सुख पूरे कर दिये है ॥४१४॥

उस धर्त ने उन्हे अपार द्रव्य दिया । हे राजन् ! उन बालाओं ने उसको अपना लिया । [सेठ के] वारिणज्य के लिए बारह वर्ष तक चले जाने के बीच उनके बेटा बेटी हो गए ।।४१५।।

[४१६-४१७]

वरिस बारह आयउ जवरु, घर कौ विक्रम दीठौं अवरु ।
लइरु वहेडे भेटइ जवरु राइ, महु घरु वरुतइ दीन्यो काहि ।।
तवहि नरिंद वात हसि कहइ, वात एक कउ कारणु कहइ ।
हप्पा सेठि वहु अख्यइ अप्पु, वेटा वेटी केरउ वापु ।।

अर्थ :—जब बारह वर्ष पर सेठ घर लौटा तो उसे घर की व्यवस्था दूसरी ही दिखाई पड़ी । वहेडें [?] लेकर जब उसने राजा से भेंट की तो कहा, "मेरा घर तूने किसको दे दिया ?" ।।४१६।।

तब राजा ने हँस कर कहा, "एक बात का कारण बता । वह अन्य व्यक्ति भी अपने को हप्पा सेठ और बेटे बेटियो का बाप कहता है" ।।४१७।।

[४१८-४१९]

हप्पा सेठि मन विलखौ भयउ, मूंड खुजाइ घरि उठि गयउ ।
नियम विरह न पावइ जाणु, धूतह दिण्ण राइ की आण ।।
णियमणि चमकि गयो सो तित्थु, णरवइ सिंहासणु हुई जित्थु ।
हाथ जोरि तिनि विनयो राइ, जइ पहु दीनह करहु पसाउ ।।

अर्थ :—वह हप्पा सेठ मन मे दुःखित हुआ और शिर को खुजलाते हुए उठ कर घर को चला गया । इस वियोग के वह कोई कायदे-कानून नही जानता था किन्तु उसने तो धूर्त को राजा की दुहाई दिलादी ।।४१८।।

अपने मन मे चौक कर वह (हप्पा सेठ) वहाँ गया जहा नरपति का

सिंहासन था। हाथ जोड कर उसने राजा से विनती की, "प्रभु, दीन पर कृपा करो" ॥४१९॥

[४२०-४२१]

तीनिउ नारि बुलावहु जाणि, सभा माहि वइसारहु ताणि ।
कहहु वात्त फुणि तुम्ह घरि जाइ, सभा मह दुमह कवण तुम्हारउ णाहु ॥
किंकरु लेण ताह पेठियऊ, लइ आइसु सुह कारण गयऊ ।
तिहू नारि सिउ आवइ तित्थु, पुहिमु णाहु निय मन्दिर जित्थु ॥

अर्थ —(राजा ने आदेश दिया) "तीनो स्त्रियो को वुलाओ तथा उन्हे सभा मे वैठाओ और तुम उनके घर जाकर कहो कि सभा मे वताओ कि दोनो मे से तुम्हारा कौनसा पति है" ॥४२०॥

उन्हे ले आने के लिए उसने किंकर भेजे। (किंकर) आदेश लेकर शुभ कार्य के लिए गया। तीनो नारियों के साथ वह वहा आया जहां पर राजा (पृथ्वीपति) का निज मन्दिर था ॥४२१॥

[४२२-४२३]

धूतहं हारुडोरु परठइय, चडिवि सुखासणि रावलि गइयं ।
पूछइ राउ हियइ वियसंतु, दूमहि कवणु तुम्हारौ कंतु ॥
णिसुणि वयणु मुह जोयउ तासु, जिसको करतउ सेठि विसासु ।
जेठी घण वोलइ तहा, णावइ सभा वइठउ जहा ॥

अर्थ .—धूर्त को लिवाने के लिये हाल डोल भेजा और वह सुखासन (पालकी) मे चढकर राज-भवन गया। राजा मन मे हँस कर (स्त्रियों से) पूछने लगा, "दोनो मे कौनसा तुम्हारा स्वामी है ?" ॥४२२॥

इन वचनों को सुनकर उनने उस राजा के मुँह की ओर देखा।

जिसका सेठ अधिक विश्वास करता था । जहाँ सभा बैठी थी वहाँ सबसे बडी स्त्री बोली ॥४२३॥

[४२४–४२५]

दहिउ भातु घिउ परतिखु मीठु, आंन जनमु बहिणी किन दीठु ।
हप्पा सेठि तहु घालहु छारु, इसु धूतिह सिउ कहहु भतारु ॥
कहिउ भतारु धूतु निरु जबहि, हाहाकारु अउरु किउ तबहि ।
सभा लोगु छुडु मोणे रहिउ, निय सामिउ तिन्हु खाडइ वहिउ ॥

अर्थ —(इसी समय एक ने उससे कहा,) दही, भात, घी प्रत्यक्ष में मीठे है । अन्य जन्म हे वहिन, किसने देखा है, हप्पा सेठ पर राख डालो और इस धूर्त को ही भर्त्तार (स्वामी) कहो" ॥४२४॥

जब उसने धूर्त को ही निश्चितरूप से स्वामी कहा तब दूसरी ने हाहाकार किया । सभा के लोग तब मौन हो गए और कहा, "अपने स्वामी पर तीनो ही खड्ग चलाओ ॥४२५॥

[४२६–४२७]

जबहि परु अपरपर दुठ, रायपमुह सब जाणहु झूठ ।
सेठि घरणी णर यह जाइसइ, णर भव दुल्लहु णवि पाइसइ ॥
हरतु परतु तिन्हु घालिउ हारि, कूभी णरइ पडी ते नारि ।
झूंठउ बोलि ते णरयहि गई, हम हि तिरिया समु भई ॥

अर्थ —जब दुष्टाओ ने परस्पर वार्त्ता की; तब राजा ने सब कुछ (हप्पा सेठ के वचन को) झूंठा जाना । उन्होने कहा, "यह सेठ और सेठाणी नर्क जाएँगे और दुर्लभ मनुष्य जन्म पुन नही पावेंगे ॥४२६॥

हरते परते उन्होने (इम दुर्लभ मानव जन्म को) हार डाला तथा

स्त्रिया कुंभीपाक नर्क मे जा पडी। झूठ बोलकर वे नर्क गई। हम उन स्त्रियो की भाति (नही) हो गई है ? ॥४२७॥

[४२८–४२९]

भणइ वावणउ तुम्ह अलिय म चवहु, जैसे होइ तुम्ह पिउ तेसौं मुहि करहु ।
लछण वतीसह चरिचिउ अंगु, रूप देखि मोहियइ अनंगु ॥
सिरु थापियो पटोलो ढालि, (विज्जा) वहु रूपिणी सभालि ।
छाडी वावण कला हीणंगु, भयो जिणदत्त सामले अंगु ॥

अर्थ —उस बौने ने कहा, "तुम झूठ मत बोलो जैसा तुम्हारा पति था वैसा ही मुझे करदो।" उसका शरीर वत्तीस लक्षणो से युक्त हो गया जिसे देखकर कामदेव भी मोहित हुआ ॥४२८॥

उसने अपना शिर रेशमी वस्त्र डाल कर ढक लिया तथा वहुरूपिणी विद्या का स्मरण किया। हीन अग बौने की कला छोड़ दी, तव जिनदत्त सावले शरीर का हो गया ॥४२९॥

अलिय ∠ अलीक–असत्य।

[४३०–४३१]

सीस उघाडि घालियउ रालि, मोही सभा सयलु तिहि काल ।
तिहू नारिस्यु कहइ हसंतु, इवहु हुंति तुम्हारउ कंतु ॥
देखि तिरी ते अचरिजु भयउ, चाहहि निरखहि ते विंभई ।
अपरपर ते कहइ जोइ, किछु किछु होइ किछूरनि होइ ॥

अर्थ — शिर उघाड करके तथा पैरो मे राल (रग) डालकर (वह आया) तो उस समय उसका रुप देखकर सारी सभा मोहित हो गई। उसने तीनो स्त्रियो से हँसते हुये कहा, "अव मैं तुम्हारा पति हूँ ॥४३०॥

यह 'देखकर तीनो स्त्रियाँ को आश्चर्य हुआ तथा विस्यित होकर वे उसे ध्याम पूर्वक देखने लगी। वे परस्पर कहने लगी, (हमारा पति) तो यह है कुछ कुछ है और कुछ कुछ नही है (ऐसा विचार करने लगी) ।।४३१।।

[४३२–४३३]

विज्जाहरिय कहत्त हइ बात, सभलि पुहम ताह मुह बात ।
यह विज्जा खेलहु वावलउ, हेम पिउ देव नहीं सावलउ ।।
पुणु पच्चक्खु भयो जिनदत्तु, वत्तीसह लखण संजुत्तु ।
छाडी सावल वण्णी छाय, भई देह सोने की काय ।।

अर्थ —विद्याधरी वात कहने लगी। हे पृथ्वीपति ! उस की बात को स्मरण कर। यह बावला तो विद्या के खेल खेल रहा है हमारा पति तो हे देव ! सोने का सा है। सावला नही है ।।४३२।।

तब जिनदत्त प्रत्यक्ष हो गया तथा वह वत्तीस लक्षणो वाला था। सा-वले वर्ण की छाया छोड दी और उसकी देह सोने की काया हो गई ।।४३३।।

] ४३४–४३५]

विमलामती काछ लडि पडई, सिरियामती पाय पाकडई ।
विज्जाहरि लागी उठि वाह, अवहु छाडी जाही जिणनाह ।।
जेठी वोलइ मोहि छाडि देवल चडइ, दूजी वोलि मोहि मेलि सायर पडिइ ।
तीजी वोलइ छाँडि गयउ तुरंतु, किन पिय समलहु कल्हि की वात ।।

अर्थ — विमलामती दौडकर उसके कच्छ (कटि) से लिपट गई तथा श्रीमती ने उसके पाव पकड लिये। विद्यावरी उठ कर उसकी वाहो से जा लगी और कहने लगी अव आप हे नाथ ! छोडकर न जाँए ।।४३४।।

सबसे वडी वोली, "ये मुझे मदिर मे छोड कर चले गये थे"। दूसरी

बोली "मुझे छोड कर ये समुद्र मे कूद पड़े थे। तीसरी ने कहा 'मुझे सोती हुई छोड कर ये तुरत चले गये थे। हे प्रिय! क्या कल की बातो का स्मरण है? ॥४३५॥

[४३६–४३७]

इहा सयल भोग महि रहिउ, बारह वारिस कष्ट तुम सहिउ।
एह बोलु मति बोलहु झूठ, तुम्हहि कष्टु हमुहि कि मुख दीठु॥
तब जिनदत्त कहइ सतिभाउ, तुम्हहि दुख सुंदरि वहि जाउ।
पाछइ कष्टु गयो फुडु कालु, अब सुख राजु करहु असरालु॥

अर्थ — (स्त्रियो ने कहा) "यहाँ तो हम सकल भोग भोगती रहे और तुमने बारह वर्षों तक कष्ट सहे। इस प्रकार झूठ मत बोलो, तुम्हारे कष्ट क्या हमे तुम्हारे मुख पर दिखाई दे रहे है? ॥४३६॥

तब जिनदत्त ने सत्यभाव से कहा, "हे सुन्दरियो, तुम्हारा दुख बह जाए (नष्ट हो)। कष्टो का स्फुट काल अब पीछे चला गया (लद गया)। अब तुम निरन्तर सुख का राज्य करो ॥४३७॥

[४३८–४३९]

जिनदत्त तिरियनु मेलउ भयो, चिर भवियउ पाउ वहि गयो।
हरस्यो विमल सेठि तिह ठाइ, सइ राजा उठि लागिउ पाइ॥
णरवइ सभा अचंभौ भयो, जिणदत्त कीरति दह दिह गयऊ।
चउसय तीसा चौरही, पंडिय राइसीह णिह कही॥

अर्थ.—जिनदत्त और स्त्रियो का मिलन होगया तथा उन भविको के चिरकाल के पाप दूर हो गये। विमल सेठ उस स्थान पर बडा प्रसन्न हुआ तथा सब राजा के चरणो से लगे ॥४३८॥

राजा की सभा को आश्चर्य हुआ तथा जिनदत्त को कीर्ति दशो दिशाओ मे फैल गई । पंडित राजसिंह ने ये चारसौ तीस चौपाइया कही ।।४३९।।

भविअ ∠भविक – मुक्ती– आकांक्षी, मुमुक्षु

[४४०–४४१]

भणइ राइ यहु किमु सलहियइ, अइसे चरित नु खयरहु किए ।
इसहि नु वर्ण्ण सके सरसुती, भणइ रल्हु यहु केती मती ।।
हकरायउ जो जोइसी सुजाणु, जो जोइसु कौ मुणइ ममाणु ।
पूछइ राउ भले चित सगुणु, सीघर[1] विप्र धरहि तुह लगुणु ।।

अर्थ — राजा कहने लगा, "इसकी किस प्रकार प्रशसा की जाए ! ऐसे चरित तो विद्याधरो ने ही किये है । इसका वर्णन केवल सरस्वती ही बखान कर सकती है । रल्ह कवि कहता है "मेरे मे कितनी बुद्धि है ? ।।४४०।।

राजा ने चतुर ज्योतिषी को बुलाया जो ज्योतिष का प्रमाण विचारता था । राजा ने प्रसन्न चित्त होकर उससे शकुन पूछा और कहा, हे विप्र शीघ्र ही लग्न रखो ।।४४१।।

खयर ∠खचर– विद्याधर
सीरघ ∠शीघ्र १ मूलपाठ सीरघ

[४४२–४४३]

कहइ जौइसिउ लाणी रीती, अपरपर इन्हु वहुल परीति ।
हउ जाणउ जोइस को भेउ, तुम्ह कौ तूसइ देव अलेउ ।।
गोधूलक साहउ रोपियउ, भलौ वार दिनु सोई कहिउ ।
चउरी रई घरे हरे वास, तोरण थाये पूर्ण (पुण्य) कलास ।।

अर्थ :—ज्योतिषी ने कहा, "लाणी की रीति के अनुसार इन दोनों मे आपस मे बहुत प्रीति होगी। मैं ज्योतिष का भेद जानता हूँ, तुम्हारे ऊपर अलेप (वीतराग) देव प्रसन्न हो गये है। ॥४४२॥

गौधूलि मे विवाह निश्चित किया और जो अच्छा वार एवं दिन था वही कहा गया। गहरे हरे बांसों की चौरी रची गई तथा पूर्ण कलश की स्थापना करके तोरण (लगाये गये) ॥४४३॥

लाण — ग्रहण स्वीकार

जिणदत्त का चतुर्थ विवाह

[४४४–४४५]

वाजे पंच सबद गह गहे, ठाठा लोउ मिलि सवु रहे।
कण्ण दिण्णु केकिउ वइसारि, परिणाई विमलामइ नारि॥
नीलामणि मरगजमणि ऊज, पउमराइ[1] मणि अनुवइ दूज।
चंद्रकंति मुत्ताहल भणे, ते सहु दिण्ण दाइजो घणे॥

अर्थ :— जोर जोर से पाँच प्रकार के बाजे वजने लगे तथा लोग उठ कर एक स्थान पर मिले। उसे केकिइ (घोडे ?) पर बिठाकर कर्ण दिया (?) तथा विमलामती नारी जिनदत्त को व्याह दी ॥४४४॥

नीलमणि, मरकतमणि, चमकती हुई पद्‌मरागमणि तथा वैडूर्य, चद्रकात एव जो मुक्ताफल कहे जाते है उन सबको उसने डायजे (दहेज) मे दिया ॥४४५॥

१ मूलपाठ "मउमराइ"

[४४६–४४७]

साहणु वाहणु देस फुछार, अर्थ द्रव्य अफौ भंडार।
छत्ता लव चमर वहु थापि, चाउरंग चल दीनिउ थापि॥

चारौं तिरिय बुलाई पास, पुणु विवाण चडियो घण आस ।
घालिवि अरथु रयणु सवु लयो, उघइवि उवहृदत्त तिणु गयउ ॥

अर्थ — राजा ने साधन, वाहन तथा कुछारु देस दिये तथा अर्थ (द्रव्य) का तो मण्डार ही दिया । छत्र, लव (दण्ड), चमर आदि बहुत सी वस्तुयें दी तथा चतुरगिणी सेना भी उसको (सौप) दी ॥४४६॥

तव जिनदत्त ने चारो स्त्रियों को बुलाया और घनी आशा के साथ उन्हे विमान पर चढाया । उसमे अर्थ तथा रत्न आदि सव डाल लिये और तृप्त होकर वह सागरदत्त के पास गया । ॥४४७॥

आलव ∠ आलम्व – आश्रय, आधार

ऊघय ∠ आघय– तृप्त होना

[४४८–४४९]

उवहिदत्त जव दीठउ जाइ, गलिय नाक सडि गय पुण पाइ ।
दूसिउ अगु पीव की गधि, लागी पापी कहु कुठु व्याधि ॥
उवहिदत्त मरि नरयह गयउ, द्रव्य आपुणौ जिणदत्तु लयउ ।
ले धणु चपापुरि सो गयउ, पुणु घरि चलिवे को मनु भयउ[1] ॥

अर्थ — जव उसने आकर सागरदत्त को देखा तो उसका नाक गल गया था एव पाव सड गया था । उसके सभी अग दूपित हो गये थे तथा पीप की दुर्गन्धि आरही थी क्योंकि इस पापी को कुष्ठ रोग लग गया था ॥४४८॥

सागरदत्त मर कर नर्क गया । जिनदत्त ने अपना द्रव्य उससे ले लिया । वह धन लेकर चपापुरी गया तथा अपने घर जाने की उसके मन मे इच्छा हुई ॥४४९॥

१ मूलपाठ (भयो)

[४५०-४५१]

(सम) द्यौ राउ अंतेउर घणी, समद्यउ विमल विमला सेठिणी ।
समद्यउ नायरु नयरु कहे लोग, जिणदत्त च(लइ) करइ जणु सोगु ।।
लए तुरंग मोल दह लाख, मइगल छ-सहस्त्र करह असंख ।
सहस बत्तीस जोडरिण ··· चाउरंगु वलु वलु दीन पवरणु ।।

अर्थ :— (जिनदत्त को) राजा के अन्त पुर ने सघन रूप से विदा दी । विमल सेठ एव विमला सेठाणी ने भी उसे विदा दी । नगर निवासियो ने विदा दी तथा (ज्योही) जिनदत्त चला लोग शोक करने लगे । ।।४५०।।

उसने दश लाख के घोड़े, छह हजार मदगलित हाथी तथा असख्य ऊँट मोल लिये । वत्तीस हजार . ...। इस प्रकार उसने अपनी शक्ति प्रमाण चतुरगिनी सेना जोड़ ली (इकट्ठी करली) ।।४५१।।

नायर – नागर

[४५२-४५३]

पाइक धाणुक हुइ दह कोडि, पयदल चलिउ रायसिंहु जोडि ।
छत्तधारि वुसि गिरि जिन्हु पाहि, ते असंख रावत दल माहि ।।
जिणदत्त चलतहि कंपइ धरणि, उत्थइ धूलि न सूझइ तरणी ।
हाकि निसाण जोडि जणु हुए, अपुनइ देश पलाणे घणे ।।

अर्थ — पैदल एव धनुर्धारी दश करोड थे । रायसिंह कवि कहता है, वह सेना जोड़ कर पैदल चला । जिनके छत्रधारी राजा पावो मे गिरते थे, ऐसे रावत दल मे असख्य राजा थे ।।४५२।।

जिनदत्त के चलते ही पृथ्वी कापने लगी । इतनी धूल उठने लगी कि सूर्य नही दिखने लगा । जव समस्त निशानो को जोड कर उन पर चोट की गई तो वहुत से स्वत. ही अपने देश भाग गये ।।४५३।।

[४५४-४५५]

कउरणइ गरहिउ उठवहि थाट, क(उरणइ) राय दिखालहि वाट ॥
दूसहु राउ ण को अगवइ, नामु कहइ जइनी चक्कवइ ॥
भाजहि नयर देप विमल , पर चक भउ नवि असिऊल सहहि ।
आले कटक किए वहु रोल, अरिमडल मणि हल्ल कलोल ॥

अर्थ —उसके थाट (वैभव) के आगे कौन राजा गर्व कर सकता था ? तथा कौन राजा उसे मार्ग दर्शन करा सकता था ? उसके दुस्सह तेज को कोई भी सहन नही कर सकता था, और उसे जैन चक्रवर्ति का नाम लेकर कहने लगे थे ॥४५४॥

नगर एव देश के लोग भागने लगे तथा शत्रु भी उसकी तलवारो का वार नहीं सहन कर सकते थे । उसकी सेना भारी शोर करती हुई आगे वढी जिससे शत्रुमडल के मनमे वह शोर हिल गया (व्याप्त हो गया) । ॥४५५॥

[४५६-४५७]

ठा ठा करत जोडि नीसरइ, जाइति मगध देश पइसरहि ।
परिजा भाजि गई जहि राउ, वेढिउ सो वसतपुर ठाउ ॥
परिजा (भाजी) गढह महत, लागी पउलि तिऊ भेजत ।
भयउ ढोकुलि अरु गोफणी, रचे मारु कहु सीसे घणी ॥

अर्थ —ठाठा करती हुई सेना चली और वह मगध देश मे पहुच गई । सारा वसतपुर नगर सेना से वेप्टित होगया । प्रजा (भागकर) वडे किले मे चली गई । पौलि लग गई (वद हो गई) और यत्र खडे हो गये । ढीकुली (ढेकुली) और गोफणी हुए (लगाए गए) और मार करने के लिए अनेकानेक शिरस्त्राण रचे गये ।।५६-४५७॥

वेढ ∠ वेष्टिय – आच्छादित करना ।

पौलि ∠ प्रतोली – मुख्य द्वार ।

ढोकुली–गोफणी – पत्थर फेकने के यत्र ।

सीस – शीर्षक – शिरस्त्राण ।

[४५८–४५६]

कोट पा·····(उ)त्तंग अपार, परिखा पूरिय जलह् अपार ।
गढह् सेष परिजा आकुली, वाडा लेहि छत्तीसह् कुली ।।
चंदसिखर (बो)लइ ज़ु पचारि, राखहु गढ खाडे की धार ।
जव लगु मोहि पासु दोइ बाँह, को चांपिहइ कोट को छांह ।।

अर्थ —कोट के (पास?) ऊ ची प्राकार थी । परिखा (खाई) को अपार जल से भर दिया गया । शेप प्रजा गढ मे व्याकुल थी और छत्तीसो कुली (जाति) के लोग वाडा ले रहे थे (अदर से घरो को वद कर रहे थे या सुरक्षित थे) ।।४५८।।

(वहाँ का राजा) चद्रशेखर ललकार कर कहने लगा । गढ की रक्षा भी तलवार की धार पर करो । जव तक मेरे पास दो हाथ है तव तक कोई (परकोटा–किला) की छाया पर भी पैर नही रख सकता है । ।।४५६।।

[४६०–४६१]

पूर्व प(उलि) राइ सइ राख, परिग्गहु भड खत्रीहि असंख ।
दक्षिण पउलि चडइ सुहणालु, जो परिमंडल दल खय कालु ।।
(उत)र पउलि निकु भ चदेल, जे अगिलेह ण मानहि गेल ।
पछिम दिस जाय वभड वडहि, पडतव जडुहव · · रहि ।।

(चारो दिशाओ मे मोर्चा वन्दी की गई) पूर्व की पौल की रक्षा

राजा ने स्वय अपने ऊपर ली, जिस पर असख्य क्षत्रियो का भृत्य वर्ग नियुक्त हुआ। दक्षिण पौल के ऊपर सुहनाले (तोपें) चढने लगी, जो शत्रु-सेना-मडल के लिए क्षय-काल स्वरुप थी। ॥४६०॥

उत्तर पौल पर निकुभ चदेल खडे हुये जो अन्य को मार्ग देने को तैयार न थे। पच्छिम दिशा की ओर यादव भट पड रहे (?) थे जो कि वज्र पड़ने पर भी [वही जमे] रहते थे ॥४६१॥

[४६२–४६४]

अवरु असंखइ वहुत्तइ मिलिय, रखहि गढु छत्तीसउ कुलीय ।
चंदसिखिर किउ मंतु तुरतु, घालि (दूत) किन पूछइ वातु ॥
मत्री महामत्र हकराइ, उसरि राजा वात कराइ ।
अहो मंत तू भेटहि जाइ, किह कारणि ग उ आइ ॥
पाहडु लयउ रयणु भरिथालु, भेटणि चालिउ दूतु सुहिणालु ।
अवरु पंचदश लइय हकारि, जिणदत्तह कटक मझारि ॥

अर्थ— और भी वहुतेरे असस्य (योद्धा) मिल गये और छत्तीसो कुली (जाति) गढ की रक्षा करने लगी। शीघ्र ही चन्द्रशेखर ने मत्रणा की। (उन्होने कहा) दूत भेजकर क्यो न पूछो कि क्या वात है ? ॥४६२॥

राजा ने मन्त्रियो तथा महामत्रीयो को वुलाया, तथा अवसर (राज-सभा) मे वात कराई। (राजा ने मत्री से कहा) "अहो मत्री, उससे जाकर भेंट करो और पूछो कि किस कारण वह आया है ?" ॥४६३॥

पाहुड (उपहार) के रुप मे रत्नो को थाल मे भर कर और वह सुहिणाल दूत भेंट करने के लिये चला। पन्द्रह जनो को और वुला लिया वह जिनदत्त की सेना मे चला गया ॥४६४॥

उसर/ओसर /अवसर – राजसभा
पाहुउ /प्राभृत –उपहार

चन्द्रशेखर राजा के दूत को जिणदत्त से भेंट

[४६५–४६६]

जाइ पहुत्तउ सिंह उवारि, हाकिउ कणइ दंड परिहारि ।
को तुम पूछइ कह तुरंतु, जइसइ राउ जणावउ वत्ति ।।
इहा जु चंदुसिखरु भडराउ, तुहि वरु मागइ भेंट पसाइ ।
सीलवंत गुण गणह संजुत्त, हउ तहु केरउ आयउ दूतु ।।

अर्थ —वह सिंह - द्वार पर जाकर पहुँचा तो प्रतिहारी ने स्वर्ण-दड हाँका (हिलाया) । उसने दूत से पूछा, "तुम कौन हो शीघ्र वताओ जिससे मै राजा के पास जाकर वात वताऊँ । ।।४६५।।

(दूत ने कहा), " यहाँ जो चद्रशेखर नामका भट (योद्धा) राजा है, वह आपसे भेंट की कृपा चाहता है। वह शीलवान एव गुणो से सयुक्त है, मैं उसका दूत आया हूँ ।।४६६।।

[४६७–४६८]

भीतरि वात कहहि पडिहार, सिरघ राइ जणावइ सार ।
पाहुड ल वहु रयण अहइ, पूछिउ चंदसिखर वहु कहइ ।।
आणि भिटावहि वोलिउ राउ, गउ पडिहारु दूतु के ठाउ ।
राजा तुम्ह कउ कियउ पसाउ, भीतरि दूतु अवधारहु पाउ ।

अर्थ — प्रतिहारी ने भीतर (जाकर) वात कही तथा शीध्र राजा को वात वता दी । वह वहुतेरे रत्न उपहार-स्वरुप लिए हुए है, और मैने पूछा तो वह अपने को चद्रशेखर राजा का (दूत) वतलाता है ।।४६७।।

राजा (जिनदत्त) ने कहा, "उसे लाकर मिलाओ। प्रतिहार दूत के स्थान पर गया और कहा, "राजा ने तुम पर कृपा की है। हे दूत, तुम भीतर पधारो ॥४६८॥

पाहुड ∠ – उपहार। सीरघ ∠ शीघ्र

[४६९]

भीतरि दूतु गयउ सुहिणालु, आगिउ धरिउ रयण भरि थालु ।
दीठउ दूतु राउ तिहि ठाउ, देवि सीसु धरि लगिउ पाउ ॥

अर्थ :—सहिणाल (नाम का वह) दूत भीतर गया और (जिनदत्त के) आगे रत्नो का भरा हुआ थाल उसने रख दिया। दूत ने राजा को वहाँ देखा तो उसे विश्वास दिलाकर उसने (राजा के) चरणो को स्पर्श किया ॥४६९॥

[४७०]

वस्तु बंध

दूतु पभणइ णिसुण नरनाह ।
को परिजा गजियइ, काइ देव घर पलइ कीजइ ।
काइ नयर चउदिसहि दिस रहिउ, कासु उवरि देव कोहु कीजइ ॥
तुम समेरणि अभिडत, सा सीमा अम्हि जिण हीण ।
भणइ दूत तए नरनाह, फुडु लेउ दंडु हडु लीणु ॥

दूत कहने लगा, "हे नरनाथ सुनो। हे देव, आप क्यो प्रजा को नष्ट कर रहे हैं और किम कारण घर मे प्रलय कर रहे है ? किम कारण नगर के चारो ओर आपने घेरा डाला है ? और किम के ऊपर हे देव! आप क्रोध कर रहे हैं ? यदि हम आपसे लडें तो हे स्वामी ! हम जैन धर्म से विमुख होंगे। दूत ने कहा हे नर नाथ ! इसलिये मै स्फुट रूप से स्पष्ट दड लेकर घर चलिये। ॥४७०॥

पलइ ∠ प्रलय। उवरि–ऊपर

[४७१-४७२]

भणइ दूत णरणाह सुणेहि, परजा बंध म अपजस लेहि ।
महि सिहु जूझु समरि हुइ काहि, लेहि दंडु सामिय घरि जाहि ।।
ण लिउ दंड णु देस कुठारु, ना लिउ सहणु अरथु भंडारु ।
तुम्हरइ णयरु जि वणिवरु आह, सो मोहि देउ जीउदेव साहु ।।

अर्थ — दूत ने कहा, "हे नरनाथ ! सुनिये प्रजा को बाध कर अपयश न लीजिए । मुझ से युद्ध मे लडने से क्या होगा । हे स्वामी ! (आप) दड लेकर घर जाइए ।।४७१।।

(जिनदत्त ने कहा,) "मैं दड नहीं लूंगा न देश कोठार (खजाना) लूंगा और न मैं सहन तथा अर्थ भण्डार लूंगा । तुम्हारे ही नगर मे जो वणिकवर है उस जीवदेव साहु को मुझे देदो" ।।४७२।।

[४७३-४७४]

धम्मनिहाणु जीवदेउ सेठि, अरु नित नवइ पंच परमेठि ।
नयरहि मंडणु सुद्ध सहाउ, परुतसु जियत न अप्पइ राउ ।।
भणइ राउ किम पहिले चऊ, आजि[1] जु नयरहि कुइ लावऊ ।
आजु ण सेठि आउ मो ठाउ, कल्हि नयरि करु बांधउ राउ ।।

अर्थ — (दूत ने कहा) "वह जीवदेव सेठ धर्म निधान है तथा नित्य प्रति वह पच परमेष्ठि को नमस्कार करता है । वह नगर का मडन और शुद्ध स्वभाव का है पर उसे राजा जीते जी नही अर्पित करेगा । ।।४७३।।

राजा (जिनदत्त) ने कहा, फिर पहिले कैसे कहा ? । आज उसे नगर मे कोई लाओ । यदि आज सेठ मेरे स्थान पर नही आया तो कल नगरी और राजा को बाँधूगा ।।४७४।।

नयरी∠नगरी १ मूलपाठ 'कालि'

[४७५–४७६]

वाहुडि दूतु वोलइ ए वयण, निसुणहि चद सिखर भड रयण ।
अकहा कहा किम कहियइ वेठि, मांगहु देव जीवदे सेठि ।।
वोल चदसिखिर भड साहु, अरे दूत किन गई तुह जीह ।
वरु किनु वांधइ वाल गोपाल, सेठि आफि जीवउ के काल ।।

अर्थ — वह दूत वापिस लौट कर यह वचन वोला, "हे भटरत्न चन्द्रशेखर ! सुनो । यहाँ वैठ कर न कहने योग्य बात क्यो कहते हो ? वह हे देव ! जीवदेव सेठ को माँग रहा है । ।।४७५।।

भटसाधु चन्द्रशेखर वोला । अरे दूत ! तेरी जीभ क्यो नही गई ! वह भले ही (मेरे) वाल गोपाल को क्यो नही वाँधले, सेठ को देकर कितने समय तक मैं जीऊँगा ? ।।४७६।।

वाहुड ∠ व्याघुट – लौटना, वापस होना

[४७७–४७८]

लापड दूतु कढाउ खालु, अरु वाहु तु तरु फाडउ गाल ।
वज्र पडउ तो दूतु काल, आफि सेठि जीवउ के काल ।।
वरु लेउ साहणु वाहणु झाडि, वरु किनु वघइ दइ मुहि धाडि ।
वरु किनु नयरि करइ वइ कालु, आफि सेठि जीवउ कइ काल ।।

अर्थ — " हे लपट दूत मैं तेरी खाल निकलवा लूँगा और भुजाओ से तेरे गाल फाड दूँगा । रे दूत ! तुझ पर काल वज्र पडे, सेठ को देकर मैं कितने समय तक जीऊँगा ? ।।४७७।।

भले ही मेरे समस्त साहन-वाहन लेलो, भले ही क्यो न मुँह मे ढाढा देकर मुझे वदी कर लो, भले ही क्यो न नगरी को समाप्त कर दो, पर सेठ को अर्पित कर मैं कितने समय तक जीऊँगा ? ।।४७८।।

लापड ∠ लपट । के ∠ कियत– कितना

[४७९–४८०]

साचउ चंद सिखर वड लवइ, वरु किनु नयरहं कुइला ववइ ।
वरु किनु देसु निरालउ जाल, सेठि श्रफि जीवइ कइ काल ।
` ल रहे सेठ जइ जाण, तेउ सेठिणि सिहु कहइ नियाण ।
रायण्हु मरणु ठाणु छइ भयउ, `कारणु तिन्ह रणु माडियउ ।।

श्रर्थः—चन्द्रशेखर बहुत सत्य कह रहा था, भले ही क्यो न नगर मे कुचला बोदे श्रौर भले ही क्यो न देश मात्र को जला दे, सेठ को देकर मैं कितने समय तक जीऊँगा ! ।।४७९।।

जब यह सेठ को ज्ञात हुश्रा.. तब वह सेठानी से निदान कहने लगा। "राजा का भी मरने का समय श्रागया है, कारण यह है कि उन्होने (शत्रुने) युद्ध की तैय्यारी की है" ।।४८०।।

लव ∠ लय – कहना, बोलना,

जीवदेव जिनदत्त मिलन

[४८१–४८२]

पुणु जीवदेउ कहत हियइ ए वयण, पूत सोगु हम फूटे णयण ।
(सुत) विदेसु हमु श्रायो मरण, सेठिण देइऐ कउ करणु ।।
भणय सेठि रे दइय निकिठ, एक वार जिणदत्त न दिठ ।
तवु सेठिणि समुझावण लियउ, करि श्रवसाण णाह दिठ हियउ ।।

श्रर्थ — फिर जीवदेव श्रपने हृदय मे यह वचन कहने लगा, "पुत्र के शोक मे हमारे नयन फूट गये है। पुत्र जब विदेश मे है तब हमारी मृत्यु श्राई है, सेठानी देखो श्रब क्या करना चाहिये" । ।।४८१।।

सेठ ने (फिर) कहा, "दैव ही वडा निकृष्ट है, उसने एक वार भी जिनदत्त को नही दिखाया। तव सेठानी उसको समझाने लगी "हे नाथ अवसान के समय हृदय को दृढ करो ॥४८२॥

[४८३–४८४]

तूटउ इ सामिय दुह तणउ, अवसु निवेदिउ' जिउ आपुणउ ।
अव जिण सरणु अउर नहीं कोइ, जो वइ सो सामिय होइ ॥
फुरइ णयणु अरु चित्तु गहगहइ, जाणउ पूतु आगमणु कहइ ।
पर (इह) सकट दीसइ सोइ, जो भावइ सो सामी होइ ॥

अर्थ — "हे स्वामी (अपने दोनो) का दुख टूटा हुआ है (दूर हुआ-चाहता है) मैं अपना जी (विचार) अवश्य निवेदन करुंगी। अव तो जिनेन्द्र भगवान के अतिरिक्त कोई शरण नही है। हे स्वामी! जो (भगवान) ने देखा है वही होगा" ॥४८३॥

"आँखें फडकती है तथा चित गदगद (पुलकित) हो रहा, मानो यह सब पुत्र-आगमन कह रहे हो। किन्तु सामने वह सकट दिखता है, इसलिये जैसा परमात्मा को स्वीकार होगा, हे स्वामी! वैसा ही होगा ॥४८४॥

[४८५–४८६]

हमु कारणि ण मारवइं लोगु, मरउ पूतु ज घरि सोगु ।
इय चिंतेवि दुविह सन्नासु, ले विणु चालिय पर दल पासु ॥
सेठिहि चलित नु इ राउ, नयर लोगु चित भयउ विसमाउ ।
सेठि सघात बहुत जण चलहि, पुणु जिणदत्त कटक पइसरइ ॥

अर्थ — "हमारे कारण लोगो को वे मत (न) मारे। (क्योकि-जिसका) पुत्र मरा (उसी के घर मे शोक हुआ। इस प्रकार चिन्ता

करते हुये दौनो दुविधा मे पडे। शत्रु की सेना के पास (लिए जाने) के लिए चले ॥४८५॥

सेठ के चलते समय राजा नगर के लोगो के भी चित मे विस्मय (दुख) हुआ। सेठ के साथ वहुत से व्यक्ति चले और फिर वे जिनदत्त की सेना मे प्रविष्ट हुए ॥४८६॥

मूलपाठ 'माणरवइ"

[४८७–४८८]

सावधाण किउ दिठु चितु सेठि, लागिउ सुमरणि मणु परमेठि ।
इहि (उव?) सग्गहि जइ उवरहि, तउ आहारू तबह कि करहं ॥
पइठिउ कटकह वहू जण सहिउ, णइ जाइ राइ सिउ कहिउ ।
तउ जिणदत्त भणइ मुहु जोइ, वहुले मिलियउ आवइ .. ॥

अर्थ —सेठ ने अपने चित्त को सावधान एव दृढ किया तथा पच परमेष्ठि का मन मे स्मरण करने लगा। (उसने सकल्प किया,) "यदि इस उपसर्ग से मैं उवर जाऊँगा तो मै किसी तपस्वी को अवश्य अहार दूँगा" ॥४८७॥

वहुत से व्यक्तियो के साथ वह सेना मे गया और वहाँ जाकर राजा से निवेदन किया। फिर जिनदत्त उसका मुख देखकर कहने लगा, "बहुत से व्यक्ति मिलकर मिलने आए है" ॥४८८॥

[४८९–४९०]

जो हइ सेठि धम्मु कौ निलउ, सो यहु गीवदेउ कुलतिलउ ।
भणइ राउ महु जी वत काइ, वापु माइ जिहि आवतु पाइ ॥
नेत पटोली पथ पसारि, आवइ सेठि अवरू तहि नारि ।
सिहासण दुइ रयणह जडिय, वइसइ आणि सेठि कहु धरिय ॥

अर्थ —"जो सेठ धर्म का निलय है वह जीवदेव, जो कुल का तिलक है, यही है। राजा ने कहा, "मेरे जीते होने से क्या हुआ यदि मेरे मा बाप पैरो (पैदल) आरहे हैं ?" ॥४८६॥

मार्ग मे उसने नेत्र तथा पटोली (दो प्रकार के रेशमी वस्त्र) फैलाये, क्योकि वहा सेठ तथा उसकी स्त्री आ रही थी। रत्नो से जडे हुए दो सिंहासन भी उसने सेठ (तथा सेठानी) के बैठने के लिए ला रक्खे ॥४९०॥

[४९१–४९२]

जाइ पहूते राइ अथाण, बोलत बोल न कांणहि काण ।
ता जिनदत्तह पुछण लए, काहे सेठि मउण लइ रहे ॥
इह परदेश णिरजन जाणु, अरुसन सनु हुइ लयउ अवसाणु ॥
इब सुव दुख अवरू तुम्ह मागियउ, वमगु जाणि मउणवउ लियउ ।

अर्थ —वे राजा के आस्थान (सभा मडप) पर पहुँचे किन्तु मर्यादा ही मर्यादा मे (रहने के कारण) वे कुछ नही वोले। इससे जिनदत्त पूछने लगा "हे सेठ! तुमने मौन क्यो ले रखा है" ? ॥४९१॥

सेठने कहा– इसे निर्जन प्रदेश जानो और सनसन (सन्नाटा) होने का कारण मैंने अवसान ले लिया है। एक सुत का दु ख है और (दूसरे) तुमने हमे माँग भेजा है, अत उपसर्ग समझ कर हमने मौन व्रत ले लिया है ॥४९२॥

अथाण ∠ आस्थान – आस्थान – मडप, अथाई ।

[४९३–४९४]

भणइ राउमति सेठि डराहि, तुम्ह पीडे हमु काजु ण आहि ।
जहि कइ हियइ पच परमेठि, ते तुम्ह आहि जीवदौ सेठि ॥

तवहि विसूरिउ वोलइ सेठि, हउ आराहउ निरु परमेठि, ।
निछइ देउँ देइ महि मुनिउ, अजरु अमरु जिण आपमु सुणिउ ।।

अर्थ —राजा कहने लगा, हे सेठ तुम डरो मत । तुमको पीडा (दु.ख) देने का हमारा कोई कार्य (प्रयोजन) नही है । जिसके हृदय मे पच परमेष्ठि हे, जीवदेव सेठ तुम ऐसे हो ।।४६३।।

तव सेठ विसूर कर (चिता रहित होकर) वोला, "मैं तो निश्चित रूप सेपच परमेष्ठि की आराधना करता हूँ । निश्चय ही मैं पृथ्वी के मुनियो को देय (अहार) देता रहा हूँ और अजर-अमर जिनागम है, उन्हे मैं सुनता रहा हूँ ।।४६४।।

[४६५–४६६]

राजनु पूनु गयउ पर तीरु, तहि दुख सूकउ सयल सरीर, ।
तुम्ह वाधे हमु नाही दोषु, दुख वढे हमु पाउ·मोष ।।
तवहि राउ वोलत हइ जाणि, एते कटक लेहु पर जाणि ।
मोहि नखतु जइ राजनु होइ, इइं होइ तरु आवइ सोइ ।।

अर्थ — "हे राजन, मेरा पुत्र विदेश चला गया, उसी के दुख से सारा शरीर सूख गया । तुम यदि मुझे वदी करो तो इसमे हमे कोइ दुख नही होगा (हमारा कुछ विगडता नही है) क्योकि दुख की वृद्धि से तो हमे मोक्ष (छुटकारा) मिल जावेगा ।।४६५।।

तव राजा ने (यह सब) जानकर कहा, इस सारी सेना से शत्रु को जान लो । 'यदि मेरे समान कोई राजा है, तो वह नर श्रेष्ठ यहाँ क्यो नही आता है । ।।४६६।।

[४६७–४६८]

तउ सेठिणि वोलिउ सतभाउ, जइ पहु अवहोइ पसाउ ।
किछु परि जाणउ देउ निरुत, तुम्ह अइसौ छौ म्हारउ पूतु ।।

जिणदत्त गहिवरु श्रायौ हियउ, दीठउ माइ वापु विलखियउ ।
उठित पीद लोटणी कराइ, चारउ तिरिया लागहि पाइ ।।

अर्थ —तव सेठानी ने सत्य भाव से कहा, "यदि, हे प्रमु ! अब (आपकी) कृपा हो जाए । तो हे देव! हम कुछ निरुत जाने (कहें) क्योकि तुम्हारे ही ऐसा हमारा पुत्र था ।।४९७।।

जिनदत्त का हृदय पुलकित हो उठा और माँ बाप को देखकर वह रो पडा । वह उठकर उनके पाँवो मे लोटने लगा तथा उसकी चारो स्त्रिया भी उनके चरणो मे लग गई ।।४९८।।

[४९९–५००]

जणणी चलणु णमिउ अठगु, पाय पखालित परिसिउ अगु ।
गहविर बोलइ साहस धीरु, अब महु सुद्धउ भयउ सरीर ।,
सेठिणि गहवरि आयउ हियउ, पुणु आपणउ उछगह लियउ ।
जायो पूतु आज सुपियार, खीर पवाह वहे थण हार ।।

अर्थ —उसने माता के चरणो मे साष्टाग नमस्कार किया तथा पाँवो को पखार (धो) कर (उसके) अगो का स्पर्श किया । साहसी जीवदेव वोला, "अब मेरा शरीर शुद्ध हो गया ।।४९९।।

सेठानी का हृदय भी भर आया, फिर उसने उसे अपनी गोद मे ले लिया और कहा हे प्रिय! मानो तुम आज ही पैदा हुये हो और यह कहते हुये उसके भारी स्तनो से दूध की धारा वह निकली ।।५००।।

पियार ∠ प्रिय + तर ।

[५०१–५०२]

मेरे जिणदत्त पूरिय आस, तुझ विण पूत भई जु णिरास ।
खण इकु वापहि ना वीसरइ, अनु दिनु जिणदत्तु जिणदत्तु करइ ।।

छाडे वापह भोग विलास, पान फूल भोजन की श्रास।
रातहि णीद न दिवसह भूख, तुम्ह विण पूत सहे वहु दुख ॥

अर्थ — वह कहने लगी, हे जिनदत्त ! तुम मिल गये और तुमने मेरी आशाओ को पूरा कर दिया। हे पुत्र ! तुम्हारे विना मैं निराश हो गई थी एक क्षण भी तुम्हारा वाप (तुम्हारा-स्मरण) नही भूलता था। वे प्रति दिन जिनदत्त २ करते रहते थे ॥ ५०१ ॥

तुम्हारे वाप ने सब भोग विलास छोड दिये थे तथा उन्होने पान, पुष्प एव भोजन की आशा छोड रक्खी थी। न रात को नीद आती थी न दिन मे भूख। हे पुत्र! तुम्हारे विना हमने बहुत दु.ख सहे ॥५०२॥

[५०३-५०४]

भए वधाए हाउ निसाण, चंदसिखर आए अगवाण।
उछली गुडी सलहहि भाट, नेत पटोले छाई हाट ॥
इम आणंदे गए अवास, इंछित मानहि भोग विलास।
वहुल दाण चउ संघ कराइ, दुही दीण सव रहे अघाइ ॥

वधावे हुए और पौसौ (धौसा) पर चोट पड़ी तथा राजा चन्द्रशेखर उसकी आगवानी करने आए। गुडी उछली तथा भाटो ने स्तुति की वाजार नेत्र एव पटोर से सजाये गये ॥५०३॥

इस प्रकार आनन्दित हो कर जिनदत्त अपने निवास स्थान पर गए तथा मनवाछित भोग विलास करने लगे। चारो सघों को वहुत सा दान करने लगे। तथा दीन और दुखी लोग (उनके दानो से) तृप्त होकर रहने लगे ॥५०४॥

नेत ∠ नेत्र – एक प्रकार का रेशमी कपडा
पटोर ∠ पटकूल– एक प्रकार का रेशमी कपडा

गृहस्थ जीवन

[५०५-५०६]

चंदसिखर अरु जिणदत्त राय, राजु करहु वसंतपुर ठाउ ।
एक चित्त (दुव)[1] रहिय सरीर, परिजा पालहि दोउ वीर ॥
विमलमती सुउ विमलु उपण्णु, एकु सुदत्तु जयदत्तु पसण्णु ।
सुप्पहु मइमेहा धुउसती, ए जाए हइ सिरियामती ॥

अर्थ — राजा चद्रशेखर एव जिनदत्त दोनों वसतपुर मे राज्य करने लगे । दोनो एक चित्त दो शरीर होकर रहने लगे और दोनो वीर प्रजा का पालन करने लगे ॥५०५॥

विमलमती से सुन्दर पुत्र उत्पन हुए: एक सुदत्त एव दूसरा जयदत्त तथा श्रीमती से सुप्रभ, मतिमेध एव ध्रुवसती उत्पन हुए ॥५०६॥

१ मूल पाठ-"देख"

[५०७-५०८]

करहि राजु भोगहि परठइ, नीत पणीत सतीण भए ।
जीवंजसा जीवदेउ साहु, तउ करि लहिउ सग्गवर ठाउ ॥
विज्जाहरि जायउ सुक्केउ, अरु जयकेतु सु गरुडकेउ ।
गुणमित्तु जयमित्तु मनभावती, दविणमित्तु भयो विमलासती ॥

अर्थ — (जिनदत्त) राज्य करते हुए भोगो में प्रस्थापित हो गये । और नित्य प्रति उन मे सतृप्त होते गये । (उसके माता एव पिता) जीवजसा और जीवदेव साहु ने तप करके श्रेष्ठ स्वर्ग मे स्थान प्राप्त किया ॥५०७॥

विद्याधरी स्त्री से सुकेतु, जयकेतु, एव गरुडकेतु उत्पन्न हुये तथा

विमलासती (शृंगारमती) से गुणमित्र, जयमित्र, मनभावती तथा दविणमित्र, उत्पन्न हुये ॥५०८॥

[५०९–५१०]

वणिवरु कुलि जिणदत्त उप्पण, पाछै राजु भयो परिपुण्ण।
भवियहु कऊण अचंभौ लोइ, पुन्न फलह किं किं नउ होउ ॥
जं ज पुहमिहि दीसइ चंगु, तं तं धम्मह केरउ अंगु।
जं जं किं पि असुदरु हवइ, तं तं पावह फलु जिणु कहइ ॥

अर्थ — जिनदत्त ने वणिक् के घर जन्म लिया लेकिन पीछे वह राज्य मे परिपूर्ण हुआ। लेकिन हे भविको! इसमे कौनसा आश्चर्य है? पुण्य से क्या क्या नही होता (कौन कौन से फल नही प्राप्त होते)? ॥५०९॥

जो जो पृथ्वी पर सुन्दर दिखता है, वह वह धर्म का अग है, और जो जो कुछ भी असुन्दर होता है, वह वह पाप का फल है— ऐसा जिनेन्द्र भगवान् का कथन है ॥५१०॥

[५११–५१२]

जिणवरु धम्मु निछम्मु अभोइ, सग्ग मोख वहु कारणु होइ।
राजभोग किर केतो माति, निछउ पालहु चइवि भराति ॥
उक्क वडण वइराइ निमित्तु, लहिवि भोय संसारह वित्तु।
राजु देवि जिणदत्तह सव्वु, चंदसिखरु तपु लाग्यो भव्वु ॥

अर्थ :— जिनेन्द्र भगवान का धर्म निश्छद्र और अभोग (भोग रहित) है इसलिये स्वर्ग मोक्ष का भी कारण है। राज्य भोग की कितनी ही सीमा हो (जितना ही परिमाण हो) निश्चय ही भ्राति का त्याग कर (उस धर्म का) पालन करो ॥५११॥

उल्कापात के निमित्त से भोग ग्रहण को ससार की स्थिति को वढाने वाला जानकर उसे वैराग्य हुआ तथा जिनदत्त को समस्त राज्य देकर (राजा) चद्रशेखर भव्य तप करने लगा ।।५१२।।

निछम्म ∠ रिगच्छम ∠ निश्छद्रमन – निप्टकपट,
किर ∠ किल । चइ ∠त्यज – त्याग करना माया रहित
वइराइ – विराग । उक्क ∠ (उल्क) –लोभ, सुखेच्छा वासना
वडरण ∠ पतन । भोय=भोग

मुनि वंदना के लिये प्रस्थान

[५१३–५१४]

पाछइ राजु करइ जिरणदत्तु, परिवारहृ सो ह्यिउ महतु ।
सहि वइठे जहि वाल गोपाल, श्राइत वात कहा वरणवाल ।।
देव समाहिगुप्त मुनि श्राइ, सीलवतु जसु शुद्ध सहाउ ।
फूली फली वरणसई देव, रणर सुर खयर करहि जसु सेव ।।

श्रर्थ — पीछे श्रकेला जिनदत्त राज करने लगा तथा श्रपने परिवार के सहृदय से महान हो गया । एक दिन जव वह वाल गोपाल के साथ वैठा हुश्रा था तो वनपाल ने श्राकर यह बात कही ।।५१३।।

"हे देव ! एक समाधिगुप्त नामके मुनि श्राए हुए है जो शीलवत हैं श्रौर जिनका शुद्ध स्वभाव है । उनके कारण वनस्पति फल फूल गई है तथा जिसकी सेवा मनुष्य, देव श्रौर विद्याधर करते हैं ।।५१४।।

खयर ∠ खचर – श्राकाशगामी, विद्याधर ।

[५१५–५१६]

जिरणदत्त सुरिणउ गुरह जवु राउ, सात पाय धरि परिरणामु ।
पुरिण श्राणद निसाण दिवाइ, सिउ परिवारह वदणु जाइ ।।

जाइवि दीठे मुणिवरु पाइ, करि तिसुधि णिरु लागउ पाइ ।।
तुम्हहिन वंदन सक्कइ कोइ, जरा मीचु तुम्हि घाली खोइ ।।

अर्थ — जिनदत्त ने जब यह सुना और जान लिया कि (उसके) गुरू (आए) है। उसने अतत. सात पैंड चलकर उन्हे नमस्कार किया। फिर आनन्द के धौसे बजवा कर परिवार सहित वह (उनके पास) वदना के लिये गया ।।५१५।।

उसने वहाँ जाकर मुनि के चरणो के दर्शन किये तथा (मन,वचन, काय) तीन प्रकार की शुद्धि कर उनके चरणो मे वह निश्चित रूप से पड गया और उसने कहा, "आपको वदना कोई नही कर सकता क्योकि वृद्धावस्था एव मृत्यु तुमने खो डाली है" ।।५१६।।

तत्वोपदेश

[५१७–५१८]

पूछइ जिणदत्तु जिणवर धम्मु, कह (हुमु) णीसरु गालिउ कम्मु ।
देव एकु अरहंतु मुणेहु, दया धम्मु वहु भेय सुणेहि ।।
गुर निगंथु संगुम चतु, मज्ज मंमु महु चइ निरभंतु ।
पंचुबर निसि भोज चइज्जु, लवणिउ अणगालिउ जलसज्जु ।।

(फिर उनसे) जिनदत्त ने जिनेन्द्र भगवान के धर्म के विषय मे पूछा। मुनीश्वर ने कहा "कर्मो को नष्ट करो। एक अरिहत देव के मानो तथा दया एव धर्म के भेद को सुनो"।

मुनि ने कहा निग्रथ गुरू की सेवा करो। मदिरा मास मधु को निभ्राति त्यागो। पाच उदम्बर तथा रात्रि को भोजन त्यागो। नवनीत तथा विना छने हुए जलका प्रयोग त्यागो

गालिअ ∠ गालित—छना हुआ
निगथ ∠ निर्ग्रन्थ —परिग्रहहीन, मुनि

[५१६–५२०]

अणुव्वय पंच गुणव्वय तिन्नि, चउ सिखाव्वउ धरि चउवण्ण ।
अतयाल सल्लेहणु होइ, ए सावय वय आखहि जोइ ।।
पुणु अणयार धम्म वहु भेय, कहिउ मुणिंद भवमल छेउ ।
सत्त तच्च णय णव पद दव्व, पंचकाय तुह जाणहि भव्व ।।

अर्थ :— पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रत (इन वारह-व्रतो को) चारो वर्ण (ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य और शूद्र) धारण करे तथा अन्त समय सल्लेखना धारण करे, ये श्रावक के व्रत कहलाते हैं ।।५१६।।

फिर मुनि ने भव-मल को छेदने वाले अनागार (यति) धर्म के अनेक भेदो को कहा । हे भव्य । सात तत्व, (सात) नय, नव पदार्थ, (छह) द्रव्य और पचास्तिकाय को तुम जानो ।।५२०।।

[५२१–५२२]

वारह भावण कहिय वियारि, संजमु नेमु धम्मु तउ वारि ।
अब्भंतरि परमप्पा वुज्झि, उत्तम ज्झाणु कहिउ मइ तुज्झि ।।
पुणु पयत्थु पिंडथु जिणुत्तु, रूव जुत्तु गय रूव अणतु ।
अट्ट रउद धम्म कउ भेउ, शुक्ल ज्झाण वज्जरिउ अलेउ ।।

अर्थ— और कहा "वारह भावनाओ का विचार (चिन्तन) करो तथा सयम, नियम, (दश लक्षण) धर्म और तप इन चारो को परमपद के लिये अभ्यतर (अन्तरग) रूप से जानो । अब मै तुझे उत्तम ध्यान को कहता हूँ ।।५२१।।

फिर पदस्थ, पिडस्थ, जिनेन्द्र के रूप के समान (रुपस्थ) तथा अनत (गुणो के धारण करने वाले) रुपातीत (सिद्धो के) ध्यान को जानो। आर्त, रौद्र, धर्म एव शुक्ल ध्यानो के भेदो को जानकर ग्रहण एव त्यागो ।।५२२।।

अलेउ – नही लेने योग्य

रूवगय–रूपातीत

[५२३–५२४]

दंसणु णाणु चरणु रयणाइ, आखिय किरिया अरु पडिमाइ।
चारि नियोयवि कहिय वियारि, जिणदत्त कहिउ मुणिंद सुसारि ।।
वहु पयार आयुमु वज्जरिउ, णिसुणिवि राहणु मनु गह गहिउ।
भव कूवि वूडतिहि मलहारि, सामिय पय विण को ससारि ।।

अर्थः —दर्शन, ज्ञान एव चरित्र, रत्नादि को, सपूर्णक्रिया तथा प्रतिमाओ को कहा। चारो अनुयोगो को विचार करने को कहा, और कहा, हे जिनदत्त ! "यही सब सार है" ।।५२३।।

अनेक प्रकार के आगमो को कहा जिसे सुनकर राजा का मन प्रसन्न हो गया। (जिनदत्त ने कहा) भव कूप मे डूबने वाले के पाप (मल) को हरने वाले स्वामी के चरण के विना ससार मे (और) कौन (सहारा) है ।।५२४।।

[५२५–५२६]

पाछै जिनदत्त अवसरु लहिवि, पूछइ मुणिवरु कहु सहु सरिवि ।
णाणवंत सामिय दय करहु, महु मण संसउ फुड अवरहु ।।
चहु तिरिया सहु गरुवउ नेहु, किण कारणि सामिय अखेहु ।
दुइ चंपहि इकु सिहल दीपु, किमु विज्जाहरि लहिय सरूपु ।।

अर्थ — पीछे जिनदत्त ने अवसर पाकर मुनि श्रेष्ठ से सर्व वृतात कहने को निवेदन किया। हे ज्ञानवत स्वामी, मुझ पर दया करके मेरे मन की (स्फुट) शका को दूर कीजिये ॥५२५॥

हे स्वामी, किस कारण से चारो स्त्रियो से मेरा अत्यधिक स्नेह है। तथा उनमे से दो चपापुरी, एक सिंहल द्वीप से और एक सुन्दर विद्याधरी कैसे प्राप्त हुई, सो सव कहो ॥५२६॥

पूर्व भव वर्णन

[५२७–५२८]

विमलाणणु वोलइ ए रिसउ, देसि अवती णामे विसउ ।
पुरि उज्जेणि अजिय णिआसि, तहं धणदेउ सेठि गुणरासि ॥
तहि सिवदेउ वहु वालउ पूतु, धम्म कम्म करि भयउ सजुत्तु ।
ताउ जिणेसरु ण्हवणु करतु, हयउ कुलि गऊ सग्ग तुरतु ॥

अर्थ — वे विमलानन (निर्मल मुहँ वाले) ऋषि इस प्रकार वोले, "विश्व मे अवती नाम का देश हे उसके उज्जयिणी नगरी मे अजित (राजा) का निवास था। वही गुणो की राशी वाला (गुणवान) एक धनदेव सेठ था ॥५२७॥

उसके धर्म कर्म से सयुक्त शिवदेव नामका वुद्विमान वालक पुत्र हुआ। (उस बालक का) पिता (धनदेव) जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक करते हुए कुयोग से मरकर तुरन्त ही स्वर्गवासी हुआ ॥५२८॥

कुलि ∠ कुलिय – कुयोग

[५२९–५३०]

तू दारिद्दह पीडिउ घणउ, पर छाडिया न धम्म आपुणउ ।
तुहि णिरु हिअइ वसइ जिण सोइ, वणजो करहि तु भोजणु होइ ॥

मुणि एकु वण माहि ज्झाण समाहि, तहि पय पूजिउ वणजी जाहि ।
छठउ मास तवु पूजिउ तहि, भामरि गयउ जति पुरु माहि ।।

अर्थः — हे जिणदत्त! (शिवदेव की पर्याय मे) तू अत्यधिक दारिद्र्य से पीडित था लेकिन (तूने) अपने धर्म को कभी नही छोडा । तेरे हृदय मे नित्य जिनेन्द्र देव वसते थे और लेन देन करके तू अपना पेट भरता था ।।५२९।।

वन मे समाधि के ध्यान मे लगे हुए एक मुनि थे जिनके पद- पूज कर (तू) वणिजी को जाया करता था । (इस तरह तू) छह माह तक उनकी सेवा करता रहा । तब वह मुनि नगर मे भ्रामरी (अहार) के लिये गये ।।५३०।।

[५३१-५३२]

तू पडिगाहि घरहि लइ गयउ, पाय पूजि पुणि थाढउ कियउ ।
लइ वाइणो घरहि ते जाइ, महा मुणीसरु चरी कराहि ।।
जसवइ जिनवइ गुणवइ जाणि, चउथी सुहवइ मणि परियाणि ।
देखित तोहि धम्मु कइ भाग, चारिउ तिरिय भइय अनुराग ।।

अर्थ :—तू (उन मुनि को) पडिगाहन कर (आहार के लिये) खडा कर दिया । स्त्रियाँ अपने घर से वायणाँ (लाहना) लेकर जहाँ महा मुनीश्वर अहार ले रहे थे, आई तथा जसवती, गुणवती, जिनवती तथा चौथी शुभवती चारो नारियो ने मन मे निदान (उस अहार का अनुमोदन) किया और तुझे धर्म भाव मे देखकर वे चारो स्त्रियां तुझ पर अनुरक्त हो गई ।।५३१-५३२।।

चरी – आहार करने की क्रिया ।

[५३३-५३४]

मुनहि अहार एकु कदाण, भई घणी ते घरिणी णियाण ।
पुण्ण पहाउ एक जिणदत्तु, मुणिहि दाणु दीनउ पइमिति ।।

तहि मरेवि वहि णिसिहु राय, पढमु सग्गि सुरवरु सजाय ।
विविह भोय माणिवि तहि चइवि, आइवि जीवदेउ पुव भवउ ।।

अर्थ —मुनि को एक कदन्न मात्र अहार देने से निदान करने पर वे तेरी स्त्रिया हुई । हे जिणदत्त! यह सब मुनि को परिमित (अल्प) आहार देने के पुण्य का प्रभाव था । ।।५३३।।

हे राजन्! सुनो, तुम मर कर प्रथम स्वर्ग मे श्रेष्ठ देव हुये । फिर वहाँ विविध प्रकार भोगो को माणकर (भोग कर) तथा वहाँ से चय कर तुम जीवदेव के पुत्र हुए ।।५३४।।

[५३५–५३६]

दुइ मरि चपवपुरी उत्पण्णा, सिहल दीवह इकु आयण्णा ।
एक भई विज्जाहर धीय, चारिउ तुम सवधी तीय ।।
जिणदत्त णिसुण उपण्णो वोहु, णियमणि छडिउ माया मोहु ।
जइ कुइ धोरु वीर तउ करइ, सो मरु मोखु पुरी पइसरइ ।।

अर्थ —दो मर कर चपापुरी मे पैदा हुई । एक सिहल द्वीप मे पैदा हुई तथा एक विद्याधर की कन्या हुई । (इस प्रकार) चारो तेरे (पूर्व भव) के सम्बन्ध से स्त्रिया हुई । ।।५३५।।

पूर्व भव का वृतात सुनकर जिनदत्त को बोध (ज्ञान) उत्पन्न हुआ और उसने अपने मन से माया और मोह को छोड दिया । जो कोई वीर घोर तप करता है, वह मर कर मोक्ष नगरी मे प्रवेश करता है ।।५३६।।

[५३७–५३८]

पूतु सुदत्तह दीनिउ राजु, मइ साहिव्वउ अपुणौ काजु ।
चहु नारि सिहु जिणदत्त साहि, दीपा लेइ मुणीसरु पाहि ।।

दुद्धर पंचमहव्वय पालि, णाण जलेण कम्म क पखालि ।
परम समाहि जोइणी रूड, तव लछी छुडु पठयो दूतु ।।

अर्थ — (फिर जिनदत्त ने) अपने पुत्र सुदत्त को राज्य दिया और कहा, मैं अपना काज (आत्म हित) करुंगा । चारो स्त्रियो के साथ जिनदत्त ने मुनीश्वर के पास दीक्षा ले ली ।।५३७।।

तव जिनदत्त ने दुर्द्धर पच महाव्रतो का पालन किया तथा ज्ञान जल से कर्मो के कीचड को धोया । जव मुनि जिनदत्त परम समाधि के योग मे थे तव तप लक्ष्मी ने शीघ्र ही अपना दूत भेजा ।।५३८।।

[५३९–५४०]

विणवइ दूतु णिसुणि दयवंत, . इ तोडे रयवर के दंत ।
मोहमल्ल रणि घालिउ मारि, हउ पाठयउ सामी तव नारि ।।
तव लछी निरुहउ . . ठयो, खेद खिन्नु एहि आवत भयो ।
मज्झु वियोउ नाउ तिहि धरिउ, ... ।।

अर्थ — दूत ने कहा, "हे दयावान सुनो, तुमने काम के दांत तोड लिये हैं । तुमने मोह रूपी योद्धा को रण मे मार दिया है इसलिये हे स्वामी, मुझे तुम्हारी तप स्त्री ने भेजा है ।।५३९।।

तुम्हारी तप रूपी लक्ष्मी उदासीन होकर स्थित है । मैं खेद खिन्न होकर यहाँ आया हूं । मेरा नाम उसने विवेक रखा है ... ... ।। ५४० ।।

[५४१–५४२]

सुणि विवेय तुहि पूछउ वात, (ज) य दोसु पइ दीठे जात ।
मणमथ सहिउ दीउ मइ दीठ, मुक्ति लछि ते नियड वइठ ।।
मुक्ति लछि ज (इ) हो सइ दासि, तापहि छूटहि हम निरुभासि ।
पवज्जोवहि विन्निवि जसुकति, मुणिवरु तिसु तोडइ ते (दं) त ।।

(जिनदत्त ने कहा) हे विवेक सुनो मैं तुमसे एक वात कहता हूं। पहिले वाले दोष देखे जाते है। मुक्ति लक्ष्मी के निकट वैठने पर भी मुझे काम देव पर विजय पाप्त करने की दृष्टि दी है। मुक्ति लक्ष्मी जव (हमारी) दासी/ होगी तथा हम निश्चय रूप से आभास देकर छूटेंगे। जिसकी काति प्रकाशित होकर निकलती है ऐसे मुनि श्रेष्ठ (काम देव) के दांतो को तोड डालते है। ।।५४१–४२।।

विवेय ∠ विवेक

पज्जोवहि ∠ प्रद्योतित - प्रकाशित करना

[५४३–५४४]

रतिपति जो इह सो तवु लछि, अहो विवेय झत्ति निरु गछि।
विणवहि जाइ मुणिंद गरिठु, मुक्ति नियवणि जो निरु एठु ।।
पहिलइ हूतउ णिय परिरत्तु, सा छुडिवि मह भयउ आसत्तु।
इव विवेय जएसहि तित्थु, मुणिवरु गणु अछइ जित्थु ।।

(जिनदत्त ने कहा) यहां जो (पहिले) रति पति था वही तप लक्ष्मी का पति है। हे विवेक, शीघ्र ही निश्चित रुप से जाओ और गरिष्ठ (वडे) मुनिन्द्र से जाकर कहो कि मुक्ति नितविनि (उसे) निश्चित रुप से इष्ट है। पहिले मैं अपनी ही (लक्ष्मीपर) अनुरक्त था। उसे छोडकर मैं फिर (तप लक्ष्मी) से आसक्त हो गया। अब हे विवेक, हम उसी तीर्थ जावेंगे जिसको मुनिश्रेष्ठ उत्तम कहते है।

[५४५–५४६]

णिक्कारणि हउ णिरु पाठउ, मइ तुहु सामी आइ वीनयउ।
ता जिणदत्त मुणिसरु कहइ, भव समुद्र को सुहयर रहइ ।।
निवियप्पु परमप्पउ झाइ, केवलणाणु अणतु उपाइ।
पुणु छुडु अठ कम्म खउ लेइ, तीजइ भव मरि मोखह गए ।।

(विवेक ने कहा) हमे निश्चित रुप से निष्कारण भेजा गया है और मैंने हे स्वामी ! तुमसे आकर निवेदन किया है। इस पर मुनीश्वर जिनदत्त कहने लगे कि इस भव समुद्र मे कौन (जीव) सुखसे रह सकता है। ॥५४५॥

निर्विकार परमात्मा का ध्यान करके तथा अन्त मे तीसरे भव मे केवल ज्ञान प्राप्त करके और आठ कर्मो का क्षय करके जिनदत्त ने निर्वाण लाभ लिया। ॥५४६॥

[५४७–५४८]

दुद्धर घोर वीर तउ पालि, साहु सगि दुह कम्म पखालि ।
हनि ते नारि लिगु गय सग्गि, तुह रायसिह काजि निय लग्गि ॥
यह जिनदत्त चरिउ निय कहिउ, असुह कम्मु चुइ सुह संगहइ ।
वित्थुरु भवियहु सुणहु पुराणि, यहु जिण दोस देहु महु जाणि ॥

अर्थ — उस वीर ने दुर्द्धर तथा घोर तप का पालन कर सारे दुष्कर्मो का प्रक्षाल कर (धो) दिया तथा वे (चारो स्त्रियाँ) स्त्री लिंग छेद कर स्वर्ग गई। तू भी रायसिह, अपने काज (आत्म हित) मे लग ॥५४७॥

जो इस जिनदत्त चरित को नित्य कहेगा, वह अशुभ कर्मो को चूर कर शुभ कर्म का सग्रह करेगा। हे भविको, इस पुराण को विस्तार से सुनना और इस विषय मे मुझे (मूर्ख) जान कर दोष मत देना ॥५४८॥

निय– नित्य

ग्रंथ समाप्ति

[५४६–५५०]

जो जिणदत्त की निंदा करइ, सुनत चउपही जलि जलि मरउ ।
जो यह कथा घालिहइ रालि, तहु मिछत्ती दइ यहु गालि ॥
मइ जोयउ जिणदत्त पुराणु, लाखु विरयउ अइस पमाणु ।
देखि विसूरु रयउ फुड एहु, हत्थालंवणु वुहयण देहु ॥

अर्थ — जो जिनदत्त (चरित) की निंदा करेगा, वह इस चउपई (बंध-काव्य) को सुनते ही जल जल कर मरेगा। किन्तु जो इस कथा को अपने पास (रख) धारण करेगा (हृदयगम करेगा) वह मिथ्यात्व गला देगा ॥५४६॥

मैंने उस जिनदत्त पुराण को देखा है जो प लाखु द्वारा विरचित जो ऐसा (अथवा अतिशय) प्रमाण है। मैंने इसे स्फुट रूप से रचा है। हे बधुजन हस्तालवन (हाथ का सहारा) दीजिये ॥५५०॥

अइस ∠ ईदृश – ऐसा।
अइसइ ∠ अतिशयित – विशिष्ट।

[५५१–५५२]

जो जिणदत्त कउ सुणइ पुराणु, तिसको होइ णाणु निव्वाणु।
अजर अमर पउ लहइ निरुत्तु, चवइ रल्हु अभई कउ पुत्तु ॥
गय सत्तावन छह सय माहि, पुन्नवत को छापइ छाह।
तक्कु पुराणु सुणिउ नउ सत्थ, भणइ रल्हु हउ ण मुणउ अत्थु ॥

अर्थ —"जो जिनदत्त के उपाख्यान को सुनता है, उसके ज्ञान और निर्वाण होता है। वह अजर अमर पद को निश्चित प्राप्त करता है" यह अभई का पुत्र रल्ह कहता है ॥५५१॥

(यहाँ तक कुल) छ. सौ (छद) मे से सत्तावन गए (कम हुये)। कौन पुण्यवान अपनी छाया (त्रुटियाँ) छिपाएगा ? तर्क, पुराण एव शास्त्र मैंने नही सुने है तथा रल्ह कहता है, "मैंने अर्थ पर भी विचार नही किया है।" ॥५५२॥

णाण ∠ ज्ञान।

[५५३]

जिणदत्त पूरी भई चउपही, छप्पन हीणवि छहसय कही।
सहसु सलोक विन्न सय रहिय, गंथ पमाणु राइसिहु कहिय ।।

अर्थ — जिनदत्त चौपई छ सौ मे से छप्पन कम (५४४) चौपई मे पूरी की गई। रायसिह कवि कहता है कि ग्रन्थ का प्रमाण एक हजार श्लोक प्रमाण है ।।५५३।।

इति जिणदत्त चउपई संपूर्ण

सवत् १७५२ वर्षे कार्तिक शुदि ५ शुक्रवासरे लिखत महानद पालव निवासी पुष्करमलात्मज।

यादृश पुस्तक दृष्ट्वा तादृश लिखितं मया ।
यद् शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ।। १ ।।

शुभ भवेत् लेखकाध्यापकयो । श्रीरस्तु । पचमीव्रतोपमनिमित्त

।।शुभ।।

शब्दकोष

अ

अइ— ४००,
अइरावइ = ऐरावत — २३
अइस = ऐसा — ३६२, ५५०
अइसी= इस प्रकार की—१०१,४९७
अइसे = ऐसे — ४४०
अइसो = — ३८२, ४१३
अइसौ —२८१
अइसइ = ऐसा – ४७,२०५,२२०, २२२
अउसप्पिणी = अवसर्पिणी — ३०
अउर = और — ७४, १३७, १४४ ३१४, ४८३
अउरु = और — ४७, ४२५
अकहा = न कहना — ४७५
अक्खउ = कहना — ११६
अक्खर = अक्षर — २०
अकाजु = व्यर्थ — २१३
अकावसि = आकाश — ३५४
अकिट्टमि = अकृत्रिम — २९१
अकुलाइ = व्याकुलहोना — १००
अकेलउ = अकेला — ३६७
अखइ = कहना — ३४५
अखउ = कहना —२०, २९७
अखहु = कहना — २२१
अखेहु = — ५२६
अखंड = पूर्ण — १७६
अखय = अक्षत — ५३,
अख्यइ = कहना – ४१७
अखिउ = कहना – ३८२
अगनिउ = अगनित – १२६, २८५
अगम = अथाह – १९४
अगर = सुगधित द्रव्य – ५३,१७२
अगवाणा = अगवानी – ५०३
अग्गिलेह = आगे लेने को – ४६१
अगेटिउ = रुकना – १३२
अघाहि = थकना – ७०
अघाइ = गहरी – पेटभर, प्रसन्नता ३०१, ४१५, ५०४
अघाई = – १४९
अघोटिउ = रोकना – १३६
अचरिजु = – ४३१
अचागले – दुष्ट – ४०१
अचाभउ = – २७१
अचेयण = अचेतन – ७८
अचंभउ = आश्चर्य – ३६१
अचभो = – ३६०
अचभौ = – ४३९,५०९
अछ = बैठे हुए – ३७८
अछइ = – २७३,३३९ – ३४३, ५४४

अछरि = अप्सरा – ३३२
अछहि = – ३७०,३१९
अछीस = – ३९६
अछे = अक्षत – ३६०
अजउ = – १८१
अज्ज = आज –२२५,२६५
अज्जु = – ३००,
अजर = – ५५१
अजरु = – ४६४
अजाण = अजान – १८८,४०९
अजिय = अजित – ३, ५२७
अठकम्म = आठकर्म – ५४६
अठविह = आठप्रकार – ५४,१६८
अठगु = ४९९
अण = २२१
अणगलिउ = विना छना – ५१८
अणछाजत = अनचाहा – ३७६
अणयार = अनगार,मुनि – ५२०
अणसणु = अनशन – २५२
अणीवध = अनिवध – २८९
अणुदिणु = प्रतिदिन
अणुसरउ = अनुसरण करना ३२८
अणेय = अनेक – २८८
अणगहु = अनग – ९३
अणतु = अनत – १९३,५२२,५४६
अण्णु = अन्त – १९०
अणुव्वय = अणुव्रत – ५१९
अतडउ = विना किसी शब्दके,चुपचाप – २२८
अति = बहुत – ११७,३११,३८४,
अतीते = भूतकाल मे – २२,

अतुल = तुलना रहित – ५
अत्थ = अर्थ – १४
अत्थि = – ३८, ९९
अत्थु = – ५५२
अत्थहि = विद्यमान – २२
अथाण = – ४९१
अद्द = – ५२२
अधराउ = आधा राज्य – ३४९
अनइ = – ३३५
अनगु = कामदेव – ४२८
अनतु = अनन्त – ६,
अनपर = उमपर – १६९
अनिवार = अनगिनत – २३६
अनिवारु = अनिवार्य रुप से ३३,

अनु अनु = पीछे पीछे – १७९
अन्नु = अनाज – ३२४
अनुदिनु = प्रतिदिन – ५०१
अनुराग = प्रेम – ५३२
अनुवइ = – ४४५
अनेयइ = अनेक – ३६४
अपजस = अपयश – ४७१
अपणी = अपनी – ४०२
अपगु = स्वय – २२५
अपणे = अपने – २०५
अप्पइ = अर्पण करना – ४८३
अप्पु = स्वय – ५० ४१७
अप्पउ = अर्पित करना – २४२
अपनाइ = अपनाना – ४१५
अपमाण = अप्रमाण – २९३,२९५
अपरपर = – ४२६ ४३१, ४४२

अवसेरि = चिन्ता – २३८,२९३,
अवहरूइ = दूर करना – २०८
अवास = महल – १२७,२३३,
स्थान – ५०४
अवासहि = आवास – ३१
अवासु = आवास – ४१
अवहोइ = – ४९७
अवती = – ५२७
अविचार = विचार रहित – १५,
२७८
अम = ऐसे – १११
असरण = शरण रहित – ४
असराल } = – ४५,२०२
असरालु } = निरन्तर – ६५,१७५
४३७,
असिऊल = तलवार – ४५५
असिवरु = तलवार – २२८
असीस = अशीष – १५३
असोइराय = अशोक राजा २७९
असोक = अशोक – १६०,१६९
२६८,
असोकसिरी = अशोक श्री – २६८
असोग = अशोक – २८२, २९३
असोगसिरी = अशोकश्री – २८१
असोगह = अशोक – ३०२
असख = असख्य – १७१,४५१
४५२,४६०
असख्य = – ४५१,
असखइ = असंख्य – ४६२,
असी = अस्सी (८०) – ४०९,
असुह = अशुभ – ५४८,

असुदरु = असुन्दर – ५१०,
अहइ = आज – २२३,
अहइ = थी – १६५,३३०, ४६७
अहनिसि = रातदिन – ५१
अहलउ = निष्फल – ३०३
अहारु }
अहार } = आहार – ४०९
अहिउ = – ३६
अहिणदण = अभिनन्दन – २
अहिलादिउ = प्रसन्न होना – ११४
अहो = – ७२,१११,१२८,१५७,
अज्ञा = मर्यादा – ६६
अकवाल = अकपाली – १७०
अकुस = अकुश – ३४५,३५८,
अग = शरीर – ५७,८२,१०६,२८२
अगवइ = अगीकार करना – ४५४
अगु = – २२४,४२८,४२९
४४८,४४३,४९९,५१०,
अचलु = अ चल – ७९
अछुइ=विना किसी के छुए हुए – ५३

अजणि] = अजनी गुटिका १५३,
अजनी] = – २८८ ३६३,
अजणीया = अजनवटी – १५४,
अ जणु = – १५२
अ डद ड = एक गढी का नाम – ८६
अ त = सीमा,पार – १७
अ तयाल = अ तसमय – ५१९,
अ तर = – १९९
अ तराल = दूरी, बीचमे – १८९
१५७,२४३

अतरालइ = अतराल – ७०,
अतरु = – १६८,
अतु = अन्त – २६६
अंतेउरु = अन्त.पुर – ४१,८८ आदि
अथइ = अस्त होकर – २९९
अधुं = अधा – २५
अंब = आम्र – १६६
अबराइ = अमराइया – ३४
अंबिमाई = अबिका माता – १०
अवराउ = आम्रराजि – १७५
अवसाहार – सहकार – ३२
आमके वृक्ष

आ

आइ = ५९,८४,११२, आदि
आइ अणाहु = आदिनाथ तीर्थंकर– १
आइत = आकार – ५१३
आइताइ = आकर – २०५,
आइयो = – १२०,१२३,
आइवि = – ५३४,
आइस = आज्ञा – ३३५
आइसु = आज्ञा – १०५,४२१
आउ = – ४७४,
आए = – ५०३,
आकुली = व्याकुल – १३४,४५८,
आखण = कहना – ३४१,
आखहि = कहना – ५१९,
आखिय = सपूर्ण – ४२३,
आखु = अक्षय – ३५७,
आगइ = आगे – १२३,१५५,३०४,
आगम = शास्त्र – १४
आगमणु = आगमन – ४८४

आगली = बढी हुई = ९९,१०१,२७७,
आगले = अग्र भाग – ४०१,
आगि = अग्नि – १३३,
आगिउ = आगे – ४६९,
आगिथभ=आग को रोकने वाली–२८७
अगुली = अगुली – ६५
आगे = सामने – ३९९
आचल = अंचल – १२
आज = –५००
आजि = – ४७४
आजु = – २१२,२१३,२१६,४०७
आण = सौगन्ध – २५२,३५१,४१८,
आणि = सौगन्ध, लाकर – १०७,१५०
आणु = – २१६,३८३, आदि
आणियउ = लाना ३६५
आणद = आनन्द – ६२,५१५,
आणदिउ = प्रसन्नहोना – ५८,
आणदे = – ५०४
आते = कवि के पिता – २६
आदि = – १८४,
आदिनाह = आदिनाथ – २१६
आधउ = आधा – २३८
आधौ = आधा – २९४
आन = अन्य – ४२४
आनि = लाकर – ३५९, ४११
आनदउ = आनन्दित – २८५
आप = अपनी – २४, २०१,
आप आप कु = अपने को – १२९
आपणउ = ५००
आपणी = अपनी — ३८०
आपणु = स्वय — ३०८

आपि = स्वय — १३६, ४४६
आपु = अपने — १४८, ३७५
आपुण = आप — ४११, ३२०
आपुणइ = — ५२६
आपुणउ = — ४८३
आपुणि = अपने आप – ११
आपुणी = अपनी – ७१, ३८३, ३८५
आपुणे = अपने – २२, २३
आपुणौ = – ४४६, ५३७
आफउ = अर्पण करना – १६६, ४७७
आफि = देकर - ४७६, ४७७, ४७८
आफी = दी – १३४
आभडी = कही – १५३
आभरण = गहने – ६६, २३४
आय = आया – २५१
आयउ = आया – १४६, १५६, १६०
आयप्णा = आयी – ५३५
पैदा हुई
आयसु = – ४६४
आयुमु = – ५२४
आये = – ११५, १६०, १६२
आयो = – २१७, १४२,
आयौ = – ४६८, ४८८
आरडहि = चिल्लाना – ६८, २०७
रोना
आराहउ = आराधना – ५२, ४६४
आराहहि = अराधना - १७
आलियरु = कस्तूरी – ३७५
आवइ = आना – ५१, १६७, २२५
आवत = – ५४०
आवतु = – २२०, ४८६
आवहि = – १७८
आवही = – २६१
आवहु = – २६५
आवास = महल – २१६, २२०
आविली = इमली – १७२
आस = इच्छा-आशा – ५६, १३६
आसणु = – २२०
आसत्त = आसक्त – ५४४
आसा = आशा – ३८८
आसादितु = – १८०
आसि = होन। – १
आसीस = आशीर्वाद – १०५
आसु = आशा – १४१
आसे = होना – १८१, १८२
आह = – २५६, ४७२
आहारु = – ४८७
आहि = है, कहा जाता है – २४ आदि
आहूठ = स्वयमेव – २१३
आखि = आख – ३५, ३१४, ३७८
आगुल = अ गुल – ३७७
आसू = – २०८

इ

इइ = – ४६६
इउ = इस प्रकार – ३२८
इउ = इस प्रकार – २०७, २४८
इसको – २५६
इकठाइ = एकत्रित – १८७
इकल्ली = अकेली — १५४
इकु = एक –११६,६६,६६,१२८ आदि
इतिवार = एतवार, विश्वास – ३०४
इनि = – २०१, २३४

इम = इस प्रकार – ९०, ५०४
इमु = – १४५
इय = – ४८५
इयर = इतर – २३
इलायची = – १७१
इलौणी = लावण्यपूर्ण – ९६
इव = इस प्रकार – २२७ आदि
इवहि = अभी – १५७, ३३७
इवहु = – ४३०
इवा = इस समय – ३३९
इस = – ११०
इसउ = ऐसा – १४७, ३४१
इसहि = – ४४०
इसु = इस – ४२४
इह = यह, वह – ५५,७९,१७६ आदि
इहंजि = यह –
इहर = यहा – २१३
इहा = यहा – १०९,३९०,४३६ आदि
इहि = इस – २१०, २११, ४८७
इहु = – २३५, ४००
इ छहि = इच्छा करना – ४३
इ छित = इच्छित – ५०४
इ द = इन्द्र – ८७, ११
इ दिय = इन्द्रिय – १५८
इ दु = इन्द्र – ८
इन्दु = – ४४२
इ धणुरु = ईंधन – १९०
ईसाणु = ईशान – १२

उ

उकट = सूखना – १६८
उक्क = उल्का – ५१२
उघाडि = खोलना – ४३०
उघइवि = – ४४७
उघाडह = – ४०८
उचितु = उचित – २४८
उछउ = उत्सव – १२०
उछलइ = – २६०
उछलहि = – २४७
उछलिउ = उछलकर – २५८, २५९, ३६८
उछली = २४७, ५०३
उछाह = उत्साह – ६३
उछाहु = उत्सव – ५८
उछग = गोद – ८०, १०६
उत्साह
उछगह = – ५००
उज्जल = – ९३
उजाडि = उजाड – ३५२
उज्जेणि = उज्जयिनी नगरी – ५२७
उज्झाउरि = उपाध्याय – ६२
उठवहि – बढते हुए
उठहु = उठो – १२४
उठाइ = उठाकर — १६१, ३३४
उठि = — १३४, ३०९ आदि
उठित = – ४९८
उठियउ = — २२१
उडणु = उपवास — ३४७
उणचास = गुनचास — ३५०
सख्या
उणि = उसने – ३०७
उत्थइ = उडना – ४५३
उतपण्णा = उत्पन्न – ५३५
उतपाति = उत्पत्ति – २६
उत्तम = २६, ८७,
उतर = ४६१

उतरि = उतर – २६७
उत्तरु = जवाब
उतहि = उतना – ३६
उत्तग = ऊचा – ४५६
उदहिदत्तु = सागरदत्त, सेठ का नाम – १७६
उद्धरउ = उद्धार – ७२
उद्दिमु = उद्यम – १३६
उद्धसे = कहना – २१३
उन = – २५०
उन्नति = – २६३
उपगार = उपकार – १४०
उप्पण्णा = उत्पन्न – ५०६
उपण्णु = उत्पन्न – ५०६
उपण्णो = उत्पन्न हुआ – ५३६
उपगइ = आना – २६२
उपमादे = – २७१
उपरणु = ऊपर – २५१
उप्परहि = ऊपर – २६७
उरवारि = उखाड़ना – ४११
उपाइ = – ५४६
उपाउ = उपाय – १४५
उपाडि = उखाड – ३४५
उप्पाडि = उत्पात – ३४६
उपासु = उपवास – १३४
उर = – ६४
उरणु = उऋण – २८
उरभादे = – २७३
उरवसी = उर्वशी – ८६
उव = –४८७
उवयरिउ = उवरना – ३४५
उवयारणु = उपकार – २८

उवर = उदर – ३६६
उवरहि = – ४८७
उवरि = उदर – २७
ऊपर – ४७०
उव्वरिउ = बचना – २३४
उवहिदत्त = सागरदत्त – २४५, ४४७ सेठ का नाम
उवहिदत्तु = – २४८
उवहदत्त = – १७५, १७८आदि
उवहूदत्त = – १७६, २४०
उवहि = उदधि – २४६, २८३
उवाउ = उपाय – १५१
उवारि = द्वार – ४६५
उसरि = अवसर – ४६३
उह = – २१६
उहकी = उसकी – ७७
उहाण = दूसरा – २१०
उहि = – २४७
उहु = उस =
ऊगयो = उदित हुआ –३०७
ऊचालि = बुरी बात – २२०
ऊचे = – ३१०
ऊज = – ४४५
ऊपर = – ३४७
ऊपरह = ऊपर – ९२
ऊपरि = – ६६, ६१
ऊभे = खडे हुए – २८४
ऊसरइ = औसरा – २०५, २१६,२२० पारी
ऊसरऊ = पारी – २१२
ऊमारि = उच्चारण करना – ४६
ऋष = ऋषि, साधु – ४८

ए

एउ = यह – ३११
एक = – ८५, ८६, ३०६ आदि
एकइ = एक – ३६४
एक्कर = एक – ४७, ७५, २२२
अकेला
एककउ = एक – १०५
एकचित्त = ५०५
एकणु = कोई – १२१
एकतु = कोई – १२१
एकति = कोई – १२१, १२२
एकनु = कोई – १२१
एकल्लउ = अकेला – १५७
एकवति = इकलौता – २१२
एकह = एक – १४६
एकहि = एक साथ – १७८
एकु = एक – २१२, ३०२ आदि
एग्यारह = ग्यारह – ३६१
एगारह = – १३०
एठु – इष्ट – ५४३
एत्थतरि = इसके बाद – ७७
एतउ = इतनी – ३९६
एतहि = इस प्रकार – १२७, १७६
एतिउ = ऐसा – ३४९
एती = ये – ३९९
एते = उसी – १४२, ३४४, ४९६
एमु = इस प्रकार – २२३, २९४
एवहि = इस प्रकार – ४०२
एवा = इस प्रकार – २२८
एस = ऐसी – ३१५
एसउ = इस तरह – ७२
एहा = यहा – २४१
एही = इस – ३६१
एहु = यह – ८०, ३३१, ३८२, ५५०
एहो = अहो – ४०२
ऐसी = – २७८
ऐसो = – १२४
अैसाउ = इस प्रकार – २८३
अैसौ = इस प्रकार – २६५
ओकार = – ६४
औगण = अवगुण – ३१२

क

कइतणु = कवित्व – २२
कइन्हु = कवि – २००
कइलास = कैलाश – २७८
कइसइ = किसी प्रकार – ३८३
कइसउ = कैसा – ३६३
कइसे = ऐसे – ४०७
कईस = कवीश – २२
कउण = कौन — १४२, २०७, ५२९
कउणइ = किसी — ३३०, ४५४
कउणे = कौन — २१९
कचनार = वृक्ष विशेष — १६६
कछु = — ३१२
कटक = सेना — ४५५, ४६४ आदि
कटकइ = सेना – ४८८
कठखड = काष्ठ के टुकडे – २५९
कठपाडल = पौधा विशेप — १७४
कठुवि = कष्ट — १५८
कडइ = कडा — १९५
कडाप = कटास – २७९

क्रिमु = किस प्रकार – ४०,३७९,३८८
१४३,२३१,२३४,४४०,५२६
किर = – ५११
किरण = दीप्ति – ९९
किरिया = क्रिया – ५२३
किसइ = किस – १७
किसही = किसीभी – २०३
किसि = – २०७
किसी = कैसी – ८९
क्रिसु = कैसे क्रिसे – १०७,२६१,३१५
क्रिसुकई = किसकी – ८४
किह = – ४६३
किहा = कहाँ २६७
कीरति = कर्ति, परा – ८९, ४३९
किलमाण = क्रीडा करती हुई – ९०
किली = – १९५
कीली = कील – ३८१
कुइला =कुचला – ४७९
कुकम्मु = कुकर्म – ३०५
कुकइत्तणे = कुकवित्व – २५
कचाली = खोटी चाल – ३८१
कुछार = – ४४६
कुत्शील = कुत्सित – ३७७
कुटव = परिजनलोग परिवार – ६०
१०८, १११, ११७
कुठु = – ४४८
कुठारु = कठोर – ४७२
कुढाल = वेढगी – ३७८
कुढावहि = कुढाना – २१५
कु थु = कु थनाथ – ६
कुद्धि = क्रुद्ध – २२४
कुपूत = कुपुत्र – १३६

कुबुधि = विकृत बुद्धि – ११
कुमइ = कुमति – ११
कुमुणिवर = खोटा मुनि –१०१
कुमरि = कुमारी - २३५, २८५, ३४९
कुमरु = – २३४
कुमारिहु = कुमारी – २०३
कुमारि = कुमारी – २७८
कुमारि = –१२८
कुमरु = कुमार – १२४
कुल = वश – ४९, ६६
३७, ७२, १८४,
कुलि = कुल – २३, ५०९५२८
कुलि = जाति – ४४, ४५८
कुलु = कुल, वश – ६२६
कुलणिण = – २८१
कुलतिलउ = कुलतिलक – ४८९
कुलमडणु = कुलमण्डन – ५६
कुलवहु = कुलवधु – २४६
कुलीय = जाति – ४६२
कुवडी = कुवडी, बौना– ४०४
कुवरह = कुमार के – ८१
कुवरि = राजकुमारी – २११
कुसलात = ११७
कुहणी = कुहनी – ३७८
कूजउ = – १७३
कूटइ = कटना ६१२
कूटणु = – २४९
कूड = कुटिल – ३५
कूडउ = बुरा – ३८१
कूडू = कपट – ७१
कू भी = ४२७
कूए = कूट ढेर – ३३

ख

खालु = चमडा – ४७७
खिण्णु = खिन्न – ३५६
खित्ति = क्षिति, पृथ्वी – १
खिन्नु = – ५४०
खियात = ख्याति – ३७०
खिरी = – १७२
खीचि = –१६६
खीणोवरि = क्षीणोदरी – ३०६
खीर = क्षीर – ४१२, ५००
खुजाड = खुजाना – ४१८
खूटइ = क्षय होना – २२६
खूटउ = खुला – ३४७
खेतपालु = क्षेत्रपाल – १०
खूदत = खोदना – ३४७
खेऊ = खेद – २०६
खेमु कुसल = क्षेम कुशल – ११४
खेव = – २६२
खोधरु = – १८३
खोचो = टेढी – ४०५
खोचे = – ३७७
खोजु = – २४३
खोड = खोट – २३८
खोडि = खोट – १३०, १४८
खड = टुकडा – ४०
खडागरु = तलवार – ६५
खभ = – ३५६, ३४५
खांड = – ४१२

ग

गइयर = हाथी – २३
गइ दु = गजेन्द्र – २३
गउरी = गौरी – २७१
गगन = आकाश – ३२६
गगन गामिनी=आकाश मे चलने वाली–
२८६
गज = हाथी – ३४५
गजगमणि = गजागामिनी – २०६
गजहि = गर्जना – २६६
गट = – ४५६
गटह = गिने मे – ४५७, ४५८
गड्वड = गडगडाहट – २६३
गढी = – ७८
गढु = – ४६२
गणह = समूह – ४६६
गणहरविद = गणधर वृन्द – २
गणु = – ५४४
गतहि = – ३०६
गयवर = हाथी – ३५७
गयद = हाथी – ३४६
गरभ = अभिमान – १४१
गरवु = अभिमान – २२६
गरहु = विश्वास – ४०८
गरिठ = गरिष्ठ – १३
गरु = अधिक – २२३
गरुव – वडे – २६८
गरुवउ – अत्यधिक – ५२६
गरुडकेउ – गरुडकेतु – ५०८
गल = – ६४
गलिय – – ४४८
गलीदी – २७२
गलै – गर्दन – ३७४
गवरि = गौरी – ३७६
गव्भ = गर्व – ५६

गूढ = – १८३
गेल = गैल, माग – ४६१
गोपाल = = ४७६, ५१३
गोफणी = गोफ्या,पत्थर फैंकनेका अस्त्र
गोधूलक = – ४४३
गोवहि = गोपहि, छिपाना – ३२२
गोहिणी = साथी – १५०
गगादे = – २७६
गठि = गाठ – ६८, २१८
गजणु = अपमान – ७१
गजियड = नष्ट – ४७०
गभीरह = गभीर – ३४१
गथ = – ५५३
गधव्वु = गधर्व – ३२१, ३८५
गधि = – ४४८
गधोवइ = गधोदक – १६८
गपि = जाकर – २३४
गभीरु = गभीर – २५९
गाठ = – ७०

घ

घडहडाइ = – १९५
घडियार = घडियाल – १९४
घडी = गढी – ८६, १६५, ३३२
घण = वहुत – ३०९, ३४६, ४२३, ४४७, ६०७
घणउ = घना, वहुत – ४०, ३२०, ३२८,४०१, ४०५, ५२९
घण्यो = पेलना – ४०५
घणहूल = – १७४
घणा = अणीक – ३४६
घणाह = घना, वहुत – ४०५
घणी = घनी ८६, ८९, २७१, आदि
घणे = वहुत – २२, ६१, ३८९,४४५ ४५३
घर = ५७, ११२, १३१, १३६, आदि
घर घर = – ६०
घरणि = स्त्री – ३१, ४५, ४६
घरवहि = घर मे – २१२
घरणी = गृहिण – ५३३
घरी = गढी ८४, १२१
घलहि = चलना – २७९
घवरु = घणा – १८
घाउ = घात – ४३, २३१
घाघ = उल्लू – ३७६
घाघरी = झालर – २९६
घाठि = घटिया – ४१४, ४०९
घाटि = कम – २६६
घालइ = मारना – १००,१९५
घउ = घी – ४२२
घोर = – ५४७
घ = घोर – ५३६

च

चइ = त्यक्त – ३१, ५१८
चइज्जु = छोडो – ५१८
चडवि = चयकर – ५११, ५३४
चउ = चार – १४१, ५०४, ५१९
चउक = चौक – ६०
चउकु = – १२५
चउक्की = – ५३२

चउदह = चौदह – २०२, २३४
चउदिसहि = ४७०
चउपई बधु = चौपाइ छदमे – २५
चउपडी = – २३२
चउपद्दी = चौपई – ५४६ ५५३,
चउपासही = चारो ओर – ३०, २२६
चउरासी = चौरासी – २६६
चउरी = चौरी, वेदिका, चवरी – ६०, १२५, ४४३
चउवण = चार वर्ण – ५१६
चउवण्णो = ५४, २६
चउवणु = चतुर्वदन, चार मुंह वाले – १०६
चउविह = चतुर्विध – ११
चउवीस = चौवीस – ६, ११,३७,३८
चउसय = – ४३६
चऊ = कहा – ४७४
चक = चक्र – ४५५
चकचूनि = चकनाचूर ३४५
चवक = चक्र – ३५४
चवकवइ = – २०२, ४५४
चवकेसरि = चक्रेश्वरी – १०
चख् = चक्षु – ६७
चडइ = चढी, चढना – २४०, २६८, ३०४, ३६३, ४६०
चडाइ = लदकर – ८०, १६०
चडि = चढकर – २६६
चडियउ = चढा १६२
चडियौ = – ४४७
चडिवि = चढकर – १२७,३७०,४२२
चडी = – ३१
चडे = – १६१
चतुर = – १८६
चमकि = – ४१६
चमर = – ४४६
चमरु = चमर – १८५
चरडाइ = चरचरा – ३१३
चरडु = चरट, लुटेरा – ३५
चरण = – २५४
चरणु = – २१६, ५२३
चराचर = – ५२
चरिउ = चरित – १८, ५४८
चरित = – ४४०
चरी = दूत – १०७
चरु = नैवेद्य – ५३
चवइ = कहना – ५०, ५२
चर्म = चमडा – ४४
चहु = – ५२६
चाउ = चाव – ८८, २३६
चाउरगु = चतुरंगिणी – ४५१
चायरु = – १६२
चारउ = – ४६८
चारि = चार – ५१, ३६७, ५२३
चारु = सुन्दर – ३६
चारुदत्त = – १८०
चिक्कार = चीत्कार, पुकार –३४६ ३४६
चित्त = मन, चित्र – २१, ८४, २३७ २४६, २७६, ११३, ३३२,३८७, ४४१, ४८६
चित्तकार = चित्रकार – १०४
चित्तह = चित्त – ४०१
चिताउ = चित्त – ३३०
चित्ति = चित्त – ६८

छ

छुड्डु = शीघ्र – ४२५, ५३८, ५४६
छुरी = – ६५, ३६५
छुहारी = छुहारे – ३३, १७१, ४७२
छूटउ = छूटना –३ ४६
छेली = बकरी – ३७५
छोला = – १८३
छोहु = स्नेह – ३२६
छोहु = क्षोभ – ३४४
छड्डि = छोडकर – १५४
छदु = छंद – १४,१५, २०, ३२८
जइ = जो, जैसा, यदि, जब, – २०
२३, ११८, १३१
१४२, १६६, १६७, ,२१६, २४७,
२५२, ३१६ ३०५, ३३५,
४८०, ४९७, जाकर, – ३३९, ३४८,
३८३, ३९२, ३९३, ४१२, आदि
जइरावि = – ३५१
जइतो = – ३३१
जइनी = जैनी – ४५४
जइयह = – १४७
जइयहु = – ७३
जइर = जो – ८३
जइवी = – १७८
जइसे = जैसे – ३४, ४१३
जइसइ = – ४६५
जइसवाल = जाति का नाम – २६
जइह = जाकर – २६७
जउ = जभी – ३५५
जक्ख = यक्ष – ११
जक्खिरणी = यक्षिणी – ११
जगरणत्थु = जगन्नाथ ६
जगरणाह = जगत् के नाथ – ३
जगत्तय = जगत्त्रयं – ५
जगमगतु = जगमगाना – २९१
जगु = जगतं = ६८
ज्झति = शीघ्र – १५४
ज्झारण = ध्यान – ५३०
जडित = जडी हुई – १३४
जडिय – ४९०
जरण = जन, – २२ आदि
जरथ = – २५
जरणरिण = माता – ३५
जरणरणी = – ४९९
जरणरणु = पिता – २२३
जरणाइ = जानने पर – २३०
जरणावइ = बताना = ४६७
जरिण = मत – २६६
जरिणयउ = पैदा करना ३८८
जरणु = – ३१, ७१, ८७,
जदुहव = यादव – ४६१
जन = – २२३, ३१५
जनमु = जन्म – ४२४
जपउ = जपना – ५२
जम = यम – १२
जम्मु = जन्म – ५९, ३०५
जय = – १
जयकारी = जय जय कार – ३३८
जयकेतु = – ५०८
जयजयकारु = जयजयकार – ३५९
जयदत्तु = – ५०६
जयमित्तु = – ५०८
जयसारु = –१०
जर = जरा, बुढापा – ९
जरा = बुढापा – ५१६

झ

ट

ठ

ड

ढ

ढालि = गिराना – ३८६, ४२०,
ढीकुलि = – ४५७,

ण

णइ = – ४८८,
णमि = नमिनाथ – ७,
णमिउ = नमस्कार करना – ४६६
णमोयार = णमोकार मत्र – १५८
णय = – ५२०,
णयण = नयन – ६०, ४८६,
णयणु = नयन – ३६७, ४८४,
णयिर = नगर – २२२, २६३,
णयरी = नगरी – २६६, ३४५,
णयरु = नगर – ४०, ४७२,
णर = – ४२६, ५१४,
णग्इ = – ४२७,
णरणाहु = – ४७१,
णरयहि = – ४२७,
णरवइ = नरपति – ४१६, ४३६,
णरु = नर – ३४,
णरेंद = नरेन्द्र – २६८,
णव – नौ – १३५,
णवइ = नमस्कार करना – ८,
णवगह = नवग्रह – १३,
णवहि = नमस्कार – ३, ४४,
णवि = – ४२६,
णविवि = नमस्कार – १,
णहवणु = अभिषेक – ५२८,
णह = नख – ६५,
णहयर = – ३१७,
णहि ७ निश्चय से – १२,
णहु = नहीं – ४०२,
णाइ = नाम – ३१, ४४,
णाउ = नाम – ५१५,
णाण = ज्ञान – १८, ५२३, ५३८,
५७१,
णाणवत = ज्ञानवत – ५२५,
णामे = नाम – ५२७,
णासत = नष्ट करना – १४१,
णासि = नाश करना – ७,
णाह - नाथ – ३१०, ४८२,
णाहिणरेसरु = नाभि नरेश्वर – १,
णाहो = नही – १५४,
णाहु = नाथ – ४२०, ४२१,
णाकरु = अपराधी – ३५,
णिआसि = निवास – ५२७,
णिक्कारणि = विना कारण – ५४५,
णिम्मवियउ = निर्माण करना – ३१३
णिय = निज, नित्य – ५७,६८,
११०, १५८, २२१, ३१८, ५४४,
णियमणि = निज मन – १६२, ४१६,
५३६,
णियरे = पास – ७,
णियाण = निश्चय – ३१४, ५३३,
णिरास = निराश – ५०१,
णिरु = निश्चय से – ५८, ११६,२६७,
४३६, ५१६, ५२६, ५४५,
णिरजन = – ४६२,
णिसिहु = – ५३४,
णिसुण = सुनो – ४७०, ५३६,
णिसुणई = – २,
णिसुणहु = सुनो – ३२, २५६,
णिसुणह = सुनो – ४०४,
णिसुणि = – ८३, १३४, ४०६,

त

ताम = उसको – १०६, १४५, आदि
तामहि = उस समय – २२५,
तारादे = – २७५,
तारुणी = तरुणी – ३३५, आदि,
ताल = – २८२,
ताला = – २२६,
तालु = तालु – ३२६,
तास = उसके – ३४६,
तासु = उसका – २३, आदि,
ताह = उस, उन्हे – ३६६, आदि,
ताहि = उसे, तब – ७४, आदि,
ताहू = उनको, तब – १, २२३,
तिउ = – ४५७,
तिण = ते – ३२२, ३६८,
तिणि = उन – ७१, १८५, ३४२,
तिण्णि = तीन – ५१,
तिणु = – ४४७,
तिलु = उतना – २२०,
तित्थु = वहा – २६१, ४१६ आदि,
तिन = उन्हे – ८२,
तिनसि = तिनसे – ३६८,
तिनि = तैसी – ३३३, ४१६,
तिन्नि = – ५१६,
तिन्निउ = तीनो – ३४४, ४४३,
तिन्यो = तीनो – ३१६,
तिन्ह = उनके – ३३८, ३८७,
तिन्हइं = उन्हें – १७०,
तिन्हि = उन्है – २०४,
तिन्हु = उन्होने – ४२, आदि
तिन्हु कहु = उनके – ११५,
तिन्हु हुं = तीनो – ३६६,
तिमिर = अंधेरा – २८६,
तिय स्त्रिया – ७६,
तिया = तीन अं को वाला – १२६,
तिरइ = तैरना – २६०,
तिरिय = स्त्री – २५८, आदि,
तिरियनु = – ४३८,
तिरिया = स्त्री – ४२७, आदि,
तिरिवि = पार करना – २२२,
तिरी = स्त्री – २७८, ३०६, आदि
तिलउ = तिलक – १६७,
तिलक = " – ६८,
तिलोत्तमि = तिलोत्तमा – ३७६,
तिलग = तैलग – २७०,
तिस = उसका – ६२, आदि,
तिसु = उसे – ३३५,
तिसुधि = त्रिशुद्धि – ५१६,
तिह = उस – १४६, आदि,
तिहा = वहाँ – १५१,
तिहि = उसके – ४७, आदि,
तिहु = – ३६५, आदि,
तिहुकाल = त्रिकाल – १८६,
तिहु कौ = तिसका – १००,
तिहुवण = त्रिभुवन – ६, २४,
तिहू = तीन – ४२१, ४३०,
तीकउ = – १८२,
तीजइ = तीसरे – ३४२, ५४६,
तीजौ = तीसरा –
तीन = – ३४८,
तीनि = तीन – ४१०
तीनिउ = तीनो – ३४४, ३६१, आदि,
तीन्यौ = तीनो – ३३१.
तीय = स्त्रियाँ – ५३५,

तीया = स्त्रियां – ३६६,
तीर = – ४६५,
तीरहि = तट पर – २६१,
तीस = – ३६३,
तुज्झ = – २२१,
तुज्झि = – ५२१,
तुझ = – २०६, ५०१,
तुठ = सन्तुष्ठ – ५४,
तुडि = त्रुटि – ३६४,
तुणु = – १३६,
तुम = – ७३, ११०, १४८, आदि,
तुम्ह = – १३१, आदि,
तुमह = तुम्हारा – ११३,
तुमि = तुम – ४०३, ४०८,
तुम्हरइ = – ४७२,
तुम्हहि = तुम्हारे – ४०६, ४२७,
तुम्हहिन = – ५१६,
तुम्हारउ = तुम्हारा – ४२०, ४३०,
तुम्हारी = १०६, ३६२,
तुम्हारे = ४०४,
तुम्हारो = तुम्हारा – ४२२,
तुम्हि = – ७३, आदि,
तुरे = घोडे – १२१,
तुरंग = घोडा – ४५१,
तुरतु = शीघ्र – १६२, २६४,
तुरतउ = – २२८,
तुरता = शीघ्र – २२४,
तुलहती = तुलाराशि – २६,
तुव = तुमको – १०,५६,८४, ११२, २१६, २२३,
तुह = तुमको – ५५, आदि,
तुहारउ = तुम्हारा – ११३,
तुहि = तुझे – ८३, आदि,
तुहु = तुम – ५, १६, आदि,
तुह = – २२३,
तू = – ३०२, आदि,
तूटउ = टूटा हुआ – ४८३,
तूठउ = तुष्ठ, सन्तुष्ठ – ८२, ३३०,
तूठहि = सन्तुष्ट – ३३६,
तूठी = सन्तुष्ट – १६, ५७,
ते = वे, तेरे – ११, ४४, आदि,
तेउ = वह – ३४०, ४८०,
तेजू = नाम – १८१,
तेए = उसने – १३२, १४६,
तेतउ = उतना – ६३,
तेन = उसका – ४११,
तेम = उस प्रकार – १६,
तेरउ = तेरा – १६७,
तेरहमे = – २६,
तेरी = – ३७६,
तेरो = तेरा – ३६८,
तेव = – ३५६,
तैसे = वैसे ही – ३४,
तेसो = – ४२८,
तेहि = तुझ से – ३३६, आदि,
तो = तव – ३०६, ४७७,
तोडइ = – ५४२,
तोडि = तोडकर – ३४५,
तोडितु = तोडता – ३४५,
तोडे = – ५३६,
तोरए = – २८४, ४४३,
तोलि = लेकर – २६५,
तोवि = तोभी – ७६,

तोलु = मूल्य –
तोहि = तुझ से – १७, ४८, आदि,
तोही = तुझे – ३४३,
तौ = तो, तव – ७३, ३६२,
तौहि = तुझे – ३५४,
त = उसको – १५२,
तखण = उसी क्षण – ८१,
तंखिणी = तत्क्षण – ३२७,
तत-मतु = तत्र-मत्र – ६५,
तद = – १३६,
तबोल = पान – ६१, ८२, २१८,
तबोल = पान – ४१३,
तुग = ऊचे – ३६,

थ

थका = उसका – ७५,
थक्किउ = थकना – १६६,
थाट = ठाठ – ४५४,
थाढउ = खडा – ५३१,
थण = – ५००,
थाकइ = थकना – २०७,
थाटु = ठाट – २८१,
थाण = स्थान – ६६,
थाणू = स्थान – ६१,
थापि = – ४४६,
थापिउ = स्थापना – २६८,
थापियो = – ४२६,
थापे = स्थापित किये – ४४३,
थालु = ४६७,
थइ = स्तुति – १६,
थेई = मिली – २८८,
थोणवहि = – १८३,

थभणिउ = रोकती – २८७,

द

दइ = देकर – ८२, १८६, ३६३, ४७८,
दइजू = देना – ३०३,
दइय = दैव – ४८२,
दइया = दैव – १५५,
दइवि = देव – ३१३,
दरवु = द्रव्य – ४१५,
दप्पु = दर्प – ७,
दप्पू = दर्प – २२७,
दमइ = दमन – १५८,
दय = दया – ६, ५२५,
दया = – ४२, ४३, ५१७,
दयवत = – ५३६,
दयवतु = – ५४,
द्रव्य = – ४४६,
दरसणिदे = दर्शन दे – २७५,
दरसन = दर्शन – १०१,
दरसिणी = दर्शिनी – २८८,
दरसहि, = दिखाओ – ३२०,
दल = सेना – ४५२, ४६०, ४८५,
दवडी = द्रविडी – २७१,
दवणो = – १७२,
दव्व = द्रव्य (धन) – ७१, १३५, ५२०,
दव्वु = द्रव्य – १३०, १३१, १४
३३८, ३८७, ४०६, ४११
दविणमित्तु = – ५०८,
दश = – ५६,
दशपुर = – १३६,
दस = १० – २७, १३६,
दह = दश – ४१५, ४३६, ४५१, ४५२,

दहग = अग्नि, जलाना – १२,
दहदिह = दशो दिशाएँ – २६५,
दहिउ = दही – ४२४,
दक्षिण = दक्षिणी २७०, ४६०,
दाइजी = दहेज – १२६,
दाइजे = – २३६,
दाइजो = – ४४५,
दाइजी = – २८५,
दाउ = दाव – १२६,
दाख = – ३३, १७१, ४१२,
दाडिव = दाडिम (अनार) – ४१३,
दाण, दाणु = दान – ४५, ४८, ५०,
५०४,
दातलय = हसिया – ३७८,
दान, दानु = – १४०, २८५,
दानि = दानी – २७६,
दाम = कीमत – ३४, ६१, १०३,
मुद्रा, १२६,
दामु = एक सिक्का – ७२, ८२,
दारिदह = – ५२६,
दारिद् = दारिद्र – २७६,
दारुण = भयकर – २२५,
दास = – १६७, २४४,
दासि = दासी – ८३, ११६, ५४२
दाहिण = दक्षिण – ३०,
दिए = – १८४,
दिखाल = दिखलाया – १०५,
दिखालइ, दिखालहि= – ७०, २३५,
दिग्गु = दिखलाई देना – ३५३,
दिठ = दृढ – ४८२,
दिठउ = देखी – २२४,
दिठि = दृष्टि – ५१ ७७, १००, २८६,

दिठिय = देखी – ६०,
दिठियउ, दिंठियऊ = देखा –

दिठु = देखी – ८५, ४८७
दिठु = दिखाओ – ३२६,
दिढ-मतु = दृढ मत्रणा – १०३,
दिण्ण = दिया – १२६, २२२,
दिण्णु = दे दिया – १६, ४४४,
दिन, दिनु – ५६, १२७, १५
२११, ३३७,
दिन्न = दिये – २३६,
दिन्नु = दिया – २६५,
दिपइ = चमकना – २४, ४
दिपहि = चमकना – ४१, ८
२६६,
दिपे = – ३५०
दियइ = दिये – २६५,
दियउ = देना – ८२,
दिवपालु = – १८१,
दिवस = दिन – ६३, ३४८,
दिवसह = दिन में – ५०२,
दिवसी = दिवस – ३४०,
दिवाइ = दिलाना – ३८३, ५
दिवाए = – १७०,
दिवाटणु = रातदिन – ३३८,
दिस = – ४६१, ४
दिसइ = दिशाएँ – ३०६,
दिसतर = देशान्तर – १३६,
३८७,
दिसतरु = देशान्तर – १४०,
३८६,
दिह = दिशा – ४३६,

दिहि = देता है – १४०,
दीउ = द्वीप – १६६, १६७, ५४१,
दीज = देना – ४८, ११०, १४२, १४४, १४७, ३८२,
दीठ = दिखाई दिया,– २१६, ५०१, दृष्टि –
दीठइ = देखने पर – ३१४,
दीठउ = देख कर – १०६, ३१२, ४४८, आदि,
दीठी = दृष्टि – ११७, ७८, २२०,
दीठु = देखा – ४२४, ४३६,
दीठे = दीखे – ३८६, ५१६, ५४१,
दीण = दीन – १४४, ५०४,
दीणा = दीन – ४००,
दीणे = दिये – ६१,
दीन = देने – ३७४,
दीनउ = – १६६, ५३३,
दीनह = दीन – ४१६,
दीनिउ = – ४४६, ५३७,
दीनी = लगायी – १३१, १६२, २२७, २३६,
दीप = द्वीप – २००, २०२, आदि,
दीपि = द्वीप – ३६०,
दीवइ = दीपक – ५३,
दीवउ = देना – ७४,
दीवह = द्वीप – ५३५,
दीवि = द्वीप मे – २०१,
दीषा = दीक्षा – ५३७,
दीसइ = दिखाई देना – ३७, ३६, आदि,
दीसहि = दिखाई देना – ६३, २६३,
दीह = दीर्घ – ६७, २२६,
दुइ = दो – ६१, १८४, आदि
दुइजइ = दूसरे – ३४०,
दुइसइ = दो सो – ५५०,
दुख = कष्ट – २०७, २०६, २५८, ४०५, ४१२, आदि,
दुखह = दुख – ४०४,
दुखी = – ३२,
दुखु = – २, आदि,
दुज्जण = दुर्जन – २१,
दुठ = – ४२५,
दुहर = भयकर – १६४, ५३८, ५४७,
दुमह = दोनो मे से – ४२०,
दुल्लहु = – ४२६,
दुव = दो – ५०५,
दुविह = – ४८५,
दुह = दु ख – ६, ६, आदि,
दुहहरण = दु ख हरण – ४,
दुहिया = दु खिता – २२२,
दुहीं = दु खी – ५०४,
दूज = – ४४५,
दूत = – ३६८, ४६२, ४७०, आदि,
दूतरु = द्रुत – १६३,
दूमहि = दोनो मे – ४२२,
दूवइ = दोनो – ३१६,
दूसहु = दु मह – ४५४,
दूसिउ = – ४४८,
देइ = देना – २०, ४५, ५० आदि,
देउ = देव – २, ५४, आदि,
देखइ = दिखाई देना – ११८,
देखणाइ = देखने – १६३,
देखत = देखते ही – १५५, १६०,

२६१, २६६,

देखहु = – ११५, १३३,

देखालियउ = दिखाया – २७,

देखि = देखकर – २२, १००, आदि,

देण्ण = दैन्य – ११२,

देव = – २११, २१६,२३५, आदि,

देवति = देव – २६३,

देवलु = देवल – ३८१,

देवि = देवी, देकर, ११ ५१२,

देश = – १८६, ४५३,४५६,

देस = देश – ८५, आदि,

देसासु = साम रोककर – १६२,

देसि = – ५२७,

देसु = देश – ३१, ३२, आदि,

देमतर = देशान्तर – ३२४,

देह = शरीर – ६४, ६६, आदि,

देहि = देते थे – २३, २४, आदि,

देहु = देवे , देवा – ८०, आदि,

दाइ = दो – ४५६,

दोइ चारि = दो चार – १५१,

दाउ = – ५०५,

दोपु = – ४६५,

दोस = – ५४८,

दोसह = दोप – ७,

दोसु = दोप – २०, २१, आदि,

दड = – ३५, ३५३, ४६५, ४७२,

दडु = – ४७०, ४७१,

दत = दात – ४०६, ५३६,

दतूमालि = दातोवाला – ३४५,

दतमरि = पुष्ट दात – ३५८,

दतसूलि – पुष्ट दात वाला – ३४७,

दता सेठि = – १८६,

दंसण = दर्शन – ३८,

दसणु = दर्शन – ५२३,

दांत = – ४०७,

ध

धण = धन – ३६, ४७, आदि,

धणकण = धनधान्य – ८६,

धणदत्तु = – १८०,

धणदु = कुबेर – १२,

धनदेउ = – ५२७,

धणवाहण = धनवाहन-नाम – २०२, २१६,

धण्ण = धन्य – ११३,

धणी = धनी – ६३, आदि,

धणु = धनुष – ६८, आदि,

धण्णु देउ = धनदेव – १८४,

धध = – १८३,

धन = द्रव्य – १३५,

धनु = धन – १६४, १८५,

धन्नी = स्त्री – ३६६,

धम्म = धर्म – १, २१, २७, आदि,

धम्मु = धर्म – २, ३४, आदि,

धम्मुद्धरण = धर्मोद्धारक – १,

धर = धरकर – ८, २२६,

धरइ = धरना – ५१,६२, ''आदि,

धरण = पृथ्वी – ४५३,

धरणिदु = धरणेन्द्र – १२,

धरमु = धर्म – ४८, १४०,

धर्मपुत्र = धर्मपुत्र – १७६,

धरहि = लेकर – १८७,२४५, ४४१,

धरहु = – २३७,
धराइ = धरकरके – २७,
धरि = धारणकर – ६, आदि-२,
धरि धरि = – ८७,
धरिउ = धरी, पकड़ी – ३८५, ३६०, ५४०, आदि,
धहायउ = धाड मार कर –
धाहहि = दहाड मार कर – १५०,
धाडि = – ४७८,
धाणुक – धनुर्धर – ४५२,
धावू = – १८५,
धार = दौडकर – ७६, ४५६,
धारावधणी = धारा बाधने वाली – २८६,
धाव = दौडना – १५५,
धावही = दौडे – २६१,
धाह = धाडमारकर – ३१०,
धिउ = घी – ४२४,
धिय = लडकी – २२०,
धीइ = कन्या – २१०,
धीजहि = धैर्य देना – २४६,
धीय = लडकी, पुत्री – १०६, १११, ११२, आदि,
धीयउ = लडकी – १५०,
धीयह = पुत्री – २८२.
धीर = धैर्य रखने वाले – १३८,
धीरु = – ४६६,
धीरे = धीरता पूर्वक – १३६,
धुउसती = ध्रुवसती – ५०६,
धुजा = ध्वजा – १६१, १६३,
धूत = धूर्त – ४१०, ४१३,
धूप = – १७२,
धूपड = – १५५,
धूलि = – ४५३,
धूव = धूप – ५३,
धोवति = धाती – ३२५,

न

नउ = – ५०६, ५५२,
नगरी = पुरी – ४७,
नठ = – ३२८,
नटउ = खेलना – ३२७,
नट मट = – ६६,
ननादी = खेलने – १३६,
नमउ = नमस्कार करता हूं – ६,२७,
नमिउ = नमस्कार करना – ७,
नयण = नयन – ११७,
नयणु आखे – १५४, २०८, २४६,
नयर = नगर – ७३, ८६, १८६, ३०८, आदि,
नयरहि = नगर – ४७३, ४७४,
नयरह = नगर मे – ३४८, ४७८,
नयरि = नगर मे – ४७४, ४७८,
नयरु = नगर – १०८, आदि,
नर = मनुष्य – २११,
नरक = – २४६,
नर नारि = – ७३,
नरनाह = – ४७०,
नव निहि = नवनिधि – २०२,
नरयह = नरक – ४४६,
नरयह = नरक में – २२४,
नरवइ = नरपति – ३६८,
नरवतु = – ४६६,
नरसुर = नरलोक एव सुरलोक

निवासी –

नीग्द = नरेन्द्र, राजा – ४१७,

नरु = मनुष्य – २०३, २१४,

नवइ = नमस्कार करे – ४७३,

नवऊ = नमस्कार करता हूँ – १०,

नवजोवणी = नवयुवती – ७५,

नवरस = – २७२,

नवरग = नवीन रग – १७१,

नवि = – ४५५,

नसिरउ = निकला – २३५,

नही = – ४३२, ४८३,

नाइका = गायिकायें – ६०,

नायिकाए – १२५,

नाइकु = नायक – १६३,

नाइसि = रात्रि – २२३,

नाउ = नाम – ६२, ३१७, ३२१,

३२२, ५४०,

नाक = नासिका – ९६, ३७८, ४४८,

नागु = – २३२,

नागे = – १८५,

नाटकु = नाटक – ३२७,

नातरु = नही तो – १४७, १६२,

नाद = स्वर, आवाज – ९९, ३२८,

नाम = – १८५, २६६, ३८७,

नामु = – २५६, ४५४,

नामे = नामकी – ४६,

नायरु = – ४५०,

नायवतु = नीतिवाला – ८८,

नारि = नारी, स्त्री – ७५, ८३, ८४,

नारिम्ध = – ४३०,

नारिंग = नारगी – १७१,

नारी = स्त्री – २०८, ३३९, ३४४,

नालियर = नारियल – १७०,

नावइ = नमाये हुये – ९७,

नाह = नाथ – १५५, ३०४, ३१२,

३१५,

नाहि = नही – ३०४,

नाही = नही – ४७, ६१, १३०

१६४, ...

नाहु = नाथ – १९९,

निकरहि = निकले – १९५,

निकल = चला – ३३८,

निकले = – ४०६,

निकाली = निकालना – २२०,

निकिठी = निकृष्ट – ४०३, ४८२,

निकुताहि = बिनाकिसीकसी के–१०४,

निकुभ = – ४६१,

निगथु – निर्ग्रथ – ५१८,

निछइ = – ४६४,

निछउ = निश्चय – ५११,

निछम्मु = निश्छिद्र – ५११,

निछय = निश्चय – ७२,

निज = अपने – १९०, ३३०,

निठाले = निठल्ली – १६२,

नित्त = नित्य – ४७३,

निधान = नीचा – ३७८,

निपुस्सकु = नपुसक – १६५,

निम्मल = निर्मल – ५१,

निमित्तु = – ५१२,

निय = निज – ८१, १३४, १५४,

... आदि

नियकतु = प्रिय-पति – १५९,

नियउ = निकट – ५४१,

नियम = कायदा – ४१८,

नियमगु = निश्चित मन में – ५४,
नियाण = निदान – २६३, ४८०,
नियरु = निश्चय – ३४६,
नियवणि = नितविनी – ५४३,
निरकरइ = निश्चय रूप से करना – ३५८,
निरखहि = देखना – ४३१,
निरखे = देखे – ३५३,
निरमतु = – ५१८,
निरवाली = उलझने वाली – ३३६, ३४१, ३४३,
निरवासु = न रहने योग्य – ३४७,
निरविस = विष रहित – ' "
निरालउ = – ४७६,
निरु = निश्चित ही – १८, ५२, ५३, ६८, १८६, ' ' आदि,
निरुत = – ४९७,
निरुत्तु = – ५५१,
निरुभासि = आभास – ५४२,
निरुहउ = उदासीन – ५४०,
निलउ = – ४८६,
निवडइ = व्यतीत होना – २२३,
निवसइ = रहना – ४६,
निवाणु = निदान – ३५४,
निव्वाणु = – ५५१,
निवात = नवनीत – ४१२,
निवारइ = दूर करना – २०६,
निवारिउं = मना करना – ' '
निवियप्पु = निर्विकार – ५४६,
निस = रात – ३१५,
निसाण = निशाना – ४५३, ५०३, ५१५,

निसि = रात्रि – २०३,
निसिभोज = ५१८,
निसुण = सुनो – ११६, २६९,
निसुणहि = सुनो – ८५, ४७५,
निसुणाइ = सुनकर – ३६५,
निसुनहि = सुनो – १०८,
निसगु = निःशंक – २३२,
निसुंभहु = मार डालना – ४०४,
निहचैं = निश्चय से – १६७,
निहाणु = निधान – २६२, २८८,
नीकउ = अच्छा – १११, १५०, २३४, २९५, आदि,
नीकी = अच्छी – २२४,
नीकी = अच्छा – ११२,
नीत = – ५०७,
नीद = निद्रा – १६०,
नीदउ = निन्दा करना – २१६,
नीर = पानी – १९४,
नीरु = नीर-पानी – ३६८,
नीरह = जल मे – ३४१,
नीलामणि = – ४४५,
नीले = नीले वर्ण वाले – ९३,
नीव = नीबू – १६६,
नीसरइ = निकली – २००, २२६, ४५६,
नीसरयो = निकला – ३६६,
नीसरिउ = गये – १९७,
नेउर = नेवरी – ९१
नेत = नेत्र, एकरेशमी कपडा – ४९०, ५०३,
नेमु = नियम – २, ५२१,
नेवालउ = निवारिका – १७४,

पठाइ = भेजना – ८२,
पड = पट-चित्रपट – १०५,
पडइ = गिरकर – ६२, २२६, २८२,
३६८,
पडतव = पडने पर – ४६१,
पडयै = देना – ३३७,
पंडहि = – २४६,
पडही = पटही (बाजा) – ३८०,
पडाइ = गिर पडा – ३४०,
पडाइरइ = – १६१,
पडि = चित्रपट – १०८, १०६,
पडिउ = पडना – ७६, १३४, १३६,
१३७, आदि,
पडिगाहि = – ५३१,
पडिधटती = गिराकर – १५७,
पडिमाइ = प्रतिमा – ५२३,
पडियउ = पडा – २०५,
पडिहार = प्रतिहारी – ४६७,
पडिहारु = – ४६८,
पडी = गिरी – ३१, ५५, ४२७,
पडु = चित्रपट –
पडे = पडना – ४०८,
पढण = पढने के लिये – ६३, १२६,
पंढत = पढते हुये – ६५,
पढमु = = ५३४,
पढिउन = नही पढा है – २०,
पणवइ = प्रणाम करते है– १५, १६,
पणवउ = प्रणाम करता हूँ– ३, २८,
पणमउ = प्रणाम करता हू–११, १२,
पणसइ = – १६६,
पणाठी = नष्ट करना– ३२३,
पणीत = प्रनि– ५०७,
पत = – ३६२,
पतउ = पात्र– २०४,
पताका – – १६२,
पताल = पाताल– २४३,
पतालहि – पाताल– ३६७,
पतिवास = विश्वास– ३०३,
पत्ति = पत्नी– ५५,
पतीजइ = विश्वास– ३६६,
पद = – ५२०,
पदमणि = पद्मिनी– १०२, २७४,
पदमावती = पद्मावती देवी – १०,
२७३,
पदारथ = वस्तु (रत्न)– ८६,
१३२, १३५,
पदार्थ = – १८७, २८६,
पदोनि = मजबून– १७०,
पम्र = – २८६,
पभणइ = कहने लगा– ४७०,
पभणेइ = „ – १३३,
पभणेवि = „ – १६,
पभणेहि = „ – २६३,
पमाण = प्रमाण– २४,
पमाणु = प्रमाण– २६०, ५५०, ५५३,
पमुह = – ४२६,
पय = पद, चरण– ८, १४, २५,
१६६, ५२४, ५३०,
पयड = प्रकट– ६०,
पयडतह = प्रतिपादित करना– २१,
पयडति = प्रकट करती है–२८०,
पयत्थ – पदस्थ– ५२२,
पयदल = पैदल– ४५२,
पयपाइ = पद पाना– १६२,

पयपंच = पंच पद (पञ्च परमेष्ठि)– २५३,
पयार = – ५२४,
पयासहि = प्रकाशित– ३७१,
पयसित = प्रवेश होकर– ३५४,
पयी = पैरो मे– ६२,
पयड = प्रचण्ड– १६४,
पर = अन्य, लेकिन– ४२, ४७, १११, १६४ आदि
परऐमिय = परदेशी– २२३,
परकम्म = पराक्रम– ३६२,
परखि = परीक्षा– ८१,
परछण्ण = छिपा हुआ– ३७१,
परछनु = प्रछन्न, छिपकर– ३०८,
परजा = प्रजा– ३५, ३९९, ४७१,
परठइ = प्रस्थापित्त किया– ५०७,
परठइय = भेजना– ४२२,
परणाइ = विवाह करना– २३६,
परणारि = परस्त्री– ३५,
परणी = व्याही, विवाह किया– ३९०,
परणेइ = विवाहना– ३८०,
परतह = प्रत्यक्ष– ३२,
परतिय = दूसरी स्त्री– २१४, २५७,
परतिपु = प्रत्यक्ष– ४२४,
परतीर = समुद्रपार– १७६, १७९,
परतु = – ४२७,
परतूस = प्रतोप, सन्तोष– ३०१,
परदव्वह = परद्रव्य– ६८,
परदेश = – ४९२,
परधान = प्रधान– १८८,
परनारि = परस्त्री– ६८,
परम = – ५३८,
परमप्पउ = परमात्मा– ५४६,
परमप्पा = परमपद– ५२१,
परमेठि = परमेष्ठि– ५२, ४७३, ४८७, ४९३, ४९४,
परवाणि = प्रमाण– १०३,
पखालि = धोना– ५३८, ५४७,
परलोप = परदेश– २२२,
परसइ = स्पर्श करना– ८,
परसन्नी = प्रसन्न होओ– १६,
परह = दूसरो की– ५०,
परहस = प्रसन्न– १४५,
परहसु = परिहास– २२२,
पराई = दूसरों की– १४१, २१४, ३६५,
पराण = प्राण– २५२, ३०४, ३१४, ३५७,
परि = गिरना– २४१, ४०२, ४९७,
परिखा = खायी– ४५८,
परिगहु = विश्वास– ३५०, ४६०,
परिजा = प्रजा– ४५६, ४५७, ४५८, ४७०, ५०५,
परिठइ = रखना– ३३४,
परिठविउ = परिस्थापित– ६९,
परिणइ = परणाना– ३४९, ३७२,
परिणाई = · · – ४४४,
परिणाम = नतीजा– ३७६,
परिणामु = नमस्कार– ५१५,
परिणावहि = विवाह करो– २८४,
परिणाविय = विवाह किया– २८५,
परिणिय = विवाही– ३९०,
परिणेइ = परणी, व्याही– २५९,
परितहि = पडते ही– १९९,
परिपुण्ण = परिपूर्ण– ५०९,

पहुंतइ = पहुंचना– ३४०,
पाइ = पैरो को– १०, १६, आदि
पाइरु = पैदल– ४५२,
पाइयइ = प्राप्त करना– १४३,
पाइयउ = पालन किया– २५४,
पाइलागि = पैरो पडकर– १७५,
पाइसइ = – ४२६,
पाई = – २८६,
पाउ=पायी जाती है,– ३१, ६१, २३१,
पाप– ४३८, आदि,
पाकउई = – ४३४,
पाछइ = पीछे– २६४, ३०५, आदि
पाट = सूती वस्त्र– १०३, २८१,
पाटण = नगर– ३४, १६०, १६७,
पाटणु = पाटन, नगर– ३३८,
पाटलइ = रेशमी वस्त्र लेकर– १८५,
पाठउ = – ५४५,
पाठयउ = भेजा है– ५३६,
पाडल = पाटल– २६, १७४,
पाण = पान, हाथ– ६१,
पाण = वाचाल– ३२२,
(श्वपच)– ३२४,
पाणिउ = पानी– १६४, ३६७,
पाणिउ सोखणी = पानी सोखने वाली
– २८६,
पाणु = प्राण– २३३, ३२३, ३२५,
पातकी = पापी– १४०,
पान = पानी,– ३२४,
ताम्बूल– ५०२,
पाप = – २४०, ४३४, ४६६,
पापिणी = – २२०, ३११,
पापी = (पाप करने वाला) सागरदत्त
२४०, २५५, ४४८,
पापीया = – १४३, २४६,
पामरि = नीच– ३१,
पाय = पैर– २२, २५५, आदि
पायालगामिणी = पातालगामिनी–
२८७,
पार = सीमा– १६४,
पारधी = शिकारी– ४३,
पाराणु = प्राण– ३५४,
पालइ = पालना– ४२,
पालक = पालने वाले– ४४,
पलग– २६६,
पालहि = पालना– ४३, ५०५,
पालहु = – ५११,
पालि = – ५३८, ५४७,
पालिउ = पालन किया– २८,
पालेइ = पालन करना– १५८
पालक = पलग– २२१,
पावइ = पान– ४१८,
पावह = पाते है– ५१०,
पावै = – ७२,
पाषाण = पत्थर– ३३२,
पास = निकट– ४८, १३४, ३७०,
पासणाह = पार्श्वनाथ– ८,
पासि = – १३५, ३५१, ३६३,
पासु = पास– ३०६, ३१०, ३७६,
४५६, ४८५,
पाहडु = उपहार– ४६४,
पाहण = पत्थर– ३१३,
पाहणमय = पाषाणमय– ७८,
पाहणु = पत्थर– ३३३,
प.हि = पैरो पर, – ४५२,

पुरी = नगरी – ८७, ... आदि
पुरु = पुर, नगर – ३६०, ५३०
पुव = – ५३४
पुप्प = फूल – १६८,
पुष्पयतु = पुष्पदन्त – ४,
पुहम = – ४३२,
पुहमि =पृथ्वी – ४५,
पुहमिहि = पृथ्वी पर – ५१०,
पुहिमु = पृथ्वी – ४२१,
पूछ = पूंछ – २२८, ३५५, ३६६,
पूछइ = पूछना – ११०, ११४,
११६, १४७, ४२२,... आदि,
पूछउ = पूछना – ३३६, ३७१,३६६,
.... आदि,
पूछण = – ३६६,
पूछहि = – ३२६, ३६०,
पूछियइ = – २१३,
पूछित = पूछने पर – २१३.
पूछियल = पूछा – ३२०,
पूज = पूजा – ६२, १६८, १८६,
पूजण = पूजन – २६७,
पूजि = – ५३१,
पूजिउ = .. – ५३०,
पूज्जिउ = पूजा की – ५५,
पूजित = – ५३०,
पूत = पुत्र – ६१, ६७,... आदि,
पूतलिय = पूतला – ३६२,
पूतली = स्त्री – ८०,
पूतह = पुत्र – ४६,
पूतु = पुत्र – २६, ४७,... आदि,
पूय = पूजा – ५४,
पूरविणी = पूर्व की – २७०,
पूरहुवा = – १२६,
पूरिउ = पूरे – ६०,
पूर्ण = पुण्य – ४४३,
पूर्व = .. – ४३०,
पूव = पिता – १४२,
पेखत = – १५५,
पेखि = देखना – २२, १७८, २२२,
२२३,
पेखियइ = देखी जाती थी – ३५,
पेट = .. – २३५, ३२४,
पेटहि = पेट मे – ... .
पेटु = पेट – ३७७,
पेठियऊ = भेजना – ४२१,
पेरियउ = पार करना – ३६८,
पेलि = पेल कर
पेसियउ = प्रवेश करना – २२२,
पोटली = ... – २४०, २४१
२४२, २४३,
पोटी = उदरपेशी – ६४,
पोढा = प्रौढा – २७८,
पोमिणिवइ = पद्मावती – १२,
पौरपु = पौरुष – ३६७,
पौरुष = पुरुषार्थ – ३६२, ३६८,
पच = पाच प्रकार – १२०, आदि,
पचऊलीया = पचोलिया – २६,
पचकाय = पचास्तिकाय – ५२०,
पचदस = पन्द्रह – ६३, १५०,
पचपय = पचपरमेष्ठि – २५१,
पचपरमेठि = पचपरमेष्ठि – १८६,
पचम = ५, – २६,
पचमगइ = पञ्चमगति (मोक्ष)–२५२,
पचमहव्वय = पचमहाव्रत – ५३८,

पचमि = पचामृताभिषेक – १५२,
पचानुव्वइ = पचाणुव्रत – ५१,
पचु बर = पाच उदम्बर – ५१८,
पथ = मार्ग – ३३, ४६०,
पथि = पथिक = १६४,
पडिय = पडित – ४३६,
परोहण = जहाज

फ

फरहराइ = फहराना – ३७२,
फरी = लकडी
फल = – ५३, १७५,
फलह = फले – ५०६,
फली = – ५१४,
फलु = – ५१०,
फाटइ = फटना – ३८८,
फाटहि = फटना – ३१३,
फाडउ = – ४७७,
फिरइ = फिरने लगी – ६६, १३६, १४०, आदि,
फिरत = – ८५,
फिरि = फिर – २८८, २६२,
फिरिउ = – ३०, आदि,
फीटउ = नप्ट होना, – ४०३,
फुक्कारतउ = फुकारना – २२८,
फुड = स्पप्ट – ८५, आदि,
फुडउ = स्फुट – ३६२,
फुडी = स्पप्ट – ३८५,
फुडु = स्पप्ट – ४३७, ४७०,
फुणि = फिर – १४६, आदि,
फुनि = – २३८,
फुरइ = स्फुरित होना – २२, ४८४,
फुल्लै = फूले, पुप्प – ५३,
फूटे = नष्ट होना – ४८१,
फूल = पुष्प – २०६, आदि,
फूलह = – १५३,
फूलहि = – १६६,
फूली = – ५१४,
फेरिउ = फिराया – ३५६,
फेरियउ = घुमाना – २२८,
फोडि = फाडकर चीर कर – ३६८,
फोफल = सुपारी – ६१, १६७,
फोफिली = सुपारी – १७१,
फौकरइ = फुकारना – २६६,

ब

बइ = – ४७८,
बइठे = बैठे – ४०६,
बखाणु = वर्णन – २०,
बणिज = व्यापार – १७७,
बत्तीस = ३२ – ५६, ४५१,
बत्तीसह = – ४२८,
बधाऊ = बाधावा – ६०,
बरात = – १२४,
बरातु = बरात – १२०,
बरी = लगाया – १२१,
बलवीर = शक्तिवान् – ५,
बलवीरु = बलवान् – २२७,
बलह = बल – ३७०,
बसहि = रहना –
बसतपुरि = बसतपुर – २५६,
बहुत = – २०८,
बहुत्तरु = ७२ – ६५,
बहु = – २३४,

बहुत = बहुत प्रकार से,– ११३ १६०,
वहुतक = वहुतेरा – १७४,
वहुतु = वहुत – १६४,
वहुतो = – ४८८,
वहू = – ४५५,
वहृत = वहुत – १९२,
व्रह्मा = – १०७,
वाढइ = वढा – ६२,
वात = – ११७, १३२, आदि
वाधउ = – ४७६,
वाप = पिता – २४२, ३८८,
वार = देर, समय – ११४, १२४,
वार-वार = – ७०, ३२५,
वारह = – ४१६, ५०१,
वाल = मजरी – १८०, २३७,
वालाह = वालक – १४८,
वावणउ = वौना – ३९५,
वाधि = वाधकर – २८०,
वाह = भुजा – ४५६,
विज्जाहरु = विद्याधर – ३८०,
विलग्गाहि = विलखना – ५६
विम्बु = प्रतिमा = ५८,
वीसा = वीस – २००,
वुधि = वुद्धि – ७१, २७, आदि
वुगे = – २०९, २११,
वुलाइ = वुलाना – १०४, १०९, आदि
वुलावे = – ६६,
वुलालउ = वुलाना – ३३८
वुलावहु = वुलाना = ४७०,
वूड = डूबना – ८८,
वूडउ = डूबा हुआ – ३६०,
वूडन्नाहि = डूबते जाते – ६०,

वूडणि = वृद्धा को – २१६,
वूढी = वृद्धा – २०६,
वेचिउ = वेचना – ७९,
वेर = वोर – १७२,
वैठे = – १४१,
वोल = – १११, आदि,
वोलइ = – ५६, आदि,
वोलवोल = – ३९४,
वोल्लि = वोलना – २३०,
वगालि = वगाली – २७०,
वदियइ = वदना करना – ५०,
वध = वांधकर – ४७०,

भ

भउ = हुइ – १०१, ३०६, ३८२, आदि,
भई = होगई – २३४, १६०, आदि,
भउ = हुआ = ६६, आदि,
भउभाउ = भेदभाव – २५०,
भउह = भोहे – ९८,
भगति = भक्ति – ११७,
भड = भट, योद्धा – ३८८, ४६०, आदि
भडराउ = योद्धा – ४६३,
भटवाह = भटनाग – ३४९,
भडागी = भडागी – १३२,
भणु = कहना – ५५, २५१,
भणी = कहलाना – ८६, २७१, आदि
भणेट = वही – २३२,
भणताहि = कहते हुये – २२३,
भत्तार = भर्तार (स्वामी) – ४१८,
भत्तार = भर्तार (स्वामी) – २५७,

भत्त = भक्त = ६८,
भमइ = घूमना – ३२६,
भमत = भ्रमण करना – ८५,
भमिय = फैलना – ४५,
भमतु = – २२६,
भय = डर – ३४६, ३५६,
भयऊ = हुआ – ६०, · · · आदि,
भयो = हुआ १२३, · आदि,
भरइ = भरा – २६८,
भरण = " – ४८१,
भरतार = स्वामी – ३०४,
भरलइ = भरलिये – १८४,
भरह = भरत – ६४,
भरहखेत = भरत क्षेत्र – ३०,
भरहि = – १८६,
भराति = भ्रान्ति – ५११,
भरि = भर – ६८, आदि,
भरिउ = भरा – ४०५,
भरिथालु = थाल भरकर – ४६४,
भरी = भरना – ८७, आदि,
भलउ = भला = ३५३,
भलि = अच्छा – २०४,
भली = सुन्दर – ८५, आदि,
भले = ४४१,
भलौ = सुन्दर – ३५५,
भव = जन्म – १६६, ३५५, आदि,
भवउ = – ५३४,
भवकूवि = भवकूप – ५२४,
भवण = भवन – ४१, आदि,
भवणु = जिन-मन्दिर – १५२, आदि,
भवमल = – ५२०,
भवियउ = भव्य – ३६१, ४३८,
भवियणइ = भव्यजनो – २५६,
भवियहु = भव्य – २५०, आदि,
भव्व = भव्य – ५०, ५२०,
भव्वु = भव्य – ५१२,
भाइ = भाव – २८, आदि,
भाउ = भाव – ६, आदि,
भाग = भागका – ५३२,
भाज = भागती – ३५६,
भाट = भाट – ३८०, ५०३,
भातु = भात – ४२४,
भादव = भाद्रपद – २६,
भामरि = भ्रमरी – ५३०,
भामादे = – २७१,
भारती = सरस्वती – १६,
भालु = भाल – ३४५,
भाव = विचार – ६६, ७५,
भावइ = – ४८४,
भावण = – ५२१,
भावती = अच्छी लगती है – १५, २७६,
भाष = वचन – २२२,
भासहि = कहने लगे – १२६,
भासियहु = कहा हुआ – ५८,
भिक्खाहारी = भिक्षाहारी – ४०१,
भिख्या = भिक्षा – ३७२,
भिटाइय = भेंट कराना – १५०,
भिडाइ = भिड जाना – ३६८,
भिंभली = – ७८,
भिंभलु = विह्वल – ३४५,
भीडे = – १२१,
भीतरि = अन्दर – ३६, ४६७, आदि
भुगति = भुक्ति – १६६,

म

मज्झि = मध्य – ३०, १५०, २५३, आदि,
मज्झु = मुझे – २८, आदि,
मझारि = मे, मध्य, ८८, २२०,आदि,
मडउ = मुडी – २२५, ३६५,
मडु = मुडा हुआ – ३७२,
मण = मन – २९२, आदि,
मणमथ = मनमथ (कामदेव)–५४१,
मणवयकरण = मन, वचन और काय – २५७,
मणह = मन मे – २२१,
मणहिं = – २४७,
मणि = मन – २५, ५०, आदि,
मणु = मन – ५४, ५८, ६४, आदि,
मणुअ = मन – १५५,
मणुसु = मनुष्य – २६४,
मत्त = मात्रा, मस्त – २०, २३,
मत्तइ = माता से – १४६,
मतलोगु = मृत्यु लोक – २७,
मति = – २४५,
मतिहीण = मतिहीन – १८८,
मती = – ४४०,
मतैं = मतानुसार – १४८,
मथियउ = मथना – ३८४,
मन्दिर = जिनालय – ४२१,
मन = – २०६, आदि,
मनपुरी = मन को पूरा (सतोप) करने वाली – २७८,
मन भावती = – ५०८,
मनि = मन मैं – २४०, ३८४,
मनु = मन – ६७, ६८, ७२, ७५, ... आदि,

मनोहरु = मनोहर – १०८,
मय = मद – ३४५,
मयण = मदन (कामदेव) – ९८,
मयणदीउ = मदनद्वीप – १९७,
मयणसुन्दरी = मदन सुन्दरी – २७३,
मयमतु = मदमत्त – ३४७
मयरा = मदिरा – ३६,
मयसार = मद सहित – ६४,
मया = – ४३, ३१५,
मयक = चन्द्र – २२१,
मरइ =मरना – २०३,
मरगजमणि = – ४४५,
मरजिया = – १९२,
मरण = मृत्यु – ६, २६१, ३६५,
मरत = मरता – ३२३,
मरविण = – ३६,
मरहि = मरना – १३८,
मराउ = मरजाऊँ – १५६,
मराल = हस – १५
मरि = मरी – ३६ ४४६, ५३५, ५४६,
मरु = मरकर – ५३६,
मरुवउ = मरुआ – १७३,
मरुहटी = मराठी – २७०,
मरेवि = – ५३४,
मलणु = मर्दन – ३६,
मलहारि = – ५२४
मल्लिणाह = मल्लिनाथ – ७,
मलिणु = मालिन्य – ३६,
मसाणि = श्मसान – २२५, ३६५,
मह = मे – ४२०,
महवणु = महत्वपूर्ण – ३६०,

महमहणु = मधुसूदन – १०७,
महरू = – १८१,
महघी = अधिक मूल्य वाली – १७६,
महा = – ५३१,
महापुराणु = महापुराण – ६४,
महावल = महावलवान – ११८,
महामति = – १८३,
महामत्र = – ४६२,
महावतु = महावत – ३४५,
महावत्थु = महावत – २४५,
महि = मध्य मे – ७६, २४२,
.... .. आदि,
महि मडल = पृथ्वी मडल – ८६,
महियलि = पृथ्वी पर – २,
महिलइ = मध्य मे – २६४,
महिप = भैसे – १८६,
महु = मेरी – ११, १६, २० ..आदि
महोछ्छउ = महोत्सव – ५७,
महोवहि = महोदधि – २५६,
महावेगु = महावेग – २६१,
महत = – ४५७,
महतु = वडा – ४०६, ५१३,
मृग = हिरन – ३७६,
म्हारउ = मेरा – ४६७,
म्हाग्यि = मेरी – १५०,
म्हारी = मेरी – २४६,
माइ = माता – १६, २७, २८, आदि
माईयइ = समा जाना – ६२,
माखउ = – ४८५,
माग = – ६८,
मागइ = मागना है – ४६६,
मागहु = – ४५५,
मागि = मॉगो – ३३०, आदि,
माझ = मध्य – २३३,
माझिझ = मध्य मे – १५३,
माटी = मिट्टी – ३४७,
माठी = सुडौल – ६६,
माडियउ = तैयारी करना – ४८०,
माण = मान – २३, ३५७,
माणमु = मनुष्य – २११, २२७,
माणिक = रत्न – ४१ १३५,
माणिवि = मानकर – ५३४,
माणु = मान – ३६,
माणुसि = मानवी – ३३३,
माणुसु = मनुष्य – २२१,
माता = माँ – २७, २८, ३८६,
माति = सीमा – ५११,
माथे = मस्तक पर – १६२,
मानइ = मानकर – २६१,
मानहि = मानते थे – ४६१, ५०४,
माय = माता – २६३, ३८६,
माया = – ५३६,
मायारु = माया – ३६,
मारइ = मारना –
मारउ = मारु गा – २२८, २३०, २६५
मारण = मारना – ४४,
मारणु = घात – ३६, २६४,
मारि = घात – ७१, १००, आदि,
मारिउ = मारना – २२३,
मारु = मारो – २६३, ४५७,
मारुवेग = वायुवेग – २६१,
मारोगा = – ३७४,
मान्न = मान्ना – २१८, २४१, ३७८,
मान्नी = – १७२,

मालिए = मालिन – २१३, ३६५,
मालिणि = – २०५, २०६,
मालिणिस्यो = मालन से – २१५,
मालिन = – २०६,
माली = एक जाति – ४३,
माल्हती = लीला पूर्वक – १०१,
मास = महीने – २७, ५६, आदि,
माह = मे – ३१२,
माहि = मे – ३४०, ३८०, आदि,
माहिलउ = मारना होगा ,
माही = – २२८,
मागउ = मागता – ३६३,
मागियउ = – ४६२,
माज्झि = मध्यभाग – १५३,
माडे = – ४१२,
म्हारौ = हमारा – ४०१,
मिछ्ती = मित्यात्व – ५४६,
मिटावहि = – ४६८,
मिठिया = मधुर – २२१,
मिमि = – १५६,
मिय = मित – ४०२,
मियणयणि = मृग नयनी – ६७,
मिलइ = मिलना – ३२५, ३५१,
मिलवहि = मिलाना – ४०७
मिलवहु = मिलकर – ३६२,
मिलहि = – १८१,
मिलि = मिलकर – १२२, आदि,
मिलिउ = – १२३,
मिलिए = – १८७,
मिलिय = मिल गये – ४६२,
मिलियउ = – ४८८,
मिली = – २८६, २८६,
मिले = – १५०,
मीच = मौत – २१४, आदि,
मीचु = मृत्यु – ४२, ५१६,
मीठु = मीठे – ४२४,
मीणु = मीन (मछली) – ३६,
मुकउ = मरा हुआ – २११,
मुक्के = मुक्त – ६,
मुख = – ४३६,
मुखी = मुखवाली – १५७,
मुठि = मुठ्ठी – ६८, ७१,
मुणइ = – ४४१,
मुणउ = जानो – २६६, ५५२,
मुणसु = मनुष्य – २६५,
मुणसाइ = मनुष्यता – २६४,
मुणहु = – ५१७, ५४८,
मुणाइ = मरने पर – २५३,
मुणि = जानना – ६४, ५३०,
मुणिउन = नही जानता – १६४
मुणिवरु = मुनिवर – ५५, ५७,आदि,
मुणिसरु = – ४४५,
मुणिसुव्वइ = मुनिसुव्रत – ७,
मुणिह = मुनिवर – ६२,
मुणिद = – ५२०, ५२३,
मुणीसरु = मुनीश्वर – ५३१, ५३७,
मुक्तादेवी = – २७७,
मुक्ताहल = मुक्ताफल – १३५, ४४२,
मुक्ति = मोक्ष – ५१, आदि,
मुदिगर = मुद्गर – १६१,
मुह = मोह – २२१,
मुनि = – ५६, ५१४,
मुनिउ = – ४६४,
मुनिनाह = मुनिनाथ – २८२,

मुनिवर = – ५५,
मुयउ = मरना – १४१,
मुसरण = – ३६,
मुसि = चुराना – ३११,
मुह = मुख – १४, १७८, आदि,
मुहइ = मुह – २५६,
मुहमुंडलु = मुखमडल – ६७,
मुह मुहते = मुख मे – २२६,
मुहि = मुझे – ३०५, आदि,
मुहु = – २३८, आदि,
मुंडइ = मुंडी – २२७,
मुंदडिय = अंगूठी – ६१,
मूकी = छोडी – ३१२, आदि,
मूठिहि = मुट्ठी मे – ६२, ३५८,
मूंड = शिर – ४१८,
मूंडिउ = शिर – ३७२,
मूंडी = मूंडना – ३२३,
मूढनि = मूर्ख – २१६,
मूढ = मूर्ख – ३६,
मूंदडी = मुद्रिका – २८६,
मूलू = मूल (जड) – १५२,
मेइणि = मेदिनी (पृथ्वी) – २६६,
मेखला = कनकती – ३७५,
मेर = मेरे – ३०४,
मेरउ = मेरा – ३३३, आदि,
मेरू = – २६६.
मेरे = – ४०८, ५०१,
मेलउ = – ३४२, ४३८,
मेलि = मेल – ३६६,
मेहु = मेघ (बादल) – २६३,
मोकड़ी = मोगरी – ३७८,
मोक्खह = मोक्ष – ६,
मोखती = – २७८,
मोखह = मोक्ष – ५४६,
मोटउ = मोटा – ३५७,
मोडति = मोडना – २२४,
मोडी = मोडकर – ३४५,
मोतिम्ह = मोतियो के – ६०,
मोत्तिय = मोतियो के – ६८,
मोती = – ४१, आदि,
मोल = मूल्य – २०१, आदि,
मोलि = – १३५,
मोल्लिवि = – ४०३,
मोंगु = बहुमूल्य – १८७,
मो समु = मेरे समान – १३७,
मो मेउ = मुझ से – ५७,
मोस्यो = – २४५,
मोष = – ४६५,
मोह = – ३६,
माहउ = मोहित – ३३६,
मोहणिय = मोहिनी – ३७६,
माहणी = मोहनी – २८७,
मोहमल्ल = मोहरूपी योद्धा – ५३६,
मोहि = मुझे – आदि,
मोहिउ = मोहना – २२३, ३६२,
मोहियइ = – ४२८,
मोही = मेरे – १५५, आदि,
मोहु = – २३७, ५३६,
मगल = – १३,
मगलु = – ३६,
मगाली = – २७०,
मझारि = मे – २८४,
मडणु = – ४७३,
मडिय = मडित – २६५, ३०६,

मत = मत्रणा – २४८, आदि,
मति = मत्री – २०५,
मतिहि = मत्रियो – ३६६, आदि,
मदर = महल – ३६,
मदार = – १७४,
मदिर = आवास, महल – ८६,
मदोदरि = मदोदरी – २७५,
मस = मास – ३६,
मसु = मास – ५१८,
मत्र = मत्रणा – ३६४,
मत्री = मत्री (सचिव) – २०३, ३६४, ४६३,

य

यह = यहा – ४३२, आदि,
यह रही = हरी होना – १६४,
यहि = – १३६,
यौं = इस प्रकार – १७,

र

रई = रत्नी – १६८, आदि,
रउद = रौद्र – ५२२
रखहि = – ४६२,
रचउ = रचना करना – १६,
रचीय = – १२५,
रचे = – ४५७,
रजउ = – १८१,
रउड = रुदन – १५५,
रडियइ = रोने लगी – १५४,
रणि = युद्ध मे – ५३६,
रणु = – ४८०,
रतन = – १३५,
रतिपति = कामदेव – ५४३,
रथनुपुहि = रथनूपुर – २६७,
रमइ = रमने लगे – ७३, ७६,
रमायणु = रामायण – ६४,
रउय = रचना करना – २५, ५५०,
रयण = रत्न – ४१, १३४, आदि,
रयणनु = रत्न को – २६८,
रयणह = – ४६०,
रयणाइ = रत्नादि – ५२३,
रयण्णह = रत्नो को – २४१,
रयणि = रात्रि – ३०७,
रयणी = रत्न – २३६,
रयणु = रत्न – २६२ ३७३, आदि,
रयवर = काम – ५३६,
रल्ह = 'कवि का नाम' – १५, आदि,
रविधाम = सूर्य के प्रकाश मे – ३७६,
रस = – ७६,
रसण = रसना – २८८,
रसु = रस – २८८,
रख्या = रक्षा – ११,
रहइ = – १५१, १५८, आदि,
रहणु = रहना – २५४,
रहस = मुख – १६५,
रहहि = रहना – २८८,
रहावइ = सान्त्वना – ३१६,
रहि = – ४६१,
रहि = उरक्षा – २७, आदि,
रहिय = रहना – २५८, आदि,
रहो = रहना – ३३१, आदि,
रहु रहु = चुप रहो – २१५, २३०, २६६
रहे = रहना – १७०, ३४८, आदि,
राइ = राजा – १६२, आदि,

राइचपउ = रायचपा – १७३,
राइरा = राजा – २१०,
राइसिहि = राजसिंह कवि – २००,
राइसिहु = राजसिह (रल्ह कवि)–८,
राइसीह = राजसिह – ४३६,
राइमुन्दरि = राजमुन्दरी – २२२,
राउ = राजा – ४, आदि,
राउमति = बुद्धिमान राजा – ४६३,
राख = रखी – ४६०,
राखहि = रखना है – १४०,
राखहु = रक्षा करो – ४५६,
राखि = छोडकर – २६२,
राज = राज्य – १२७, ४१३,
राजथाणु = राजा का स्थान – ४०,
राजनु = – ४६५, ४६६,
राजभोग = – ५११,
राजा = नृपति – ४०, ४१, आदि
राजासइ = राजा स्वय – ३५१,
राजु = राज – ३०, आदि
राणि = रानी – २६८ आदि
राणी = रानी – २०२ आदि
रातहि = रात्रि को – ५०२,
राति = रात्रि – २१०, २९९, ३००,
रामा = – ७७८,
राय = राजा – ७२३ आदि
रायणु = राजन् – २३८,
रायहु = राजा – ४८०,
रायसिउ = राजसिंह – २६८,
रायसिह = ,, – ५४७,
रायसोय = राजा अशोक – ७६५
रायन्यों = राजा ने – ३१९,
रा[illegible]र = रा[illegible]ना – ३४१ आदि

रावत = राजा – ४५२,
रावलि = राजा – ४२२,
रासि = समूह – ७, ८२, ११९,
राहणु = – ५२४,
राहाइ = रहा – ३४०,
राहु = – १३,
रिमउ = – ५२७,
रिसहाइ = वृषभादि – १,
रिराहु = वृषभनाथ – १,
रिसि = ऋषि, मुनिवर – ५८, ६७,
रिसीस = ऋषियो के ईश – ३,
री = अरी – २०७,
रीती = – ४४२,
रुउ = रूप – ५३८,
रुदन = – २०८
रुधित = धारण किया – १५४,
रूप = सौन्दर्य – ८४, .. आदि,
रूपजा = रूप मे – ८३,
रूप निवासु = रूप का निवास – ४१,
रूपरासि = रूपराशि – ६०,
रूपसुन्दरी = – २७३.
रूपष्टि = रूपकी – ८३,
रूपाइ = – ७५१,
रूपिणि = – ४२९
रूपु = रूप – १००, १०४,
रुलइ = हिलना – ६८,
रूव = रूप – ४६, ६० आदि
रूवडउ = सुन्दर – १६६ .. आदि
रूवडी = रूपवती – १११, ११७,
रूव मुरारि = रूप मुरारि – २६७,
रूवह = रूपवान – ६०१,
रूवहि = रूप की – ११६,

रमि = कोविद – ३०६,
रेख = रेखा – २७२, ४७२,
रेवती = रानी का नाम – २८५,
रेह = रेखा – ६४ आदि
रोपि = रोपकर – ११५,
रोपिउ = खड़ा किया – १६२,
रोपियउ = – ४४३,
रोय = – ३००,
रोल = रोला (शोर) – ४५५,
रोवइ = रोती है – १५४ आदि
रोवहि = „ – २१५ आदि
रोवनी = – २२२,
रोसु = रोष – २१,
रोहणि = रोहिणी – १०,
रोहिणी कनु = रोहिणी देवी के पति, चन्द्रमा – १२
रग = – ६३,
रजणु = रजायमान – ४५,
रजावहि = रिझाने – ३३५, ४०१.
रजि = रजायमान (प्रसन्न) – २१,
रम = रमा – ३७६,
रमादे = – २७३

ल

लइ = लिया – ७६, ८० आदि
लइकर = लेकर – २१२,
लइजाइ = लेजाना – १७५,
लइरु = लेकर – ४१६,
लए = लेना – ४०७, ४५१, ४६१,
लक्खण = लक्षण – २०,
लक्षण = चिह्न – ५६, ८१, ४२८,
लखण = लक्षण – ४२३,
लखु = लक्ष – २३,
लगण = लग्न – ३५६,
लगु = लगना – ६७, ४५६,
लगुण = लग्न – ११७, १२४,
लगनु = मुहूर्त – ११२,
लगि = लगी – ५४७,
लगिउ = – ४६६,
लछि = लक्ष्मी – १३६, आदि,
लछी = लक्ष्मी – ५३८, आदि,
लजालु = लज्जाशील – ६६,
लज्जविणु = विना लज्जा के – ६८,
लडि = – ४३४,
लद्धउ = प्राप्त किया – २५६,
लयउ = लेकर – ५३, ६४, आदि,
लये = लिये – ४५१,
लयो = लिये – १३७, आदि.
ललाट = भाल – ६८,
ललित = पली हुई – ३०६,
लवइ = कहना – ४७६,
लवणिउ = नवनीत – ५१८,
लवणोवहि = लवणोदधि – ३०,
लवग = लोंग – १७१,
लहइ = प्राप्त करना – २६४, आदि,
लहय = लेकर – ५३,
लहर = – २४७,
लहरि = – १६४,
लहिउ = प्राप्त किया – ५०७,
लहिय = प्राप्त करना – ५२६,
लाइ = लाकर – ८, ३६६, ४०३,
लावइ = – ३००,
लाकडी = लकडी – ३७७,
लाख = लक्ष – ७२, ८२, आदि,

लाखु = प० लाखु – ४५०,
लागइ = – १४८,
लागउ = लगता हूँ – १०, ५१६,
लागि = स्पर्श कर – २४२, २५५,
लागी = – ११४, २४६, ३१७,
लागु = लगा – २३२,
लागे = लगे – ३६६,
लाग्यो = – २२७, आदि,
लाडि = लाडी – २७०,
लाणी = – ४४२,
लापड = लपट – ४७७,
लापसी = ... – ४१२,
लयइड = लगाना – १४३,
लाव = – ७५,
लावऊ = लाओ – ४७४,
लावण्ण = सुन्दर – ७८,
लावत = – ३५५,
लावहि = लाना – ३०६,
लावै = लगावै – ७२,
लिउ = लिया – २५२.
लिखइ = – १४६,
लिखत = लिखते हुये – ६५,
लिखतह = लिखते ही – १०४,
लिखी = लिखी हुई – ११७,
लिय = लिया – ४७२,
लिलाडेहि = ललाट पर – ७७,
लिलार = ललाट – २६०,
लिहाइ = लिखाकर – ११२,
लिगु = – ५४७,
लीए = – १८५,
लीज = लेना – ४८, ३२४,
लीणु = लीन – ४७०,
लीय = लेकर – ३३१.
लीलारस = भोग-विलास – ....
लीलि = निगलना – १६५,
लीव = बालक – ६६,
लेइ = लेकर – ७६, १४७, ३७४,आदि
लेउ = – ४७०, ४७८,
लेख = – ११६,
लेखइ = समझना – ३४७,
लेखि = पत्र – १४६,
लेण = लेने को – १४६, ४२१,
लेत = लेना – ४११,
लेपसो = लेप से – ३३२,
लेहि = लेते है – ३४, १६२, आदि,
लेहु = – ८१, ४६६, आदि,
लोइ = लोग – ३२, आदि,
लोउ = लोग – १६६,
लोए = लोक – ४०३,
लोक = ससार, लोक – ८७,
लोकु = लोग – ३५६,
लोग = – २३५, ३११, आदि,
लोगु = लोग – ११६,
लोगुवागु = जन समुदाय – ३६६,
लोचन्न = लोचन – २८२,
लोटणी = – ४६८,
लोणु = नमक – १४०,
लोपहि = छिपाना – ३२२,
लोभिउ = लोभी – ३६६,
लोय = लोग – ४२, ३६६,
लोयण = लोचन – ४०१,
लोह टोपर = लोहे की टोपी – १६२,
लोहे भार = लोहे की भारी – .....
लक = कटि – ६२,

लपट = लपटी – ४०३,
लपटह = लपटी – १२८,
लतिय = लिये – ६०,
लव = – ४४६,

व

वइ = – ४८३, ५४६,
वइठ = बैठकर – १२२, ५४१,
वइठउ = बैठी – ४२३,
वइद = वैद्य – ३७,
वइराइ = वैराग्य – ५१२,
वइरिउ = वैर – २२६,
वइल्ल = वैल – १८८,
वइसइ = – ४६०,
वइसरइ = वैठ गया – १२६,
वइसारहु = वैठाना – ४२०,
वइसारि = वैठाकर – ११०, ११६,
वइसि = वैठकर – ७७, २२३,
वउ = वपु (शरीर) – ६६,
वउलसिरी = – १७३,
वकार = 'व' से प्रारम्भ होने वाली–३७,
वछ = वत्स – १४४, ३६२,
वज्ज = वज्र – २८८,
वज्जणी = वज्रणी – २८८,
वज्जरिउ = – ५२२, ५२४,
वज्र = इन्द्र का आयुध – ३१३, ३२८,
वज्र = – ४७७,
वड = – ४७६,
वडइ = वडी – १४३,
वडण = गिरना – ५१२,
वडवानल = समुद्र की आग –
वडवार = वडी देर
वडहि = बढते थे – ४६१,
वडा = बहुत – २६६,
वढे = – ४६५,
वण = वन – ७७, ३१२, ३४७, ५३०,
वणजी = – ५३०,
वर्ण्ण = – ४४०,
वण्णइ = वर्णन करना – १००,
वणउ = वर्णन करना – ४००,
वणजारे = व्यापारी – १८७,
वणमहि = वन मे – ३२७,
वणवाल = वनपाल – ५१३,
वणसई = घनस्पति – ५१४,
वण्णि = – ६५,
वण्णियइ = वर्णन – ४०, ६०,
वणिकु = महाजन – ३७,
वणिज = व्यापार – १७६,
वणिजह = वनज, व्यापर – ४७०, ४१५
वणिजारिन्ह = – २४८,
वणिजाए = व्यापारी – १८६, १६१,
वणियार = – ३७,
वणिवर = व्यापारी – १७७, १६१,
वणिवरु = व्यापारी – १६६, ४७२,
वणिवार = वणिक् दल – २३६,
वणिद = वणिको मे इन्द्र – २५४, (जिनदत्त)
वणी = – ४३३,
वण्णु = वर्ण – ६२,
वत्त = बात – ६८, २२१, ३६१
वत्ति = वात – ४६५,
वत्तीसह = – ४३३,
वत्त = वात – २१३,
वत्थ = वस्तु = ३१,

वध = – १३१,
वधाउ = वधावा – ८०,
वधाऊ = वधाई – ८१,
वधाए = वधावे मे – ६१, ५०३,
वप = वपु, (शरीर) – ६७,
वपु = शरीर – २३०,
वपुडा = वेचारा (गरीव) – २६२,
वय = उम्र – ५१६,
वयण = वचन – १७, २३६, आदि,
वयणी = मुख वाली – २२०,
वयमारि = वैठाकर – ४६, ६८,
वर = सुन्दर – १४, ५३, आदि,
वरण = विवाह – १०६,
वरत = डोरी – २४२,
वरप = वर्ष – ६३,
वरस = वर्ष – ८५, ३८६,
वरिसिरणी = वर्षिणी – २८८,
वरसियउ = दिखाई देना – ३२६,
वरु = पति – ३७, २८२, २८३, आदि
वरुड = – ३९,
वरुणु = वरुण – १२,
वरतइ = वरतने – ४१६,
वल = – ४४६,
वलथभिणी =वल को रोकने वाले–२८६
वलद = वैल – १८६,
वलि = शोभित – २६०, ३५३,
वलिवड = वलवान – ३६८,
वलियउ = व्रीडित, लज्जित – ७४,
वलुवलु = सेना – ४५१,
ववइ = वोदे – ४९६,
वस्त = वस्तु, चीज – ३३४,
वस्तु = – १७६,

वसइ = वसा हुआ – ४०, ४७, ६८,
वणजी = व्यापार – ५२६,
वसण = सोने के लिये – २१२, २१६,
वसगु = – ४६२,
वसहि = वसना – ४२, २६७, आदि,
वसहू = – २२३,
वसिउ = सोने के लिये –२३३,
वसतपुर = नगर का नाम – ३८, ३६,
वसतु = – ४०,
वह = – २२७, २४४,
वहइ = चल रहा है – ३०,
वहत्तरि = ७२ – १५,
वहा = – १६८,
वहाइ = विदा करना – ३८३,
वहि = – ५३४,
वहिउ = चलाना – ४२५,
वहिणी = वहिन – ४२४,
वहिगयो = –४३८,
वहिजाउ = नष्ट हो जाय – ४३७,
वहिजाउ = व्यथित – ८४,
वहु = वहुत – १५, ३७, आदि,
वहुक = वहुत – ३२०,
वहुत्तइ = वहुत – ४६२,
वहुतु = वहुत – ३६१,
वहुफलु = अधिक फल – ८,
वहुरूपिणी = अनेक रूपो को वनाने वाली – २८६,
वहुल = वहुत – ३०२, ४४३, ५०४,
वहुलकु = – १४६,
वहुल वहुलु = वहुत २ – ४४०,
वहू = – ४८८,
वहून = – १४६, १७८,

वहे = – ५००,
वहेड = १७२,
वहेडे = – ४१६,
वहोडइ = हरी – ३६३,
वृप = वृक्ष – १६०,
वाइ = वावडी – ८७, १५६,
वाइणो = लाहना – ५३१,
वाईसइ = २२ – २६,
वाए = – १६६,
वाखर = पशु विशेप काठी – १२१, १८२, १८४, २०१
वाखरु = – १७६, १८६,
वाचि = – ११६,
वाजू = वाजा – ३४८,
वाजणे = वाजे (वाद्य-यन्त्र) – ६१,
वाजहि = वजना – ३८०,
वाजेवि = वजने लगे – १२०,
वाट = मार्ग दर्शन – ४५४,
वाडा = – ४५८,
वाडी = वाटिका – ३४, १६०, आदि,
वाढ = वडई – ३७, ६३,
वाणहि = – २२१,
वाणि = वाणी – १४, ४५, आदि,
वाणी = वाणी – १४,
वाणु = – ३७,
वामण = ब्राह्मण – ४४,
वात = वात – ११६, ३३०, आदि,
वाता = वार्ता – २२४, ४०२,
वातु = वार्त्ता – २०६, आदि,
वादि = – १८४,
वाघउ = – ४७४,
वावे = – ४६५,
वापह = पिता – ५०२,
वापहि = पिता – ५०१,
वापु = पिता – १३७, आदि,
वाभण = ब्राह्मण – ३२१,
वामणु = ब्राह्मण – ११५,
वाय = वायु – १२,
वार = वार, मार्ग, देरी – १४१, २६६
वारवार = बार २ – ३७३,
वारस = वारह (१२) – १६०,
वारह = वारह (१२) – ८५, आदि,
वारि = द्वार – १५७, आदि,
वारिठिया = – ३७,
वरिस = – ४३६,
वारु = समय – २१७, ४४३,
वारुणु = – २२६,
वाल = – १०५, ४७६, ५१३,
वालउ = वाला, वालक – १७४, ४१५
वालम = स्वामी – ३०५,
वालही = वल्लभा – २७६,
वालहे = वल्लभ – ३०३,
वाला = – २७८,
वालि = वालकर – १५६,
वालिय = वाला – ३८२,
वाली = नवयुवती – ३४१, ३४३,
वावण = वौना – ३०७, ३४३, आदि
वावणइ = वौना – ३४६,
वावलउ = पागल – ३२६, ४३२,
वावली = वावली – ३०६,
वास = – ४४३,
वासणु = पुरस्कार का वस्त्र – ३३१,
वासरि = दिन – ३४२,
वासव = इन्द्र – ३५,

विनवो = विनती – ४१६,
विनु = विना – ४६, ३१४, ३१५,
विनोद = रजन – ६६, २८०, ३२८,
विन्न = – ५५३,
विन्निवि = निकलती हैं – ५४२,
विपरितु = विपरीत – ३२६,
विप्पह = विप्र – ११२,
विप्पु = " – १०५, ११२,
विप्पुरिउ = विस्फुरित – ३०,
विप्र = – ४४१,
विभृम = भ्रम – २८०,
विभूपित = भूख रहित – ३२५,
विमल = विमलनाथ – ५, ११०, आदि
विमलमइ = विमलमति (ती) – १०१, १५४,
– ११७,
विमलमति = " –
विमलसेठ = विमलसेठ – ८६,
विमला = – ४५०,
विमलाणगु = – ५२७,
विमलामइ = विमलामती – ४४४,
विमलामति = " – १०६,
विमलामती = " – ३२८,
विमलासेठिणी = विमला नाम को सेठाणी – ८६,
विमलु = विमल – १२४, ३१६, आदि
विमलुमनि = विमलमती – ३२७,
विमाण = विमान – २६६, २६७,
वियखल = विचक्षण – ३४१,
वियसाइ = हँसकर – १६३, २०६,
वियमिउ = विकमित – ३६८,
वियसतु = " – १५१, आदि,
वियाधि = व्याधि, बीमारी – २०३,
वियारि = विचार – ५२१, ५२३,
वियूर = पूरित – ३६,
वियोड = विवेक – ५४०,
वियोग = विरह – १७७,
विरति = वैराग्य – ६४, ६८,
विरध = वृद्धि – ६३,
विरयउ = विरचित – ५५०,
विरलउ = विरला – २१४,
विरली = – २१४,
विरसोरा = विजोग – ४१३,
विरह = वियोग – ४००, आदि,
विरिणि = विरहिणी – ३१६,
विरुद्ध = विरोध मे – ३५२,
विरुद्धु = विरुद्ध – ३५०,
विरूप = असुन्दर – ३२८, ४०३,
विलखवि = विलखना – ३०७,
विलखाइ = विलखते हुये – १२६, १३७, आदि,
विलखाणिउ = रोते हुये – २३६,
विलखियउ = – ४६८,
विलखीइ = गे-कर – २१०,
विलखो = विलखना – ३५७, ४१८,
विलवहु = व्यनीत करना – ३००,
विलमाइ = भोगने लगे
विलमहि = विलसना – ४१३,
विलमत = भोगता है – २६६,
विलाइवी = – १३३,
विलाउलि = वेलाकुल
विलाए = विलाना – ४०३,
विलावल = देग का नाम – १८६,
विलास = – ५०२, ५०४,
विलासगइ = विलाम गनि – १०१,

दिलिखाइ = बिलखना – ३१३,
विलको = विश्राम किया – १६०,
विवऊ = सविवरण – १०८,
विवहउ = विनिष्ट – ३२३,
विवहारु=व्यवहार – ६७,
विवाण = विमान – ४४७,
विवाणु = ,, – ३६६,
विवारी = – ३७,
विवाह = – ११६, १२६,
विवाहउ = विवाहना – ३६२,
विवाहणु = विवाह के लिये – १२२,
विविह = – ५३४,
विवुह = विवुध – २२,
दिवुहजण = विवुधजन – २१,
(विद्वज्जन)
विवेय = विवेक – ५४१, ५४३, ५४४,
विवोय = वियोग – १५८,
विशाख = पुत्र का नाम – २२२,
विषम = गहरा – २५४,
विषमु = ,, – २५६,
विषय = विषयो मे – ६७, ७२,
विषयन – सुख (भौतिक) – ३०६,
विपयह = विषय पर – ६६,
विषे = मे – ३४,
विसउ = विश्व मे – ५२७,
विसमाउ = विस्मय – ४८६,
विसमु = विषम (भयकर) – ३४६,
विसय = विपय – ६८,
विसहर = विपधर (सर्प) – ३६६,
विमहरु = सर्प – २२६, २२६,
विसासु = विश्वास – ४२३,
विसाहण = खरीदने को – २०६,
विसाहि = खरीद कर – ३४,
विसीसु = विश्वाम – ४६६,
विसूरिउ = – ४६४,
विसेपइ = विशेषता लिये – ८६,
विहंडि = विघट – २६३,
विहप्पइ = वृहस्पति – १३,
विरयउ = विलसना – ४११,
विहलघन = विह्वलाग – १०६, ११८,
विहसणादे = – २७३,
विहमाइ = हसकर – १६२, २१७, ३०१
विहसत = ,, – २१५,
विहाण = प्रात काल ··· ·····
विहार = जिन मदिर – ८७, आदि,
विहारइ = – ३७,
विहारह = – ३७,
विहारहु = मदिर मे – ३६५,
विहारि = मदिर – ३७, ·· आदि,
विहारी = ,, – ३३८,
विहितहि = बहुत – ६१,
विहिवसेण = विधिवशात (भाग्यवश)
– २५६,
विहीणु = विहीन – ३६, ३७३,
विंहु = कुछ – २५६,
विदु = जानना – २३,
विंमई = – ४३१,
विमउ = विस्मय – १०२, २२१,
विंभिउ = विस्मित – ८०,
वीकठ = – १८२,
वीचि = – १६६,
वीतराग = – ३५१,
वीती = व्यतीत – ३०७,
वीनती = प्रार्थना – २३७,

वीनयउ = विनती करना – ५४७,
वीपुमा = – ३०५,
वीयराउ = वीतराग – ५२,
वीयराग = „ – २५,
वीर = वहादुर – ७५, आदि,
वीरणाहु = वीरनाथ (भ० महावीर) – ८,
वीरमदे = – २७६,
वीरराइ = – १६१,
वीरु = वीर – ७२, आदि,
वीरन्ह = वीरो ने – ७७,
वील्ह = – १८३,
वील्हे = – १८२,
वीस = वीस (२०) – ३६, आदि
वीसमइ = विस्मृत – २६२,
वीसरइ = भुलाना – ५०१,
वीह = वीथी – ३५३,
वुज्झि = – ५२१,
वुद्धु = बुध – १३,
वुरु = – ३७,
वुवा = – ४०८,
वुलाइ = – ३२०,
वुलाइय = बुलाना – ३६१,
वुसि = राजा – ४५२,
वुह = बुधमान – ३७, ४६,
वुहयण = बुधजन – ५५०,
वूचे = वूचे – ३७८,
वूड = डूबना – १६५,
वूडि = „ – २४७,
वूडिउ = डूबा हुआ – ७२,
वूडिवि = „ – ३४१,
वूड तिहि = – ५२४,

वूड्यो = – २४८,
वूढि = वृद्धा – २२२,
वेग = – २२८,
वेगह = शीघ्र – २६८,
वेगि = „ – १६६, १६७, २०७,
वेचियउ = वेचना – १४४,
वेटी = वेटी – ३८१,
वेठि = वैठना – ४६, ४७५,
वेठिउ = घेर लिया – ४५६,
वेडु = वाल – ३५८,
वेणानयरु = वेणा नगर – १६६,
वेणालए = „ – १८४,
वेण्णि = दोनो – ११५,
वेधियउ = विह्वल – ७६,
वेर = – १७२,
वेल = – १७३,
वेलि = लता, – १५७,
वेला – १६८,
वेसा = वेश्या – ३७, ७०,
वैठिउ = – २२४,
वोधु = – ३२६,
वोल = – ३६४, ४७६,
वोलइ = वोले – ५८, १७८, ३०१,
वोलण = बोलने – ३४३,
वोलग = – ४६६,
वोलहि = वोलना – ३६८,
वोलु = वात – ७३, आदि,
वोले = कहना – ३७६,
वोलेइ = वोला – ३०६,
वोहथु = जहाज – १८४,
वोहु = वोध – ५३६,
वछइ = चाहना – ४२, ७४, ...

वंदण = वन्दना - ७७,
वदणु = वन्दनार्थ - ५१५,
वदन = वदना - ५१६,
वदरा = - ३७,
वदह = वदना करके - १५६,
वदि = ,, - २६१, २६२,
वदिणीजण = वन्दी जन - ८८,
वधइ = बांधकर - ३२६, ४७८,
वधण = वधा हुआ - ३४४,
वधणी = - २८६,
वधि = बाधना - ३५६,
वभण = ब्राह्मण - ३७,
वभणु = ,, - ३३५,
यवालु = जोर शोर से - १७५,
वसविद्धि = वश वृद्धि - ६७,
व्यवहरइ = व्यवहार - ३५,
व्याकारण = - ६४,
व्याधि = व्याधि - ४४८,
व्याह = विवाह - ३२६,
व्योहार = व्यवहार - ३२,

श

शब्द = आवाज - १७५,
शरीर = देह - ११८,
शुक्लज्झाण = शुक्लध्यान - ५२२,
शुखु = सुख - ४१४,
शुद्ध = पवित्र - ५१४,
शुभ = · · · ··· - २८८,
शुचिणानु = दूत का नाम - ४६४,
श्रमण = श्रमण - ५०,
श्री रुद्रपाल = नाम - ३६५,
श्रीविनरमाला = - ३६६,

ष

षण-षण = क्षण २ - ३४४,
षोडसु = सोलह - २४,

स

स = वह - १५७, ३५८,
सइ = उनके, राजा - १, २८०, ३५०
सइहार = सहकार - १६६,
सउ = सौ - १९५, २००,
सउकु = उत्साह पूर्वक - ६०, १२५,
सउ घी = सस्ती - २०१,
सउरा = सब - ४०७,
सकइ = कर सकना = ३६२,
सक्कइ = - ५१६,
सकउ = सकना - १७८,
सकरू = शकर - १०७,
सकहि = सकना - ३९३,
सकहु = ,, - ७३,
सकार = 'स' से प्रारम्भ होने वाले -
सकुटवउ = सकुटुम्ब - ३२,
सके = · ··· ·· - ४४०,
सखी = सहेली - १०२, २४५, २५६,
सग्ग = स्वर्ग - ३१, ५२८,
सग्गमोक्ष = स्वर्गमोक्ष - ५११,
सग्गवर = श्रवक - ५०७,
सग्गहि = उपसर्ग - ४८७,
सगि = ·· ····· ····· - ५४७,
सगुणु = शकुन - ५७, ४४१,
सगे = - ४०८,
सजण = सज्जन - १११,
सजि = सजना - २५१,
सजि = - ४४८,

समुद्दह = समुद्र – ३८६,
समुद्र = ,, – ५४५,
समूह = – ५३,
समेरणि = युद्ध करना – ४७०,
सय = – ५५२, ५५३,
सयण = सज्जन – २१, ४७,
सयल = सब – ४२, ४५, ५२, आदि,
सय = – २१४,
सरणु = शरण – ५, २८ ... आदि,
सरणू = ,, – १५६,
सरवर = तालाब – ३८, १०२, १७४
सरुवरु = ,, – ९०,
सरसती = – ४४०,
सरसुती = सरस्वती – १५, २६,
सरावगधम्म = श्रवक-धर्म – ४४,
सरि = – ३८,
सरिवि = – ५२५,
सरिस = समान – ९५,
सरीर = शरीर – १००, ...आदि,
सरीरह = ,, – २३, १०४,
सरीरु = ,, – ५, २०७, २८८,
सरूप = समान – १७२,
सरूपु = सरूपवान – ८८, ५२६,
सरम = समान – ३७९,
सलहहि = सराहना – ३०५, ५०३,
सलहियइ = – ४४०,
सल्लेहणु = – ५१९,
सलोक = – ५५३,
सव = सब – २६०, ... आदि,
सवइ = सभी, सम्पूर्ण – २४,
सवइण = ,, – ३१,
सवई = सर्व – ९२,
सवण = स्वर्ण – ३८, ३९६,
सवण्हु = सब के लिये – ४१,
सवद = शब्द – १२०,
सवमहि = सब मे – १८८,
सवारथु = स्वार्थ – ३७६,
सवारि = ठीक – ७३,
सवासी = ब्राह्मणी – ३३२,
सवु = सब – ११५, १२२, .. आदि,
सवै = सबही – ३३४,
सव्व = सब – ३६,
सव्वइ = सभी – २७९,
सव्वल = – ३८,
सव्वसिद्ध = सर्वसिद्धि – २८७,
सव्वह = सब ही – ४०२,
सव्वु = सब – १४३, ... आदि,
सव्वोसही = सर्वौषधि – २८९,
सव्वग = सर्वांग – ११८,
ससि = चन्द्रमा – २४, ९७,
ससिवयणि = शशिवदनी – ३०९,
सहइ = धारण करती है – १५, ९३, सहन करना – १५८,
सहकार = आम्र – १७०,
सहजावती = – १९७,
सहणु = शयन – ४७३,
सहले = सकल, सभी – १६६,
सहस = हजार – १८९, ४५१,
सहसर = चन्द्र – २२१,
सहस्र = हजार – ४५१,
सहसु = ,, – ५५३,
सहहि = – ४५५,
सहाउ = स्वभाव – ४, ६६, ४७३, ५१४
सहारउ = सहारा – ३१५,

सहासहि = – २२६,
सहि = सहित – ३६, " ' आदि,
सहिउ = „ – ४८८, ५४१,
सहिय = सखियां – ६०,
सहियण = – ३८,
सहियणह = – ३८,
सही = सहन किया – ७१, २५३,
सहु = सब – ६६, ' आदि,
सहे = – ५०२,
स्वयवर = – ५१,
स्वातिनखतु = स्वाति नक्षत्र – २६,
स्वामिनी = – १६,
स्वामी = – ४००,
सा = वह (स्त्री)– ८६, ८७, ,
साइ = स्वामी – १५६,
साई = „ – २०४,
साकल = साकल (अर्गला)– ३४५,
साखि = साक्षी – ३१४,
साखी = „ – ३५०,
सागर = समुद्र – २५३, ३६४,
साचउ = – ४७६,
साचौ = सच – ३११,
साजि = सजाकर – १२१,
साजित = „ – १२१,
साटिवि = बदलना – २०१,
साठि = ६० (षष्ठि)– १६३,
सापदे = आनन्दपूर्वक – १६,
सात = ७ – ५१५,
साथि = सग, पास – २५४,
साथरउ = घरा साय – २३१,
सामली = अच्छी – १०१,
सामले = – ४२६,
सामहहि = सम्मुख – १७७,
सामि = स्वामी – २१४, २८२,
सामिउ = स्वामी – ४२५,
सामिणि = स्वामिनी – ११,
सामिय = स्वामी – ४, २५, आदि
सामियउ = „ – ३११,
सामी = „ – १५७, ३०४, आदि
सामीय = „ – ३८,
सायऊँ = „ – १५७,
सायर = सागर – २२२, आदि,
सायरदत = सागरदत्त – ३६४, ,
सायरु = सागर – २५६, आदि,
सार = चौपड – २३३ आदि,
सारउ = दूर करना – २१३,
सारद = शारदा – १४, आदि,
सारु = सम्पन्न – ३६, ६५, १८५,
सारग = – ३८,
सारगदे = – २७६,
सावघाण = – ४८७,
सावय = श्रावक – ५१६,
सावयह = „ – ३८,
सावल = – ४३३,
सावलउ = – ४३२,
सावलदे = – २७४,
सावु = सभी –
सासइ = सशय – ३६४,
सासु = श्वश्रू (सास) – १४६,
सासू = „ – १५७,
साहउ = – ४४३,
साहण = साधन – २६६,
साहणा = सैर – ३८,
साहणु = „ – ४४६, ४७८,

साहर = साहूकार – ११८,
साहस = साहसी – २५८, ३८६, आदि
साहसु साहस – १३६, २४२,
साहि = सहारे – ३६७, ५३७,
साहिव्वउ = साधू गा – ५२७,
साहु = सेठ – ३८, ५८, ११३, आदि
साकरे = साकले – १६१,
साझी = सध्या समय – २१७,
सिउ = से, सब – २६३, ४२६, आदि
सिऊ = – ३८,
सिखवय = शिक्षा व्रत – ५१,
सिखि = – ३८,
सिग्घु = शीघ्र – १५४,
सिगरी = सभी – १२१,
सिठ = प्रसिद्ध – १३,
सिद्धउ = सिद्ध हुआ – २५६,
सिद्धि = – २८७,
सिर = मस्तक – १५४,
सिरघ = शीघ्र – ४६७,
सिरह = सिर पर – ६८,
सिरह = ,, – १५३,
सिरि = सिर – २२८,
सिरी = – २६८,
सिरीखड = श्रीखड – ४७२,
सिरिगुण = – १८०,
सिरिमइ = श्रीमती – २२१,
सिरिमति = , – २५६,
सिरीया = ,, – २७, २५४,
सिरीयामति= ,, – २३६, आदि,
सिरु = सिर, मस्तक – ८, २२६, आदि
सिला = शिला – ३२३,
सिलारूप = शिला के रूप मे – ३३५,
सिलाहु = शिला – ३३४,

सिवदेउ = – ५२८.
सिवपुरि = मोक्ष – ४,
सिहु = साथ – १०२, २६८, आदि,
सिगारमइ = शृङ्गारमती–२८१, ३४२,
सिघलदीपि = सिघलद्वीप – ३६०,
सिचण = सीचना – १६८,
सिचि = सीचकर – १०६,
सिचिउ = सीचना – १६६,
सिदुवार = – १७४,
सिह = प्रमुख – ४६५,
सिहल = सिहल – ३४०, ····· आदि,
सिहासण = – ४६०,
सिहासणु = सिहासन – ४१६,
सिहुज = – २८६,
सीखिउ = सीखा – ६५,
सीखी = – ३३३,
सीघर = – ४४१,
सीमा = – ३८, ४७०,
सीयल = शीतल – ५,
सीयलक = ,, – १४,
सीयलु = ,, – ५,
सीया = सीता – ३६६,
सीरघु = श्रीरघु – ३८५,
सील = – ३८,
सीलवत = शीलवान – ६६, ४६६,
सीलु = शीलव्रत – १५७, २५१, आदि
सील्हे = – १८२,
सीवल = सेमल – २६०,
सीस = – ४३०,
सीसइ = – ३६,
सीसे = शिरस्त्राण – ४५७,
सीहहि = सिह – ३५७,
सीग = – १८४,

सुमरइ = स्मरण किया – २५४, ३३४
सुमरणि = – ४८७,
सुमरत = स्मरण करते – २५२,
सुग = – २७४,
सुर = देवता – १०२, ५१४,
सुरगा = – २७२,
सुरतारि = सुरत्तारी – २७०,
सुरय = सूरत – २८०,
सुरह = स्वर्ग – ३६, २६८,
सुरही = सुरभित – १७४,
सुरा = – १९३,
सुरु = सुर, देवता – ७, २५३,
सुरुपाल = श्रीपाल – १८१,
सुरेख = शुभ रेखा वाली – ४६, ९५,
सुरेन्द्र = इन्द्र – २६८,
सुलखणु = सुलक्षण – ११३,
सुव = – ४९२,
सुवणु = सवर्ण – ४५,
सुविचार = विचारपूर्वक – ९०,
सुव्वस = – ३८,
सुवा = लडकी – २२०,
सुवास = सुगंधित – १६७,
सुविशाल = बडे – ४५,
सुव्वि = – ३२८,
सुमर = श्वसुर – १४६, २४४ आदि,
सुसरु = ,, – १४९, २४४,
सुसरे = ,, – १५७,
सुसारि = सार – ५२३,
सुह = सुख – १३, ...आदि,
सुहगादे = – २७४
सुहड़ = सुभट – १२४,
सुहणाल = जातिविशेष के योद्धा–४६०
सुहयर = सुख से – ५४५,
सुहवइ = – ५३२,
सुहसार =सुखसार – ३८,
सुहाइ = शोभा देना – ४५ ९३, आदि
सुहि = सुखी – ३६,
सुहु = सुख – २४५,
सुंडि = सूंड – ३५५,
सुंड़ = ,, – ३४६,
सुंदरि = – ४३०,
सुंदरीय = सुंदरी – २२३,
सूकउ = सूखी – ३९३, ४९५,
सूकी = सूखे – १९५,
सूखे = ,, – २६०,
सूझइ = दिखाई देना – १९४, ४५३,
सूडिउ = सूंडी से – ३४५,
सूढु = – १८३,
सूती = सोगई – २२५, ३४३,
सून = सूना – ३१३,
सूनौ = – १२९,
सूर = सूर्य – ३६, ... आदि,
सूरू = ,, – १३, २९९, ५५०,
सूवा = तोता – ९६,
सेज = शय्या – २९६,
सेठ = – ४८, ...आदि
सेठि = सेठ – ४५, ४६, ... आदि
सेठिणि = सेठानी – ५६, . आदि
सेठिपुत्र = (जिणदत्त) – २३१,
सेतु = – १९३,
सेयस = श्रेयांसनाथ – ५,
सेव = – ५१४,
सेवज = सेवा – २६८,
सेवती = – १७३,

सेव्वउ = सेवा करना – "
सेवा = – ३२४,
सेष = शेष – ४५८,
सोइ = वही – ४८४, "' आदि,
सोउ = „ – २९६,
सोग = अशोक – २८५,
सोगु = शोक – १६५, ···· · आदि,
सोघणी = घरना – १५३,
सोजि = उस – ९०, आदि,
सोतह = सौन का – १८३,
सोतियहि = श्रोत्रिय – ३८,
सोनवती = – २७७,
सोने = स्वर्ग – १३५,
सोपुण = पुन – १८६,
सोभाष = सुन्दर वचन – २७९,
सोभित = शोभित – १४१,
सोम = चन्द्रमा – १३, आदि,
सोमदत्तु = सोमदत्त – १७०,
सोय = वही – ५८,
सोरठी = सौराष्ट्री = २७०,
सोलह = १६ – २८६, आदि,
सोपइ = सोना – ३०१,
सोपण्ण = स्वर्ण – २८२,
सोवणु = सोने मे – २३२,
सोवती = सोती हुई – ३१८,
सोवन = स्वर्ण – ८६, २७२, आदि,
सोवह = सोना – ३०२,
सोवहि = सुशोभित होना – ६८, आदि
सोवि = वह, सोना – १५४, आदि
सोवतिय = सोती हुई – ३०९,
सोहइ = शोभित – ८६, आदि
सोहउ = „ – ३४६,
सोहहि = „ – ९५, १०६,
सोहा = – ३८,
सोहियउ = शोभा देना – ४५,
सौ = – १०१,
सौवइ = सोना – २२५,
सौहो = सम्मुख – ३५३,
सक = शका – ३८४,
सकट = – ४८४,
सखदीउ = शखद्वीप – १९८,
सगहइ = सग्रह – ५४८,
सगुम = – ५१८,
सघ = – ५०४,
सघल = सिंहल – २००,
सघह = सघ – ११,
सघात = समूह – १५९, २५५, ४८६,
सचिउ = सचय किया हुआ – ५४,
संजमु = सयम – २, ५२१,
सजाय = – ५३४,
सजुत = सहित – ४७, १०८, आदि,
सजुतु = सयुक्त – ४३७, ५२८,
सजूत्तु = „ – ५६,
सजोइ = सजोकर – ४१२,
सत = शान्त – ३८, आदि,
सतापु = सताप – १३६, १३७, १४२,
सति = – २४९,
सतिणाह = शातिनाथ – ६,
सतु = शात होकर – १७,
सतुही = सतुष्ट – १७,
सदेहु = सन्देह – ३८२, आदि,
सपइ = सम्पत्ति – ४८, आदि,
सपत्ति = वैभव – २,
सपय = सपति – १४४,

सवधी = – ५३५,
समइ = सभव हुई – २५३,
सभलि = – ४३२,
सभव = सभवनाथ – ३, १४,
सभवइ = सभव हुआ – २५१,
समालि = स्मरण किया – २५५,
संमदी = विदा किया – २३६,
सवत् = सम्वत – २६,
सवल = मार्ग का भोजन – १४६, १६०
ससहु = – ५२५,
ससारह = – ५१२,
संसारि – ५२४,
सहरिउ = सहार किया – ३६६,
सन्नासु = विचारो मे – ४८५,

ह

हइ = है – ६३, १३५, ... आदि,
हउ = मैं – १०८, १६, ... आदि,
हउए = – ५५२,
हकराइ = वुलाया – ८४, ४६३,
हकरायउ = „ – ४४१,
हकारउ = वुलाना – २१७,
हक्कारउ = वुलाने – ६६,
हकारि = वुलाकर – ११६, ... आदि
हक्किउ = वुलाया – २५६,
हडइ = सरना – ४०२,
हडहि = गाली देना – ६८,
हए = हनन करना – ३५७,
हणहि = मारना – २२१,
हत्थालवण = हस्तावलवन – ५५०,
हत्थु = हाथ – १६,
हत्थी = हाथी – ३४४,
हथिए = – ३७०,
हथिया = हाथी – ३५६,
हनि = नष्ट कर – ५४७,
हनु = हरना – ४६,
हपा = हप्पा – ४१०, ... आदि,
हप्पा = „ – १८०, ... आदि,
हम कहु = हमको – ८१,
हम = – १३१,
हमरउ = हमारा – २४४,
हमह = हम्हे – ३६३,
हमहू = हमे – १७७,
हमारी = – २३४, ४००,
हमारे = – २६६,
हमारौ = – ७३,
हमि = – १७८,
हमु = हमे – ७४, १११, आदि,
हमुहि = – ४३६,
हयउ = – ३५८, ५२८,
हर = हरना – ३५४,
हरइ = हरण – २७६,
हरड़ = – १७२,
हरण = हरने वाला – ६, ६,
हरतु = – ४२७,
हरस्यो = – ४३८,
हरहि = हरती है – २८०,
हरहु = हरो – ११,
हरिउ = हरना – ७,
हरिएवास = हरा बांस – १२५,
हरिगुण = – १८०,
हरिचद = – १८२,
हरी = हरना – ४१२,
हरु = हल्की – ६६,

हरे = – ४४३,
हल्ल = हल्ला – १३३, ४५५,
हवइ = – ५१०,
हसइ = हसते हुये – ३२६, ३३६,
हसतिनचाहु = प्रसन्न हुआ – ११३,
हसहिं = हसना – ३३३, ३३४,
हसाइ = हसावे – ३३४,
हसाउ = हंसादू – ३३३, ३३७,
हसि = हँस – ३३५, ४१७,
हसतु = – ४३०,
हस्त = हाथी – १२२,
हहडाइ = अट्टहास – ३३५, ३३६.
हहि = है – ३३२, ३७१,
हाइ = – १५६,
हाउ = – ३७५,
हाकट = पशु विशेष – ४०७,
हाकि = हाक – ३५४, ४५३,
हाकिउ = हिलाया – ४६५,
हाट = दूकान – ५०३,
हाथ = हस्त, हाथी – २५, आदि
हाथहि = – २३०,
हाथि = हाथी, हाथ – ३५४,
हाथिउ = हाथी – ३६०,
हाथिजोडि = हाथ जोडकर – १६३,
हाथु = हाथ – ५६, आदि,
हात्थिउ = हाथी – ३४८,
हार = माला – १०६, आदि,
हारि = ,, – १३०, ,,
हारिउ = हार गये – १३०, ३३८,
हारिवि = हारकर – १३६, १४३,
हारूडोरू = हालडोल – ४२२,
हारे = ,, – ,
हाव-भाव = – २८०,
हासउ = हसी – ३२६,
हाहाकारू = हाहाकार – २१५, ४२५,
हित = भला – १७६,
हियइ = हृदय – ३६८, आदि,
हियउ = ,, – ७६,
हियडइ = हृदय मे – ५६,
हियडा = ,, – ३१३,
हियलोकणी = हृदय लोकिनी – २८७,
हीण = हीन – २०,
हीणवि = – ५५३,
हीणह = असमर्थ – २०८,
हीणे = हीन – ३७४,
हीणगु = – ४२६,
हीरा = – १९८,
हीरादे = – २७५,
हीरामणि = हीरे की मणि – ९७,
हुइ = होकर – २७, आदि,
हुइहइ = होगा – ११६,
हुई थी = – १६८,
हुउ = मैं – ....,
हुउसउ = हो सकता हूँ – २८,
हुय = – १५४,
हुवऊ = होकर – .. ..,
हुवासणु = हुताशन (अग्नि)– १५६,
हूतइ = होकर – १९७,
हूल = हल्ला – १७४,
हूवउ = – २३२,
हूँ = मैं – १६३, ३०२, आदि,
हेम = – ४३२,
हेला = धाक – ३६६,
होइ = होना – २, २०, आदि,

॥ इति ॥

अर्थ-संशोधन

प्रस्तुत रचना हिन्दी की एक प्राचीन काव्य-कृति है। इसमें अपभ्रंश शब्दो की बहुलता है। प्रकाशन के पश्चात् पुस्तक को देखने पर कतिपय अर्थ संशोधन अपेक्षित लगे, उन्हें नीचे दिया जा रहा है। इनमे लगभग आधे स्थलों पर मेरे द्वारा दिये हुए अर्थ है, उनके हमने तारक चिन्ह लगा दिये है, शेष आधे स्थलों पर नये अर्थ प्रस्तावित है। आशा है पाठक इन अर्थो पर विचार करेंगे।

*१ ८. ३· 'घर सिरु लाइ' का अर्थ किया गया है 'साष्टांग नमस्कार करके', होना चाहिये 'धरा पर सिर रखते हुए'। साष्टांग नमस्कार भिन्न होना है।

२. ३९. ३: 'सहिउ तहि मच्छिंदु मउरउ ण दीसइं' का अर्थ किया गया है 'मच्छिन्दु (मछन्द) मउरउ ण (मुकुट विना)', 'सहिउ' को कदाचित् होना चाहिये 'महिउ', क्योकि 'मकार' युक्त नाम वाले पदार्थों का ही इस छंद मे उल्लेख हुआ है, और इस पाठ को लेकर अर्थ होगा— 'मही (छाछ) तथा मत्स्येन्द्र (बड़ी मछलियां) तथा मयूर भी नही दीखते थे।

*३ ७४. २: अर्थ मे दिये हुये 'इससे अधिक क्या कहूँ' के लिये मूलपाठ में कोई शब्दावली नही है और न उससे अर्थ मे ही कोई स्पष्टता आती है।

*४. ९१. ३: 'जाणू थाणु विहितहि घणे' का अर्थ किया गया है— 'घुटनो के नीचे स्थान टिकोणे वहुत घने थे' किन्तु 'जानु-स्थान' से 'घुटनों के नीचे का स्थान' अर्थ नही लिया जा सकता है, न वह स्थान सघन ही होता है। सम्भवत.जाणू=मानो, थाणु∠_स्थाणु = स्तंभ, विहि = दोनो, तहि = वहाँ हैं अत। अर्थ होगा 'उसके[दोनो पैर ऐसे थे]मानों वहां दो सघन (स्तंभ) स्थाणु हो' :

*५. ९३. ३: 'नीले चिहुर स उज्जल काख' का अर्थ किया गया है, 'उज्ज्वल एव नील वर्ण को रोमावलि थी'। 'रोमावलि' उज्ज्वल वर्ण की किसी भी तरुणी की नही हो सकती है। अर्थ सभवत. होगा, 'उसके चिकुर (केश-पाश) नीले (श्याम) थे, और उसकी कक्षा (कटि पर की फेंटी) उज्ज्वल [वर्ण की] थी'। किन्तु तीसरे और चौथे दोनो चरणो के तुक मे 'काख' है, इसलिये असम्भव नही कि 'काख' दोनो मे से एक चरण मे स्मृति-भ्रम से आ गया हो, पाठ कुछ और रहा हो।

*६. १०६. ४: 'चन्दन सिंचि लइ उछंग' का अर्थ किया गया है, 'उसे चदन से सीच कर सचेत कराया गया'। होना चाहिये, उसे (उस चित्रपट को) चन्दन से सिक्तकर [विमलमती ने] क्रोड (गोद) मे ले लिया'।

*७ १२२. ४: 'चपापुरिहि पइठ' का अर्थ किया गया है, 'चम्पापुरी की ओर चले', किन्तु होना चाहिए 'चपापुरी मे प्रविष्ट हुए'।

*८. १२३. ३. 'भउ हल्लं कल्लोलु' का अर्थ किया गया है 'शोरगुल एव प्रसन्नता छा गयी', जबकि होना चाहिये 'हल्ल (तुमुल शब्दो) का कल्लोल (तरगोल्लास) सा हुआ'।

*९. १२६. ३: 'समदी विमलमती विलखाइ' का 'कुमारी विमलमती को विलखते हुये विदा किया'—अर्थ देते हुये अन्य अर्थ के रूप मे दिया गया है' 'समधी (व्याही) विलखती हुई विमलमती को', जो कि सभव नही है, क्योकि 'समदी' 'समधी' से भिन्न शब्द है, और दोनो मे से किसी शब्द का भी अर्थ 'व्याही' नही होता है।

१०. १२८. ३. 'आइ कुमारी' का अर्थ किया गया है 'कुमारी आ रही है', किन्तु 'विमलमती' उस समय कुमारी नही, विवाहिता और जिनदत्त की पत्नी थी और उसका 'जुए के समय वहाँ उपस्थित रहना' पाठसिद्ध भी नही है। अत 'आइ कुमारी' का अर्थ सम्भवत होगा, 'क्वार की [जुआ खेलने की] फसल आगई है'।

११. १५६. ४: 'हाइ वाइ गुसइ सहि छाडि कति गयउ कत मोहि' के 'हाइ वाइ गुसइ सहि' का अर्थ नही किया गया है, जो कि सम्भवतः होना चाहिए 'हाय वाई (मां), गुस्से के साथ—'। केवल दो स्थानों पर कवि ने फारसी-अरबी शब्दो का प्रयोग किया है और उनमे से एक यह है।

*१२. १६६. २: 'अन पर परितहि दीनउ भोगु' का अर्थ किया गया है, 'उस पर (गंधोदक) पडते ही भोग मे रखने योग्य हो गया', जब कि होना चाहिए उस (अशोक) ने अन्य स्वभाव मे पडकर भोग (फल-फूल) दिये'।

*१३. १७०. २: 'तिन्हइं हार पदोले (पटोले) किए' का अर्थ किया गया है: 'उन्हें अव हरे एवं मजबूत कर दिये', किन्तु होना चाहिये, 'उन नालियरों ने भी' जैसे रमणियाँ हागे तथा पटालों—रेशमी वस्त्रो से करती है, [प्रसन्न होकर] हार-पटोल किये (पुष्पपत्रादि से अपना अलकरण किया)।

१४. १८२.२: 'ते वाखर भरि चले वहूत' का अर्थ किया गया है, 'वे भी अपना सामान वाखरों मे भरकर चलें' किन्तु होना चाहिये 'वे भी वहुतेरा वाखर (क्रय-विक्रय का पदार्थ) [वेष्ठनो मे] भरकर चले'।

१५. १८४. १-२: 'पूतु न जाणउ वाखर आदि, कोड़ि सीग भर लइ जेवादि' अर्थ किया गया है 'उन्होने वाखरो मे क्या है, यह न जानते हुये भी कोडियो एवं सीगो को वैलों पर लाद लिया', किन्तु होना चाहिये, 'पूत (पुत्रं-जीवक—एक फल-जिसके वीजो की मालाएँ वनती थी, जो प्रायः वच्चो को स्वस्थ रखने के लिये पिन्हाई जाती थी) के वाखर (सौदे) का तो आदि (परिमाण) ही ज्ञात न होता था और जवादि (एक सुगधित द्रव्य) का एक कोटि सीग (वैलो) का भार ले लिया गया'।

१६ १८४. ४: 'दुइ वोहथु भरि वेणा लए' का अर्थ किया गया है, 'जिससे दो जहाज भर लिए और वेणा नगर (को जाने का संकल्प) लिया', किन्तु होना चाहिये, 'दो जहाजो का भार [उसने] वेणा (खस) का ले लिया'।

*१७. १८६. २: 'गए विलावल कइ पइ पसारि'–जिसमे 'पइ पसार' न होकर पाठ 'पइसारि' होना चाहिये, का अर्थ किया गया है 'वे विलावल तक चलते गये, किन्तु अर्थ होगा 'वे वेलाकुल (बन्दरगाह) के प्रवेश [द्वार] पर पहुँच गए'।

*१८. १८६. ३: 'वलद महिप सवुदइ निरु करहि' का अर्थ किया गया है, 'उन्होने वैलो औरभैसो को दूसरो को दे दिया', किन्तु होना चाहिये, उनके वैल और भैसे निश्चय ही शब्द करते थे'।

*१९. १९३. ४: 'सुरा सेतु दीसइ सु अणतु' का अर्थ किया गया है, अनन्त जल ही जल चारो ओर दिखाई पडता था', किन्तु होना चाहिये, [वहा] अन्तहीन [सा] सुरा-सेतु [उन्हे] दिखाई पड रहा था [जिसे छोडते हुये वे आगे वढे]'।

२०. १९९. १–२: 'पणसइ घणु जलु जिणवरु नाहु, भव अतर दीठिउ जलवाहु' का अर्थ किया गया है, 'वहाँ जल के मध्य जिन–चैत्यालय था तथा वहाँ उन्होने भव से पार करने वाले जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किये', जव कि होना कदाचित् चाहिये, [उन्होने जिनेन्द्र भगवान से निवेदन किया], 'हे जिनेन्द्र नाथ, हमारा घन जल मे प्रणष्ठ होना चाहता है, क्योकि हमे भव (समृद्धि?) मे जलवाह (जल-जंतु-विशेष) दिखाई पडा है।'

*२१. २१३ २: 'आहूठ ·डि उद्धसे जिणदत्तु' का अर्थ पाठ त्रुटित होने के कारण नही दियो गया है, किन्तु तत्सूचक कोई सकेत होना चाहिये था। 'उद्धसे' 'उद्ध्वस्त हो गए' अथवा 'उद्ध्वस्थ थे' है।

२२. २२१. ४: 'मिठिया किं अण वाणहि हणहि' मे 'अण वाणहि' का अर्थ नही किया गया है, 'अण वाणहि' —है 'विना वाणो के'।

*२३. २२५. २, ३६५. ३: 'मडउ' का अर्थ मुडी (मुड) किया गया है, जव कि होना चहिये 'मृतक' = मुर्दा, [मनुष्य का] शव।

*२४. २२८. २: 'कासुतणर कहाहि' का अर्थ किया गया है, 'जिससे कौनसा पुत्र नर कहा जायेगा'। पाठ त्रुटित है, अवशिष्ट शब्दो का अर्थ होना चाहिये कदाचित् 'तू किसीका ·· कहलाए।'

२५. २४६. ४: 'वहु रोवहि अरु धीजहि नयणु' का अथ किया गया है, 'तुम बहुत रो रही हो, अब नेत्रों को धैर्य दो' किन्तु होना कदाचित् चाहिये, 'तुम बहुत रो, और नेत्रो को बरबाद कर रही हो।'

२६. २५०. १: 'रहिउ उन ठाउ(नठाउ?)'का अर्थ नही किया गया है। अर्थ होगा 'सभी कुछ नष्ट हो (?) गया था।'

*२७. २५५ ४: 'पाय लागि जिणदत्त संभालि' का अर्थ किया गया है 'उसके (विमलमती) चरणो मे लगकर जिनदत्त को पुकारा', जबकि प्रसंग-सम्मत अर्थ होना चाहिये, 'उसने [जिनेन्द्र के] चरणो से लगकर जिनदत्त को [सस्वर] स्मरण किया।'

*२८. २५६.४, ३६२.१, ३६५ ४: 'भविय' का अर्थ 'भव्य' किया गया है, जब कि होना चाहिये ∠ भविक = मुमुक्षु। (दे० छद २५०.३, ४३८.२)

*२९. २६५.२: 'आवहु अज्ज न मारउ बोलु' का अर्थ किया गया है 'आओ, मारने के बोल मत बोलो' किन्तु होना चाहिये, 'आओ, आज मै बोल न मारूंगा (छुरी मारूंगा),

३०. २६५.३: 'तौ न मुणासु जौ अैसौ करउ' का अर्थ किया गया है, 'जो ऐसा नही करेगा', होना चाहिये, 'तो मै मनुष्य नही, यदि मैं ऐसा करू' (केवल वोल मारूँ)'।

३१. २६८.३: 'ण सुरेन्द्र जो थापिउ सुरहं' का अर्थ किया गया है, 'मानो इन्द्र ने ही वहाँ स्वर्ग की स्थापना की हो', किन्तु होना चाहिये, 'मानो वह सुरेन्द्र है जो [उस पद पर] देवताओ द्वारा स्थापित किया गया हो।'

*३२ २७१.४. 'अचाभउ सुतभउरुव मुरारि' का अर्थ नही किया गया

[illegible]८९. २: 'गए विलावल कइ पइ पसारि'–जिसमे 'पइ पसार' न होकर पाठ 'पइसारि' होना चाहिये, का अर्थ किया गया है 'वे विलावल तक चलते गये, किन्तु अर्थ होगा 'वे वेलाकुल (बन्दरगाह) के प्रवेश [द्वार] पर पहुँच गए'।

*१८. १८९. ३: 'वलद महिष सवुदइ निरु करहि' का अर्थ किया गया है, 'उन्होने बैलो ओरभैसो को दूसरो को दे दिया', किन्तु होना चाहिये, उनके बैल और भैसे निश्चय ही शब्द करते थे'।

*१९. १९३. ४: 'सुरा सेतु दीसइ सु अणतु' का अर्थ किया गया है, अनन्त जल ही जल चारो ओर दिखाई पडता था', किन्तु होना चाहिये, [वहा] अन्तहीन [सा] सुरा-सेतु [उन्हे] दिखाई पड रहा था [जिसे छोडते हुये वे आगे बढे]'।

२०. १९९. १–२: 'पणसइ धणु जलु जिणवरु नाहु, भव अतर दीठिउ जलवाहु' का अर्थ किया गया है, 'वहाँ जल के मध्य जिन–चैत्यालय था तथा वहाँ उन्होने भव से पार करने वाले जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किये', जब कि होना कदाचित् चाहिये, [उन्होने जिनेन्द्र भगवान से निवेदन किया], 'हे जिनेन्द्र नाथ, हमारा धन जल मे प्रणष्ठ होना चाहता है, क्योकि हमे भव (समृद्धि?) मे जलवाह (जल-जंतु-विशेष) दिखाई पडा है।'

*२१. २१३. २: 'आहूठ ·डि उद्धसे जिणदत्त' का अर्थ पाठ त्रुटित होने के कारण नही दियो गया है, किन्तु तत्सूचक कोई सकेत होना चाहिये था। 'उद्धसे' 'उद्ध्वस्त हो गए' अथवा 'उद्ध्वस्थ थे' है।

२२. २२१. ४: 'मिठिया किं अण वाणहि हणहि' मे 'अण वाणहि' का अर्थ नहीं किया गया है, 'अण वाणहि' —है 'बिना बाणो के'।

*२३. २२५. २, ३६५. ३: 'मडउ' का अर्थ मुडी (मुड) किया गया है, जब कि होना चहिये 'मृतक' = मुर्दा, [मनुष्य का] शव।

*२४ २२८. २: 'कासुतणार कहाहि' का अर्थ किया गया है, 'जिससे कौनसा पुत्र नर कहा जायेगा'। पाठ त्रुटित है, अवशिष्ट शब्दो का अर्थ होना चाहिये कदाचित् 'तू किसीका ·· कहलाए।'

२५. २४६. ४. 'वहु रोवहि अरु धीजहि नयणु' का अथ किया गया है, 'तुम वहुत रो रही हो, अत्र नेत्रो को धैर्य दो' किन्तु होना कदाचित् चाहिये, 'तुम वहुत रो, और नेत्रो को वरवाद कर रही हो।'

२६. २५०. १: 'रहिउ उन ठाउ (नठाउ?)' का अर्थ नही किया गया है। अर्थ होगा 'सभी कुछ नष्ट हो (?) गया था।'

*२७. २५५ ४: 'पाय लागि जिणदत्त संभालि' का अर्थ किया गया है 'उसके (विमलमती) चरणो मे लगकर जिनदत्त को पुकारा', जबकि प्रसंग-सम्मत अर्थ होना चाहिये, 'उसने [जिनेन्द्र के] चरणो से लगकर जिनदत्त को [सस्वर] स्मरण किया।'

*२८. २५६.४, ३६२.१, ३६५ ४. 'भविय' का अर्थ 'भव्य' किया गया है, जब कि होना चाहिये / भविक = मुमुक्षु। (दे० छद २५०.३, ४३८.२)

*२९. २६५.२: 'आवहु अज्ज न मारउ बोलु' का अर्थ किया गया है 'आओ, मारने के वोल मत बोलो' किन्तु होना चाहिये, 'आओ, आज मै बोल न मारूंगा (छुरी मारूंगा),

३०. २६५.३: 'तौ न मुणसु जौ असौ करउ' का अर्थ किया गया है, 'जो ऐसा नही करेगा', होना चाहिये, 'तो मै मनुष्य नही, यदि मैं ऐसा करू' (केवल वोल मारूँ)'।

३१. २६८.३: 'ण सुरेन्द्र जो थापिउ सुरहं' का अर्थ किया गया है, 'मानो इन्द्र ने ही वहाँ स्वर्ग की स्थापना की हो', किन्तु होना चाहिये, 'मानो वह सुरेन्द्र है जो [उस पद पर] देवताओ द्वारा स्थापित किया गया हो।'

*३२ २७१.४. 'अचाभउ सुतभउरुव मुरारि' का अर्थ नही किया गया

*१७. १८९. २: 'गए विलावल कइ पइ पसारि'–जिसमे 'पइ पसार' न होकर पाठ 'पइसारि' होना चाहिये, का अर्थ किया गया है 'वे विलावल तक चलते गये, किन्तु अर्थ होगा 'वे वेलाकुल (वन्दरगाह) के प्रवेश [द्वार] पर पहुँच गए'।

*१८. १८९. ३: 'वलद महिष सवुदइ निरु करहि' का अर्थ किया गया है, 'उन्होने वैलो ओरभैसो को दूसरो को दे दिया', किन्तु होना चाहिये, उनके वैल और भैसे निश्चय ही शब्द करते थे'।

*१९. १९३. ४: 'सुरा सेतु दीसइ सु अरणतु' का अर्थ किया गया हैं, अनन्त जल ही जल चारो ओर दिखाई पडता था', किन्तु होना चाहिये, [वहा] अन्तहीन [सा] सुरा-सेतु [उन्हे] दिखाई पड रहा था [जिसे छोडते हुये वे आगे वढे]'।

२०. १९६. १–२: 'पणसइ घणु जलु जिणवरु नाहु, भव अतर दीठिउ जलवाहु' का अर्थ किया गया है, 'वहाँ जल के मध्य जिन–चैत्यालय था तथा वहाँ उन्होने भव से पार करने वाले जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किये', जव कि होना कदाचित् चाहिये, [उन्होने जिनेन्द्र भगवान से निवेदन किया], 'हे जिनेन्द्र नाथ, हमारा धन जल मे प्रणष्ठ होना चाहता है, क्योकि हमे भव (समृद्धि?) मे जलवाह (जल-जंतु-विशेष) दिखाई पडा है।'

*२१. २१३. २: 'आहूठ ·डि उद्धसे जिणदत्तु' का अर्थ पाठ त्रुटित होने के कारण नही दियो गया है, किन्तु तत्सूचक कोई सकेत होना चाहिये था। 'उद्धसे' 'उद्ध्वस्त हो गए' अथवा 'उद्ध्वस्थ थे' है।

२२. २२१. ४: 'मिठिया किं अरण वाणहि हणहि' मे 'अरण वाणहि' का अर्थ नही किया गया है, 'अरण वाणहि' —है 'विना वाणो के'।

*२३. २२५. २, ३६५. ३: 'मडउ' का अर्थ मुडी (मुड) किया गया है, जव कि होना चहिये 'मृतक' = मुर्दा, [मनुष्य का] शव।

*२४ २२८. २: 'कासुतरणर कहाहि' का अर्थ किया गया है, 'जिससे कौनसा पुत्र नर कहा जायेगा'। पाठ त्रुटित है, अवशिष्ट शब्दो का अर्थ होना चाहिये कदाचित् 'तू किसीका··· कहलाए।'

२५. २४६. ४. 'वहु रोवहि अरु षीजहि नयणु' का अर्थ किया गया है, 'तुम बहुत रो रही हो, अब नेत्रो को धैर्य दो' किन्तु होना कदाचित् चाहिये, 'तुम वहुत रो, और नेत्रो को वरवाद कर रही हो।'

२६. २५०. १: 'रहिउ उन ठाउ (नठाउ?)' का अर्थ नही किया गया है। अर्थ होगा 'सभी कुछ नष्ट हो (?) गया था।'

*२७ २५५ ४: 'पाय लागि जिणदत्त संभालि' का अर्थ किया गया है 'उसके (विमलमती) चरणो मे लगकर जिनदत्त को पुकारा', जबकि प्रसग-सम्मत अर्थ होना चाहिये, 'उसने [जिनेन्द्र के] चरणो से लगकर जिनदत्त को [सस्वर] स्मरण किया।'

*२८. २५९.४, ३६२.१, ३६५ ४: 'भविय' का अर्थ 'भव्य' किया गया है, जब कि होना चाहिये ∠ भविक = मुमुक्षु। (दे० छद २५०.३, ४३८.२)

*२९. २६५.२: 'आवहु अज्ज न मारउ बोलु' का अर्थ किया गया है 'आओ, मारने के बोल मत बोलो' किन्तु होना चाहिये, 'आओ, आज मैं बोल न मारूंगा (छुरी मारूंगा),

३०. २६५.३: 'तो न मुणसु जौ असी करउ' का अर्थ किया गया है, 'जो ऐसा नही करेगा', होना चाहिये, 'तो मै मनुष्य नही, यदि मैं ऐसा करूं (केवल बोल मारूं)'।

३१. २६८.३: 'ण सुरेन्द्र जो थापिउ सुरह' का अर्थ किया गया है, 'मानो इन्द्र ने ही वहाँ स्वर्ग की स्थापना की हो', किन्तु होना चाहिये, 'मानो वह सुरेन्द्र है जो [उस पद पर] देवताओ द्वारा स्थापित किया गया हो।'

*३२ २७१.४. 'अचाभउ सुतभउरुव मुरारि' का अर्थ नही किया गया

है, शब्दावली ज्यो की ज्यो अर्थ मे भी दुहरा दी गई हैं, किन्तु अर्थ होगा, 'जिसका अत्यद्भुत पुत्र रूप मुरारी हुआ है।

३३. २७४.३: 'रेह सुमई सुय पदमणि' का अर्थ तत्सम शब्दो मे दुहरा भर दिया गया है— 'रेखा सुमति सुता पद्मिनी है', जबकि अर्थ होना चाहिये [और] सुमति रेखा है जो पद्मिनी कन्या है— अर्थात् जन्म से पद्मिनी है।'

*३४. २९०.२: अर्थ में दी हुई शब्दावली 'जिससे उसका मुख चमकने लगा' का आधार मूल पाठ मे नही है, और न इससे अर्थ मे ही कोई स्पष्टता आई है।

*३५. २९२.२ 'मण चिंति अयासि उपमड' का अर्थ किया गया है, 'वह पास आगई', किन्तु होना चाहिये, 'मन द्वारा चिन्नित होते ही वह आकाश मे [जहाँ जिनदत्त था] उत्पतित हो गई(उड या उठ आई)'।

*३६. २९८ ३ 'विण्ण विचित्तहु वेगह गहो' का कोई अर्थ नही किया गया है. होना चाहिए 'उस विज्ञ (जिणदत्त) ने [विमान पर चढने पर] विचित्र वेग ग्रहण किया'।

*३७ ३०१ १, ४१५ १ 'अघाइ' का अर्थ 'थक कर' और 'अपार' किया गया है, जबकि होना चाहिये, 'तृप्त होकर' और 'भर-पेट'। (दे० ५०४ ४)

३८. ३०४.१· 'सती तिरी ते नाह सुजाण' का अर्थ किया गया है, 'सती वह है जो (अपने) सुजान (नाथ) के सामने (अपना) अस्तित्व मिटा दे', जब कि होना चाहिये, 'सती स्त्री अपने स्वामी को [ही] जानती है।"

*३९ ३२२ १ 'झडत्ति' का अर्थ 'खीझकर' किया गया है, किन्तु होना चाहिये झटिति = शीघ्र ही'।

*४०. ३२६ ४: 'जिणदत्तु भणति नारि मइ दिठु' का अर्थ किया गया है, 'नारी (विवाह योग्य स्त्री) को मुझे बताइए', किन्तु होना चाहिये 'जिसे जिणदत्त कहा जाता है, उसकी नारियो (पत्नियो) को मैंने देखा है।'

*४१. ३३३.३–४. 'तउ मे देव तिनि सीखी कला, जौ न हसाउ पाहणु सिला' का अर्थ किया गया है, 'हे देव! मैंने तो वह कला सीखी है कि मैं पाषाण की शिला को भी न हंसा दू (तो मेरा क्या नाम)', जब कि होना चाहिये, 'हे देव, तब तो मैंने वह कला सीखी ही नही, यदि मै पाषाण-शिला को (भी) न हँसा दूँ ।'

४२. ३४१.४: 'सो बुलाई' का अर्थ किया गया है, 'वह लौटकर,' जबकि होना चहिये, 'उस [मौन धारण किए हुई] स्त्री को बुलवाकर [मौन तोड़कर] बोलने के लिए प्रेरित कर' ।

४३. ३४२ २: 'सुणि सुणि तिरिया मेलउ परिया जहा गयउ सोइ' का अर्थ किया गया है, 'हे स्त्री सुनो, सुनो, जैसे ही वह (सागर मे) गगा, वह छोड दिया गया', जब कि होना चाहिये, 'हे स्त्री! सुनो, सुनो, [समुद्र मे] छोड़ दिये जाने पर वह जहाँ गया' ।

४४. ३४४.३: 'देई देई जाम जाम तहि वहु रयण समत्थि' का अर्थ किया गया है, 'वह उसे बार-बार रत्न देने लगा', जब कि होना चाहिये 'तभी वह उसे समस्त [प्रकार के] बहुतेरे रत्न देने लगा' ।

४५. ३५५ ४: 'भव लावत्त लयउ जिणदत्तु' का अर्थ किया गया है, 'उसके भव (जन्म) का ज्ञान कराते हुये पकडा', किन्तु होना चाहिये, 'जिनदत्त उस [हाथी को] भँवाने (चक्कर देने) लगा' ।

४६. ३६० ४: 'सव्व पुरु सामि अचभो भयउ' का अर्थ किया गया है, 'सभी पुरुषो को आश्चर्य हुआ', जब कि होना चाहिये, '[उसने कहा,] "हे स्वामी, समस्त पुर को आश्चर्य हुआ–" ।

४७. ३६२.३–४: 'जो मोहिउ पूतलिय पहाण, पुण्यवत को सकइ पहाण (वखाण?)' का अर्थ किया गया है 'जो पत्थर की पूतली को देखकर मोहित हो गया, उस पुण्यवत की कितनी प्रशसा की जावे ?' किन्तु होना चाहिये,

जिसने पाषाण की पुतली को मोहित कर लिया उस पुण्यवत की प्रशसा (?) कौन कर सकता है ?'

पाषाण शिला को तारुणी विद्या द्वारा मोहित कर हँसाने और उसके द्वारा लोगो का मनोरजन करने का प्रसंग कुछ ही पूर्व आया है (छद–३३५-३३६), दोनो चरणो के तुक मे 'पषाण' है, जिनमे से पहला प्रसग के लिये अनिवार्य है और दूसरा अर्थ-हीन, इसलिए दूसरे के स्थान पर पाठ संभवतः 'वखाण' होना चाहिये था।

*४८. ३६३.१: 'परिहसु लियउ दिसतर करइ' मे 'परिहसु' का अर्थ 'खुशी के साथ' किया गया है, किन्तु 'परिस' ∠ परिहास = [लोक द्वारा किया जाने वाला] उपहास है, जुए मे ग्यारह करोड रुपये हार जाने के लोक-परिहास के कारण ही जिणदत्त देशान्तर गया था (दे० छद १५६)।

४९. ३६३.२. 'जहि कौ हाथ अजणी चडइ' का अर्थ किया गया है 'जिसने अपने हाथ से अंजनी (गुटिका) चढाई', किन्तु होना चाहिये 'जिसके हाथ अंजनी गुटिका चढी' (दे० छद १५२)।

५०. ३७६.३: 'अण छाजत इहसइ सवु कोइ' का अर्थ किया गया है, 'यहाँ सब अनचाहा हो रहा है', जब कि होना चाहिये, 'अशोभन को सभी लोग हँसते हैं।'

५१ ३८४.४: 'अति करि मथियउ कालकुठु होइ' के 'कालकुठु' का अर्थ किया गया है 'कालकुष्ट', होना चाहिये 'कालकूट', समुद्र से उसके अत्यधिक मथन के कारण 'कालकूट' निकला था।

५२. ३९२.२ 'किन पत तौ मिलवहु वइसारि' का अर्थ किया गया है, 'तब उन्हे बैठाकर मिल क्यो नही लेते?' जबकि होना चाहिये. 'तब उन्हे बिठाकर उनमे [अपना] प्रत्यय (विश्वास) क्यो नही मिलाते (उत्पन्न करते) हो?'

*५३. ४०९ ४ 'कोदइ' का अर्थ 'चावल किया गया है, किन्तु 'कोदई'

कोदव ∠ कुद्दव ∠ कुद्रव (चावल से भिन्न) एक प्रकार का निकृष्ट धान्य है।

५४. ४११ ३: 'मूत्रित (भूपित)' का अर्थ 'प्रसन्न हुई' किया गया है, जब कि होना चाहिये 'आभूषित हुई'।

५५. ४१८ ३–४' 'निय म [न] विरह न पावइ जाण। धूतह दिण्ण राइ की आण।' का अर्थ किया गया है, 'इस वियोग के वह कोई कायदे-कानून नही जानता था, किन्तु उसने तो धूर्त को राजा की दुहाई दिलादी', जबकि होना चाहिये, '[अपनी स्त्रियो को देखने पर] अपने मन मे जब उसे उनमे वियोग के लक्षण नही ज्ञात हुए, तो उसने उक्त धूर्त को राजा की आन (सौगन्ध) दी।'

५६. ४२५.२: 'हाहा कारु [अ] पर किउ तवहि' का अर्थ किया गया है, 'तब दूसरी ने हाहाकार किया', किन्तु होना चाहिये, 'तब [उसकी] अपर स्त्रियो ने भी उसमे हुकारी भरी – उन्होने भी उसकी भांति उक्त धूर्त को पति स्वीकार किया'।

*५७. ४२५.४: 'निय सामिउ तिन्हु खाडइ वहिउ' का अर्थ किया गया है, 'अपने स्वामी पर तीनो ही खड्ग चलाओ', जब कि होना चाहिये, 'अपने [विदेश से लौटे हुये वास्तविक] पती पर तीनों ने खड्ग चलाया है।'

५८. ४२६.१–२: राय पमुह सव जाणहु झूठ' का अर्थ किया गया है 'सब कुछ (हप्पा सेठ के वचन को)', जब कि कदाचित् होना चाहिये '[उन दुष्टाओं के] समस्त कथन को'।

५९. ४३२.२: 'सभलि पुहम ताह मुह वात' का अर्थ किया गया है, 'हे पृथ्वीपति! उसकी बात को स्मरण कर', जब कि होना चाहिये, 'हे पृथ्वीपति, मेरी बात सुनो'।

*६०. ४३२.४: 'हेम (हम?) पिउ देव नही सावलउ' का अर्थ किया गया है, 'हमारा पति तो, हे देव! सोने का सा है, सावला नही हैं, किन्तु 'हेम' पाठ, जिससे 'सोने का सा' अर्थ लिया गया है, असंगत है, उसके स्थान पर शुद्ध पाठ

'हम' होगा, जिसका अर्थ होगा 'हमारा'।

*६१. ४३८.४: 'सइ राजा उठि लागिउ पाइ' का अर्थ किया गया है, 'सब राजा के चरणो से लगे', जब कि होना चाहिये 'राजा सइ (स्वय) उठकर उस (जिणदत्त) के पैरो लगा'।

६२. ४४१.४: प्रति मे पाठ 'सीरघ' है, जिसके स्थान पर 'सीघर' का सुझाव दिया गया है, किन्तु 'सीरघ' ठीक इसी प्रकार (छंद ४६८ मे) आया हुआ है, इसलिए लगता है कि प्रति का पाठ अशुद्ध नही है।

६३. ४४४.२, ४५६.१: प्रथम स्थान पर 'ठाठा' का अर्थ 'उठकर' किया गया है, दूसरे स्थान पर 'ठाठा करना' अर्थ मे वह यथावत् है, किन्तु 'ठाठा करना' का अर्थ 'सज्जा करना' तथा 'ठाठा' का अर्थ 'सजे-बजे हुए' ज्ञात होता है।

६४. ४४६.१: 'देस कुछार' का अर्थ 'कुछारु देस' किया गया है जो कि निरर्थक है, किन्तु शुद्ध पाठ 'कुछार' के स्थान पर 'कुठार' ∠ 'कोठार' ज्ञात होता है (दे० छद ४७१) जो स कोष्ठागार=भण्डागार, भण्डार है।

६५. ४५३.३–४: 'हाकि निसाण जोडि जणु हणे, अपुनइ देश पलाणे घणे' का अर्थ किया गया है, 'जब समस्त निशानो को जोड़कर उन पर चोट की गई तो बहुत से स्वतः ही अपने देश भाग गये', जब कि होना चाहिये– 'हक्का (पुकार) लगाकर जब सेना के लोगो ने निशानो पर आघात किए, तो अनेक देश [और उनके राजा] अपने–आप ही भाग निकले'।

*६६. ४५६.३: 'परिजा भाजि गई जहि राउ' का अर्थ नही किया गया है, होना चाहिये 'प्रजा भागकर वहाँ गई जहा पर [गढ मे] राजा था'।

६७. ४५७.४: 'रचे मारु कहु सीसे घणी' का अर्थ किया गया है, 'मार करने के लिये अनेकानेक शिरस्त्राण रचे गये' किन्तु होना चाहिये 'मारो (योद्धाओ) ने अनेक कौसीसें (∠कपि शीर्ष=बुर्जें) बनाई'।

६८. ४५८. १: 'कोटा पा [गार] (उ) त्त ंग अपार' का अर्थ किया गया है, 'कोट के पास ऊंची प्राकार थी', जब कि होना चाहिये, 'कोट का प्राकार अत्यधिक उत्त ग (ऊंचा) था'।

६९. ४६०. ३: 'सुहनाल' का अर्थ 'तोप' किया गया है, किन्तु 'सुहनाल' एक योद्धा का नाम है, जो आगे राजा चन्द्रशेखर के दूत के रुप मे जिणदत्त के पास जाता है। (दे० ४६४. २, ४६९. १)।

७०. ४६५. २: 'हाकिउ कणइ दंड परिहारि' का अर्थ किया गया है, प्रतिहारी ने स्वर्णदण्ड हाका (हिलाया)'. जबकि होना चाहिये 'कनक-दण्ड धारण करने वाले प्रतिहारी ने उसे हाका (पुकारा)'।

*७१. ४६९. ४: 'देवि सीसु धिर लगिउ पाउ' का अर्थ किया गया है, 'विश्वास दिलाकर उसने राजा के चरणो का स्पर्श किया'। 'देवि सीस' के स्थान पर शुद्ध पाठ कदाचित् 'दे विसासु' मान कर किया गया है, किन्तु राजा (जिणदत्त) के दर्शन करते ही उसे विश्वास दिलाने का कोई प्रश्न नही उठता है, इसलिये यह अर्थ प्रसंगमम्मत नही है। शुद्ध पाठ 'देवि' के स्थान पर कदाचित् 'देखि' होगा, इसलिये अर्थ होगा, 'राजा (जिणदत्त) को देखकर दूत अपना सिर रखते हुए उसके पैरों लगा'।

७२. ४७५ ३: 'अकहा कहा किम कहियइ वेठि' का अर्थ किया गया है। 'यहा वैठकर न कहने योग्य बात क्यों कहते हो ? ' किन्तु होना चाहिये, 'यहां वैठकर वह अकथनीय (जिणदत्त के द्वारा नगरश्रेष्ठी जीवदेव को मांगने का) कथन कैसे कहा जाए ?

*७३. ४७९.२: 'वरु किनु नयरहं कुइला ववइ' के 'कुइला' का अर्थ 'कुचला' किया गया है, किन्तु 'कुइला' 'कोयला' है. और 'कोयला बोना' एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है 'आग लगाना'।

*७४. ४८३.१: 'तूटउ इ........सोमिय दुह तणउ' का अर्थ किया गया है,

हे स्वामी (अपने दोनो) का दु ख टूटा हुआ है (दूर हुआ चाहता है)' किन्तु प्रसंग के अनुसार अर्थ इसके ठीक विपरीत होना चहिये, 'हे स्वामी [हमपर] दुःख का ...... टूट पडा है' ।

*७५. ४९४.१. 'विसुरिउ' का अर्थ 'विसूर कर (चिन्तारहित होकर)' किया गया है, जबकि इसके विपरीत उसका अर्थ 'चिंताकर (सोचकर)' होना चाहिये ।

*७६. ४९७.३. 'किछु परि जाणउ देउ निरुत' का अर्थ किया गया है, 'तो हे देव ! हम कुछ निरुत जानें (कहे)', किन्तु होना चाहिये 'हे देव, हमे निरुक्त का (ठीक बात) कुछ परिज्ञान हो' ।

*७७. ५०३.१. 'भए वधाए हारु निसाण' के 'हारु निसाण' का अर्थ किया गया है, 'पौसौ (धौसा) पर चोट पडी' । 'पौसा' निरर्थक है और 'हारु' भी अशुद्ध है, उसके स्थान पर पाठ प्रति मे 'हए' होना चाहिये और 'हए निसाण' का अर्थ होना चाहिये निसानो (धौंसो) पर चोट पडी' ।

७८. ५०५.३: 'एक वित्त दुख (दुव) रहिय सरीर' का अर्थ किया गया है, दोनो एक-चित्त दो शरीर होकर रहने लगे', किन्तु 'दुव' न होकर प्रति मे पाठ 'दुख' है, अतः अर्थ होना चाहिये, 'वे एकचित्त और दु.खरहित शरीर के थे' ।

७९. ५०७.१–२: 'करहि राजु भोगहि परठइ, नीत पणीत सतीण भए' का अर्थ किया गया है, '(जिणदत्त) राज्य करते हुए भोग मे प्रस्थापित हो गए और नित्य प्रति उनमे सतृष्ण होते गये', किन्तु 'नीत पणीत' 'नित्य-प्रति' नही हैं, वह 'नीति-पणति' ज्ञात होता है, जिसका अर्थ 'नीति और व्यवहार' होना चाहिये ।

*८०. ५१२.१–२. 'उक्क वडण वइराइ निमित्तु, लहिवि भोय ससारह वित्तु' का अर्थ किया गया है, 'उल्कापात के निमित्त से भोग ग्रहण को संसार की स्थिति को वढाने वाला जानकर उसे वैराग्य हुआ', किन्तु मेरी राय मे

चाहिये होना उत्क-पतन (वासना से निवृत्ति) और वैराग्यलाभ के निमित्त ही ससार के वित्त का भोगलाभ कर'।

८१. ५१३.३: 'परिवारह सो हियउ महतु' का अर्थ किया गया है, 'अपने परिवार के सहृदय से महान् हो गया', जब कि होना कदाचित् चाहिये, 'परिवार पूर्ण होने के कारण वह हृदय का महान् हो गया था'।

८२. ५१५.१: 'गुरु' का अर्थ '(उसका) गुरु' लिया गया है, किन्तु शब्द संभवत: केवल 'पूजनीय व्यक्ति' के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

८३. ५१७.२: 'कह (हुमु) रणीसरु गालिउ कम्मु' का अर्थ 'कह' के अनन्तर 'हु' लगा करके किया गया है, 'मुनीश्वर ने कहा, कर्मों को नष्ट करो'। किन्तु कदाचित् होना चाहिये [तब] मुनीश्वर ने, जिन्होने कर्मों को गालित कर रखा था—छान रखा था, 'कहा'।

*८४. ५२१.१: 'बारह भावरण कहिय वियारि, सजमु नेमु धम्मु तउ चारि का अर्थ किया गया है 'बारह भावनाओ का विचार (चिन्तन) करो, तथा' सयम, नियम, (दश—लक्षरण) घर्म और तप इन चारो को........'। किन्तु होना चाहिये, 'मैंने बारह भावनाओ को विचार कर कहा और सयम, नियम, धर्म तथा तप इन चार के विषय मे बताया'।

८५. ५२१.३: 'अब्भंतरि परमप्पा बुज्झि' का अर्थ किया गया है, 'परम पद के लिये अभ्यतर (अन्तरग) रूप से जानो', जब कि होना चाहिए, 'अभ्यंतर (अन्त.करण) के परमपद को जान कर'।

८६. ५२२. ४: 'शुक्ल ज्भाण वज्जरिउ अलेउ' का अर्थ किया गया है— 'शुक्ल ध्यान के भेदो को जान कर ग्रहण एव त्यागो', जब कि होना चाहिये, 'मैंने अलेप (अलिप्त) शुक्ल ध्यान का कथन किया'।

*८७. ५२६·४·, ५३०·२: 'वरिणजी' का अर्थ 'लेन देन' किया गया है होना चाहिये 'वारिणज्य' = 'क्रय विक्रयादि'।

*८८. ५[illegible]४ ३ 'तहि चइवि' का अर्थ 'वहा से चयकर' किया गया है, जो [illegible] लगता है, होना चाहिये 'उन्हें त्याग कर'।

*८९. ५३९' २: 'रय' का अर्थ 'काम' किया गया है, किन्तु कदाचित् होना चाहिये 'रजस'।

९०. ५४०. १: 'निरूहउ' का अर्थ 'उदासीन' किया गया है, किन्तु निरूह ∠निरूह ∠णिरोव = आदेश, आज्ञा है।

९१. ५४१. ३: 'मणमथ सहिउ दीउ मइ दीठ, मुक्ति लछि ते नियड वइठ का अर्थ किया गया है, 'मुक्ति लक्ष्मी के निकट बैठने पर भी मुझे कामदेव पर विजय प्राप्त करने की दृष्टि दी है' किन्तु होना चाहिए, 'उहके द्वीप को मैंने मन्मथ के सहित देखा है, मैंने देखा है कि वह मुक्तिलक्ष्मी के निकट बैठा है'।

*९२ ५४४. ४· 'मुणिवरु गणु अछइ जित्थु' का अर्थ किया गया है, 'जिसको मुनिश्रेष्ठ उत्तम कहते है' किन्तु होना चाहिये 'जहा मुनि श्रेष्ठ गण [रहते] हैं'।

*९३. ५४७. २: 'साहु सगि' का अर्थ 'सारे' किया गया है, किन्तु 'सगि' समवतः 'सगि' है और इस सशोधन से अर्थ होगा, 'साधु [जिणदत्त] के सग मे [रहकर]'।

९४. ५५०. ३: 'देखि विसूरु रयउ फुड एहु' मे से 'देखि विसूरु' का अर्थ नही किया गया है। उसका अर्थ होगा 'उसे देखकर तथा [उसका] चिन्तन कर'।

माताप्रसाद गुप्त